# घनआनंद

रवीन्द्र प्रकाशन

ग्वालियर आगरा

प्रकाशक
रवीन्द्र प्रकाशन
पाटनकर बाजार ग्वालियर–१

मूल्य ३०.०० रुपये

मुद्रक :
हिन्द प्रिन्टर्स
हास्पिटल रोड आगरा–१

# प्रस्तावना

घनआनन्द के काव्य का यह अध्ययन विशेष रूप से इसका वह भाग जिसमे घनआनन्द के काव्य प्रधान वर्ण्य तथा उनके भाव-वैभव के अन्तगत प्रेम-व्यजना और उसमें विवेचित सयोग तथा वियोग पक्ष के अन्तगत दिखाया जाने वाला भावलोक का समूचा विस्तार एक ग्रीष्मावकाश मे किये गये निष्ठापूर्ण एव श्रमसाध्य अध्ययन का परिणाम है।

घनआनन्द की भक्ति भावना, काव्यशिल्प स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्ति आदि पर मैंने आगे आगे-पीछे कुछ न कुछ लिखा था और उसी सब को सजो कर प्रस्तुत रूप म अपने घनआनन्द सम्बन्धी अध्ययन को मैं आपके सामने रख रहा हूँ। अपने शोध-कार्य 'रीति स्वच्छन्द काव्य धारा' के सिलसिले म इस धारा के अन्यतम कृती घनआनन्द का अध्ययन मुझे करना पड़ा था और इसी अध्ययन का पर्याप्त अश मेरे शोध प्रबन्ध म सम्मिलित है किन्तु मेरे अध्ययन का बहुत-सा ऐसा भी अश है जो उस प्रबन्ध म नही दिया जा सका है। घनआनन्द विषयक स्वकीय अध्ययन को समग्र रूप म प्रस्तुत करने की दृष्टि से यह पुस्तक हिन्दी कविता के पाठकों के हाथ मे दी जा रही है।

घनआनन्द को मैं ज्यो-ज्यो पढता गया हूँ मुझे उनके अधिकाधिक गम्भीर अध्ययन की आवश्यकता प्रतीत होती रही है। आज भी घनआनन्द के अध्ययन से सम्बन्धित ऐसे बहुत से सूत्र हैं ऐसी बहुत सी बातें हैं जिनके अनुशीलन की अपेक्षा है। अपने ढग से मैंने घनआनन्द के काव्य का विशेषकर उनके सुजानहित का मथन किया है तथा उनकी एक से एक रमणीय भावानुभूतियो का सधान किया है। अपने अध्ययन को इस रूप मे प्रस्तुत करते हुए भी मेरा यह दावा नही कि मैं घनआनन्द की समूची महिमा को प्रत्यक्ष कराने मे सफल हुआ हूँ—अपनी उस सीमित शक्ति सामर्थ्य का मुझे पूरा पता है जिसके सहारे म आगे बढा हूँ। किन्तु उससे भी अधिक बडी सीमा मेरे सामने समय की रही है। अपने 'रीति-स्वच्छन्द काव्यधारा' के प्रणयन काल म जिन अन्य अनेक विषयों का मुझे अध्ययन करना पडा, उसी के बीच ही घनआनन्द सम्बन्धी यह अध्ययन सम्भव हो सका है तथा इस बात की मुझे पूरी प्रतीति है कि घनआनन्द मात्र के अध्ययन के लिए जितना समय मिलना चाहिए उतना दीर्घकालीन अवकाश मुझे नही मिल सका है।

जब जब घनआनन्द को पढ़ने-पढ़ाने का अवसर मुझे मिला है उनके कवित्व की मर्मस्पर्शिणी शक्ति का मैं बराबर कायल होता गया हूँ। परिणामस्वरूप, घन आनन्द के काव्य के प्रति मेरे हृदय मे जो आकर्षण और अनुराग अनेकानेक वर्षों से प्रवर्धमान होता रहा है उसी के कारण घनआनन्द के विषय में अपेक्षाकृत अधिक तल्लीनतापूर्वक मैं इतना कुछ लिख सका हूँ। यह प्रेम ही वह पहली और अनिवार्य शर्त है जो घनआनन्द की कविता को समझने के लिए आवश्यक बताई गई है—

बिनती कर जोरि क बात कहौं जो सुनो मन कान द हेत सों जू।
कविता घनआनन्द की न सुनो पहचान नहीं उहि खेत सों जू॥

घनआनन्द के काव्य की प्रस्तुत समीक्षा या अनुशीलन मे मुझे सबसे बड़ा सहारा अपने ही प्रेम का रहा है जो घनआन द के काव्य के प्रति दीर्घकाल से मेरे मन मे विद्यमान रहा है और उसी के बल पर ही प्रस्तुत अनुशीलन मैं हिन्दी के सुधी और सहृदय काव्य पाठको की सेवा म समर्पित कर रहा हूँ। इस रूप मे अपने अध्ययन का प्रस्तुत करते हुए मुझे विश्वास है कि घनआनन्द सम्बन्धी अध्ययन कुछ न कुछ आग बढेगा।

इस अवसर पर आदरणीय प्रो० शिवनाथ जी उपाध्याय के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हू जिन्होने अत्यन्त स्नेहपूर्वक इस अध्ययन के प्रकाशन की प्ररणा और सहायता दी है।

—कृष्णचन्द्र वर्मा

# विवेचन-सारणि

●

# १

# रीतियुगीन शृङ्गार काव्य

शृगार-कालीन शृगार रस की कविता लिखने वाले कवि काव्य-वृत्ति और रचना पद्धति के आधार पर तीन प्रकार के हो गये हैं—१ रीतिबद्ध २ रीति सिद्ध ३ रीतिमुक्त। रीतिबद्ध कवि वे थे जो रीतिग्रन्थ की रचना करते समय लक्षणानुधावन करते हुए शृगार रस की कविता किया करते थे। लक्षण के अनुसार शृगार काव्य की रचना करना इनकी मुख्य प्रवृत्ति थी, उससे ये इधर-उधर नहीं जा सकते थे। रीतिग्रंथ रचना के नियमों से बँधे या जकड़े रहने के कारण इन्हें रीतिबद्ध कहा जाता है, जैसे केशव, मतिराम देव दास आदि। दूसरे प्रकार के कवि थे रीति सिद्ध जो रीतिग्रंथ तो नहीं लिखते थे किन्तु जिनकी रचना में रीति का पूरा-पूरा प्रभाव था जैसे—बिहारी सेनापति, रसनिधि आदि। रीतिशास्त्र के ग्रंथ इन्होंने न लिखे हों पर रचना रीतिशास्त्र के नियमों के अनुकूल ही करते थे। ये लोग भी रीतिशास्त्र के ज्ञाता थे परन्तु रीतिग्रंथ रचयिता न थे। फलतः ये रीति का बंधन कुछ ढीला करके चलते थे। रीतिग्रंथों की रचना में प्रवृत्त न होने के कारण इनमें वैसी लक्षणानुगामिनी प्रवृत्ति न थी फिर भी रीति और लक्षणशास्त्र इन्हें सिद्ध था। रीति रचना में ये पारंगत थे और इसी विचार से इन्हें रीतिसिद्ध कहा गया है। तीसरे प्रकार के कवि वे थे जो रीतिमुक्त या रीति विरुद्ध थे। रीति से उन्हें नफरत थी रीतिशास्त्र की उँगली पकड़ना तो दूर वे उसकी छाया से भी कतराते थे। प्रेम के स्वानुभूत और उमंगपूर्ण स्वरूप को वे सामने ले आते थे और स्वच्छन्द वृत्ति से शृगार की रचना किया करते थे। इसी से वे रीतिमुक्त कहलाये। रीतियुगीन शृगार काव्य की ये तीनों प्रधान एवं महत्वपूर्ण धाराएँ थीं।

## रीतिबद्ध काव्य

साहित्य के इतिहास में स्वीकृत रीतिकाल (सं० १७००) के लगभग १०० वर्ष पहले से ही हिंदी में रीतिग्रंथों की रचना आरम्भ होती है। कृपाराम की हिततरंगिणी (रचना काल सं० १५९८) हिन्दी का प्रथम रीतिग्रंथ है। इसके बाद चारखारी के मोहनलाल मिश्र का 'शृगार सागर' नामक नायिकाभेद का ग्रंथ और करनेस बंदीजन के 'कर्णाभरण' 'श्रुतिभूषण' और भूपभूषण नामक अलंकार ग्रंथ तथा

गोप कवि कृत 'रामभूषण' एव अलकार चन्द्रिका' तथा बलभद्र मिश्र कृत नखशिख' एव रसविलास नामक रीतिग्रथ इतिहास क्रम से सामने आते हैं। आगे चलकर सूरदास नन्ददास एव रहीम ने भी इस परम्परा मे थोडा योग दिया तथा कुछ अन्यान्य कवि भी आये। आचाय केशवदास की रसिकप्रिया' (स १६४८) से तो यह परम्परा अटूट रूप से चली चलती है। विक्रम की १७वी शती म ही अर्थात् सवस्वीकृत रीतियुग की पूववर्तिनी शताब्दी म ही लगभग २१ कवि रीति ग्रथो की रचना करने वाले हो गये हैं जिनका विवरण इतिहास ग्रथो मे मिलता है। इनके द्वारा लगभग २५ रीतिग्रन्थ लिखे गये। इसी समय सस्कृत म काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो के प्रणयन की परम्परा क्षीण पड चली थी और यही समय था जब हिन्दी के कवियो और आचार्यों ने उसे उठा लिया। यह एक रोचक सयोग है कि सस्कृत काव्यशास्त्र के अन्तिम प्रकाण्ड आचाय पण्डितराज जगन्नाथ और हिन्दी के प्रारम्भिक आचार्यों म अग्रगण्य चिन्तामणि जिनसे आचाय रामचन्द्र शुक्ल न हिन्दी रीतिग्रन्था की अखण्ड परम्परा का आरम्भ माना है समसामयिक थे और सम्राट शाहजहाँ के दरबार म सम्मान प्राप्त विद्वान थ। विक्रम की उत्तरवर्ती १८वी और १९वी शताब्दियों म रीतिग्रन्थो की रचना का क्रम अटूट रूप से चलता रहा और छोटे-बड बहुसख्यक कवियो एव आचार्यों ने अपन रीतिग्रथो से हिन्दी काव्य और रीतिशास्त्र का भण्डार भर दिया। वण्य विषय अथवा *काव्याग विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि इस युग म ४ प्रकार के रीति* ग्रन्थ प्रतीत हुये—(१) अलकार निरूपक ग्रन्थ (२) रस एव नायिका भेद निरूपक ग्रन्थ (३) काव्यशास्त्र या विविधाग निरूपक ग्रन्थ (जिनम काव्य शास्त्र के समस्त अधिकाश या एकाधिक अगो का निरूपण हुआ) और (४) पिंगल निरूपक ग्रन्थ। इन ग्रन्थो की सख्या परिमाण म प्रचुर रही है। रीति के विविध विषयो पर रचना करने वाले १८३ रीतिग्रन्थकारो का पता चलता है[1] जिनके द्वारा रचित समस्त लक्षण ग्रन्थो की सख्या २२५ के आस-पास है। यह सख्या सम्भव है और भी अधिक हो। इतने अधिक परिमाण म जब लक्षण ग्रन्थ लिखे गये तब यह स्वाभाविक ही था कि गुण की दृष्टि से *ये रीतिकृतियाँ परमोत्कृष्ट कोटि की न होती।* इस प्रभूत रीतिराशि के अध्येताओ का मत है कि इन रचनाओ का लक्षण अथवा निरूपण वाला अश उतना महत्वपूर्ण नही है जितना कि औदाहरणिक भाग। बात यह है कि ये रचनाकार वस्तुत कवि हृदय रखते थ किन्तु समय की माँग आचायत्व की साध आर्थिक लाभ की आकाक्षा आदि कारणो स ये रीतिग्रथ रचना म प्रवृत्त हुये और काव्य भी इन्हें तदनुसार एक बधे बँधाय ढर्रे पर लिखना पडा। फिर भी रीतिबद्ध कवियो का सच्चा कतृत्व लक्षणों के निर्माण की अपेक्षा उन्ह चरितार्थ करने वाले छन्दो मे मूत्त हुआ है। उन्ह देखने से पता चलता है कि य बर्डे भावुक सहृदय और निपुण कवि थे। आचाय शुक्ल ने

---

१ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृ० ३७४३ तथा हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास षष्ठ भाग, पृ० २९९

लिखा भी है कि इतने विपुल परिमाण में रीति ग्रन्थ लिखे जाने से एक शुभ परिणाम यह हुआ कि 'रसों और अलंकारों के बहुत ही सरस और हृदयग्राही उदाहरण अत्यन्त प्रचुर परिमाण में प्रस्तुत हुये। ऐसे सरस और मनोहर उदाहरण संस्कृत के सारे लक्षण ग्रन्थों से चुनकर इकट्ठे करें तो भी उनकी इतनी अधिक संख्या न होगी।'[१]

जहाँ तक रीति निरूपण का प्रश्न है संस्कृत में काव्यशास्त्र का ऐसा विशद व्यापक और सूक्ष्म निरूपण और विवेचन हो चुका था कि केशव, श्रीपति, भिखारीदास जैसे अनेक संस्कृतज्ञ हिन्दी कवियों के मन में यह लोभ जागृत हुआ कि संस्कृत की काव्यरीति की परम्परा को हिन्दी में अवतरित करें। ऐसा करने का उन्होंने उद्योग भी किया किन्तु काव्य सिद्धान्तों की जैसी समृद्ध विवेचना संस्कृत में उपलब्ध थी वैसी हिन्दी में प्रस्तुत नहीं की जा सकी। रीतिग्रन्थों में जो कुछ भी विवेचित हुआ वह अधिकतर संस्कृत काव्यशास्त्र पर ही आधारित था फिर भी विषय-वस्तु और प्रतिपादन शैली दोनों दृष्टियों से वह उतना प्रौढ़ और गम्भीर नहीं है। देखा-देखी हिन्दी में रीतिग्रन्थों की बाढ़ तो बड़ी आई किन्तु विवेचन और निरूपण हल्का और सतही ही रहा। उसमें गम्भीरता नवीनता मौलिकता और सूक्ष्मता का अभाव ही रहा। ये कवि अधिक से अधिक कवि शिक्षा की पाठ्य पुस्तकें ही प्रस्तुत कर सके। रस, अलंकार आदि का साधारण निरूपण मात्र हो पाया। कुछ आचार्यों ने अवश्य मौलिकता, जानकारी और आचार्यत्व का परिचय दिया[२] किन्तु शेष का तात्त्विक योगदान नगण्य ही रहा फिर प्राचीन स्थापनाओं का प्रत्याख्यान और अभिनव नियमों और सिद्धान्तों का अन्वेषण तो दूर की चीज थी। एक दो साधारण रीतिग्रन्थ लिखकर कवि जब आचार्य रूप में प्रसिद्धि पाने लगे तो उनके शिष्यों ने कालान्तर में बिना प्रयास ही साधारण रीतिग्रन्थों का प्रणयन कर डाला और झट आचार्य पद पर आसीन हो गये। कवि शिक्षा का यह क्रम ऐसा चला कि शास्त्र और कवित्व दोनों आहत होने लगे। कविता रीतिबद्ध होकर ह्रासोन्मुख हुई और रीति या काव्यशास्त्र का चलता हुआ या आरम्भिक ज्ञान गम्भीर गवेषणात्मक या विश्लेषणात्मक शास्त्र-सृष्टि कर सकने में सर्वथा असफल रहा। जिन्होंने रीतिग्रन्थ न लिख काव्य ही लिखा वे ही भले रहे। कवित्व का उनमें कुछ उत्कर्ष ही रहा। परन्तु रीति का पल्ला जिन्होंने पकड़ा वे दोनों दीन से गये। केशव मतिराम, देव, भूषण, पद्माकर, भिखारीदास आदि को अपवाद ही समझना चाहिए। वास्तविक बात यह थी कि हिन्दी के रीति कवि सरस काव्य की रचना द्वारा अपने शौकीन मिजाज आश्रयदाता, राजा रईसों उमरावों और सम्भ्रान्त रसिक नागरिकों या मनोविनोद कर प्रतिष्ठा पाना चाहते थे। कभी-कभी उन्हें अपने पाण्डित्य के प्रदर्शन की भी स्पृहा होती थी। रीतिग्रन्थ की रचना तो उन्होंने आचार्यत्व

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास शुक्ल, पृ० २१९

२ देखिए डा० सत्यदेव चौधरी कृत 'रीति साहित्य के प्रमुख आचार्य' जिसमें आचार्यों के मौलिक शास्त्रचिंतन का विस्तृत विवेचन किया गया है।

की झूठा पदवी के प्रलोभन मे आकर की या अपने अपने आश्रयदाताओ, कतिपय काव्य रसिको या नवाभ्यासियो को काव्यांगा का साधारण ज्ञान करा देने के उद्देश्य से की। मौलिक सिद्धातो का विवेचन तो इनका लक्ष्य ही न था इनम उनकी क्षमता भी न थी। डा० नगद्र ने अपने प्रबन्ध ग्रन्थ म इस तथ्य पर विस्तार से प्रकाश डाला है कि किस प्रकार हिन्दी रीति के आचाय-पद-कामी कविया की दष्टि काव्य के मूल तत्वो की मार्मिक विवेचना की ओर न जाकर हल्के फुल्के ढग से कुछ मोटी बातो का विवरण प्रस्तुत करने तक ही सीमित रही।[1]

रीतिबद्ध कवि की दूसरी प्रधान विशेषता थी शृगारिकता का आग्रह। उन्होंने अन्य रसा की उपेक्षा कर शृगार का ही पल्ला पकडा। इसका कारण समसामयिक युग की राजनीतिक एव सामाजिक परिस्थितिया म ढूढा जा सकता है। सामन्ती जीवन पद्धति, आश्रयदाताआ का सब कुछ भूलकर कचन कामिनी और कादम्ब के सेवन म लिप्त रहना तथा प्रणय और आसक्ति की सुरा पी पीकर मदहोश रहना तथा इसी मनोवत्ति तथा वातावरण के अनुकूल कविता-कामिनी का नत्य करना ही वह कारण था जिससे प्रेरित हो रीतिबद्ध कवि ने शृङ्गारपरक साहित्य की सजना की है। इस धारा के अधिकाश कविया का दष्टिकोण मूलत ऐहिक था आध्यात्मिक नही। इस जीवनपरक या प्रवत्तिपरक दष्टिकोण के ही कारण रीतियुगीन काव्य म नर और नारी के सम्बन्धो की विस्तत चर्चा मिलती है। दोना एक दूसरे के प्रति किस प्रकार आकृष्ट होते हैं सकोच करते हैं ललकते हैं मिलते हैं, लोक बाधाओ के बावजूद अपने प्रणय पथ पर अग्रसर होते हैं, मिलन पर नाना प्रकार से प्रणयकेलि होती है और वियोग म चित्तवृत्तिया का नाना प्रकार से प्रसार दिखाया जाता है आदि आदि। मानव मन की प्रणयकाक्षाओ का राशि मुक्तक रचनाआ के रूप म यह परम विशद चित्रण कितना ही परम्परागत अलौकिक स्थूल और अश्लील क्यो न हो सौंदय सष्टि और मन की अकुण्ठ अभिव्यक्ति की दष्टि से परम सराहनीय है। वह दमित मन और मानसिक घुटन से परिपूण आधुनिक अभिव्यक्तिया से निश्चय ही श्रेष्ठतर है। रीति के बन्धन म जकडे हुए कवि के काव्य मे उसकी लौकिक, भौतिकतवादी या ऐहिकतापूण जीवन दृष्टि स्पष्ट लक्षित की जा सकती है। प्रणय के सयोग वियोग पक्षो म नाना मनोदशाओ का जसा स्वाभाविक विधान किया गया है वह सामान्यत दुलभ है। यौवनागम रूप राशि का प्रभाव प्रगाढ अनुराग प्रियतम का प्यार रूप और प्रम का गव अभिलाषायें ईर्ष्या रोष खीझ प्रणय आसक्ति आदि के चित्र इतने हृदयग्राही हैं क्योकि उनमे जीवन के एक ही अश की सही स्वाभाविकता पूणतया बिंबित है। और कुछ नही तो यही सही कि वे साधारण मानव के मन की साध को मूत्त करते हैं। कला की आयोजना ने इन चित्रा को अधिक मार्मिक और अनुरजक बना दिया है। कला और जीवन दोना ने मिलकर रीतिकाव्य को सौंदय से मढ दिया है। इन

---

१ रीतिकाव्य की भूमिका (सन् १९५३), पृ० १३४

रचनाओ के माध्यम से हम तत्कालीन सामाजिक जीवन का समग्रत नहीं तो अंशत ही सही अच्छी तरह जान सकते हैं। इस दृष्टि से इस युग का साहित्य इतिहास को भी पर्याप्त सामग्री प्रदान कर सकता है। नायिकाओ के विवेचन म तो शृ गार का समावेश था ही अलकारो के उदाहरण रूप म भी शृङ्गारी रचनाएँ ही लिखी गईं। शृङ्गार के एक-एक अवयव को लेकर कवियो ने कितनी ही उद्भावनायें की है। शृङ्गार का वणन या निरूपण करते हुए उसके आलम्बन नायक-नायिका का वणन वर्गीकरण अत्यधिक विस्तार से किया गया। यह प्रवृत्ति यहा तक बढ़ी कि रस के एक अग, आलम्बन के एक अग नायिका का ता छाडिये नायिका के भी एक-एक अग पर अलग-अलग ग्रथ लिखे गये जिसके परिणामस्वरूप तिलशतक और अलकशतक जैसी रचनाएँ सामने आती हैं। यह शृङ्गारिकता की हद है। 'नखशिख वणन' ता अत्यन्त प्रिय विषय बन गया। इसी पर कितने काव्यग्रथ लिखे गये। इसी प्रकार शृङ्गार के उद्दीपक ऋतुओ तथा वष के द्वादश मासो को लेकर कितने ही षडऋतु वणनात्मक ग्रन्थ और 'बारहमासे' लिखे गये। यह सब शृङ्गारिकता और शृङ्गार रस को ग्रहण करने के परिणामस्वरूप हुआ। नारी युग की सारी शृङ्गारवणना का केन्द्र हो गई। रस का निरूपण करते हुए शृङ्गार का ही अत्यन्त विस्तार से वणन किया गया शेष आठ रसो को उसके अन्तर्भुक्त कर दिया गया और एक एक छन्द म उनका उल्लेख कर काम चलता किया गया। शृङ्गारिकता की प्रवृत्ति तो यहा तक प्रबल हुई कि वीर या रौद्र रस का उदाहरण देना हुआ ता भी शृ गार क प्रसग क अन्दर मे ही उदाहरण छाँट कर लाय और वीरो के युद्ध के बजाय प्रमी प्रमिका क रतिरण का दृश्य सामने रखने लगे। यह सब समसामयिक युग क शासक और सामन्त वग की विलासिता और कवियो की दरबारदारी का तो परिणाम था ही भक्तिकालीन कृष्ण भक्ति के अन्तगत प्राप्य शृ गारिकता क प्रभाव के कारण भी हुआ इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। परम्परागत कृष्ण भक्ति काव्य क अन्तगत शृ गार के सन्निवेश का पूरा अवसर देख रीति-कवि राधाकृष्ण के व्याज स युग की और अपनी भी शृ गारिक भावनाओ को व्यक्त करने लग। फलस्वरूप राधाकृष्ण का वह दिव्य अलौकिक और भक्ति भावोत्तेजक रूप मन्द पड़ गया और उनका विलास प्रिय कामुक रूप ही प्रकट रूप म सामने आया। रीतिग्रथो का कृष्ण भक्ति का शृ गार प्रधान रूप और शृ गारी कृष्ण भक्ति काव्य म रीति य दोनो समान रूप स प्रविष्ट हुए मिलते हैं। गापीकृष्ण के बहाने कवियों ने रूप सौन्दय नाना अग चेष्टाओ मानसिक भाव व्यापारो तथा रीतिशास्त्र म गिनाये गये विषयो यथा अष्टयाम अथवा दिनचया मान ऋतुकृत उद्दीपन या षडऋतु बारहमासा नखशिख, हावभावा तथा सभाग शृङ्गार के अश्लील प्रसगो का वणन प्रचुरता स किया।

रीतिबद्ध कवियो क काव्य की तीसरी प्रधान प्रवृत्ति थी—कला प्रधानता या आलकारिकता। यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि रचना रसशून्य हो सकती थी किन्तु अलकार-शून्य नहीं। साधारण कथन इनकी दृष्टि म काव्य न था उक्ति चमत्कार रहित रचना

मे काव्यत्व न माना जाता था। इस युग की रचना म ऊपरी कारीगरी या अलङ्कृति पूरी पाई जायगी। इस युग म अधिकाश कवि उक्ति शूर हुआ करते थे। वचन वक्रता उक्तिवलक्षण्य, कथन सौष्ठव आदि पर ही उनका ध्यान केंद्रित रहता था। इसी कारण इन रीतिबद्ध कर्ताओ की कविताएँ सभा समाजा म विशेष आदत हुआ करती थीं। ऐसी रचनाओं के पीछे सभा म बाजी मार ले जाने का उद्देश्य भी रहा करता था। और तो और स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कवि ठाकुर तक न एक जगह कहा है कि जो कवि राज सभा म बडप्पन पावे वही कवि बडा हुआ करता है और मुझे प्रिय लगता है—

**ठाकुर सो कवि भावत मोहिं जो राजसभा मे बडप्पन पाव ।**
**पण्डित और प्रबीनन को जोइ चित्त हर सो कवित्त कहाव ॥** (ठाकुर)

सभा समाजा म उक्ति का सौदय दिखलाने वाले कवि किस प्रकार पद पद पर प्रशसित और सम्मानित होते हैं यह हमसे आपसे छिपा नही है। बिहारी, केशव सेनापति, आदि की कविता का समादर राज्याश्रय के ही कारण हुआ और इसी राज्याश्रय मे काव्य के कलापक्ष का विशेष पुष्ट किया गया। रचना के अंतिम चरण तक पहुँचते-पहुँचते रसिक समाज यदि झूम न जाय तो कविता नही। इसी कारण रीतिकाल के अधिकाश कवित्त-सवया मे अंतिम चरण बहुत अच्छे और वजनी बन पडे है। रचना अपने अंतिम चरण तक आते-आते अपने उत्कष पर पहुच जाती है। इतनी कलात्मक चेतना लेकर हिन्दी क किसी दूसर काव्य युग के कवि न चले। शुद्ध काव्य की दष्टि से काव्य रचना करने वाले जितने कवि इस युग मे हुए दूसरे किसी भी युग म नही। दरबारी आवश्यकताओ की पूर्ति क निमित्त रची जाने के कारण रीतिबद्ध कर्त्ताओ की रचनाओ म ऊपरी साज सज्जा और चमत्कार प्रवणता आई। एक तो उसका स्वरूप मुक्तक ही रहा दूसरे उसम कलात्मक अलकरण का वैशिष्टय या बाहुल्य रहा। समाज की रुचि को उत्तेजित और आकर्षित करने की क्षमता अलकरण एव चमत्करण म हुआ करती है यह बात माननी पडेगी। इसी कारण इन कवियो न छदो को खूब परिष्कृत किया उसम सौदय के विधान क जितने भी आयोजन हो सकते थे, किये गय। इसी कारण सानुप्रासिकता प्रवाह नाद एव लय सौदय वण विधान आदि की दष्टि स शृङ्गार युग क छद अधिक मनोग्राही बन सके है। मतिराम बिहारी पद्माकर आदि के प्रयत्न इस दिशा मे अतिशय श्लाघ्य हैं। इन कवियो का काव्य के बाहरी उपादानो पर विशेष ध्यान रहा। विभिन्न कला परम काव्य सम्प्रदायो का प्रभाव अलकार ग्रथो की रचना काव्य के क्रमागत स्वरूप मे भाव पक्ष के आधिक्य की प्रतिक्रिया और कवियो का इस प्रकार का काव्य विषयक दष्टिकोण—

**(क) दूषन को करि क कवित्त बिन भूषन कों**
**जो कर प्रसिद्ध ऐसो कौन सुरमुनि है।** (सेनापति)

(ख) जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त ।
भूषन बिनु न विराजई, कविता बनिता मित्त ।। (केशव)

(ग) कविता कामिनि सुखद पद, सुबरन सरस सुजाति ।
अलकार पहिरे अधिक, अदभुत रूप लखाति ।। (देव)

इस युग में काव्य को अधिकाधिक कला प्रधान बनाने म सहायक रहा । फारसी काव्य की प्रतिद्वद्विता में खडे होने के कारण दरबार म बाजी मार ले जाने की उद्दाम स्पृहा के कारण, और कला-कौशल प्रदशन की प्रवृत्ति रखने के कारण इस युग के काव्य मे कारीगरी और सजावट की बारीकियो की ओर कवियों का ध्यान स्वभावत विशेष रहा । नाजुक ख्याली ले आने मे, उक्ति वचित्र्य के विधान में और शब्दविधान के सौन्दय मे अतिशयोक्ति वक्रता, वचित्र्य एव नाद सौन्दर्यमूलक अलकारो का विशेष व्यवहार हुआ परन्तु काव्यगत रस के आधार को छोडा नही गया । इस प्रकार लगभग २०० वर्षो तक कला प्रधान काव्य रचना का क्रम स्थापित हो जाने के कारण इस सम्पूर्ण युग म ही एक विशिष्ट,कलात्मक दृष्टि का विकास हुआ । लोक मे काव्याभिरुचि और सौन्दर्यादश जागृत हुये और कला निणय की शक्ति विकसित हुई । रीतिबद्ध धारा के महत्वपूर्ण कवि हैं—केशवदास चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, कुलपति देव श्रीपति, भिखारीदास, महाराज जसवन्तसिंह दूलह पद्माकर ग्वाल प्रतापसाहि आदि ।

## रीतिसिद्ध काव्य (लक्ष्यमात्र काव्य)

रीतियुग मे शृङ्गार की रचना करने वाले रीतिबद्ध या रीतिग्रयकार कवियो के साथ-साथ कवियो का एक अय वग भी था जो शृङ्गार रस की रचनाएँ तो किया करता था और काव्यशास्त्र का सहारा भी लिया करता था किन्तु काव्यशास्त्रीय या रीतिग्रयों की रचना नही किया करता था । इन कवियो को रीति सिद्ध कवि या काव्य कवि और इनकी रचना को रीतिसिद्ध काव्य या लक्ष्य-मात्र काव्य कहा गया है । इन कवियो का वग सख्या की दृष्टि से रीति ग्रन्थकार कवियो की अपक्षा छोटा है किन्तु इनकी प्रवृत्तियाँ बहुत स्पष्ट हैं । रीतिसिद्ध कवियो म बिहारी, सेनापति, बनी कृष्ण कवि, रसनिधि, नवाज, पजनेस नृपसम्भु, प्रीतम, रामसहायदास, हठी आदि का नाम लिया जाता है ।[१] बिहारी सतसई, मतिराम सतसई, रसनिधि कृत रतनहजारा, रामसहायदास कृत राममतसई आदि ऐसे ग्रय हैं जो लक्ष्यमात्र काव्य या रीतिसिद्ध काव्य की कोटि मे रख जा सकते हैं । इसी प्रकार रीतियुग म लिखी गई बारहमासा नखशिख षडऋतु सम्बन्धिनी रचनाएँ भी इसी कोटि मे आती हैं । इन कवियों की रचना रीति स बधी हुई है । उसम रीति की एसी छाप मिलती है कि जो रीति की परम्परा स अपरिचित है वह इनकी कविता का पूरा-पूरा आनन्द नही ले सकता । इनकी रचनाएँ एसी होती हैं जिन्हे रसों तथा उसके अवयवो, अलकारो एव

---

१ हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास षष्ठ भाग पृ० ५०८ ४८

नायिका भेद म सरलता से विभक्त किया जा सकता है। लक्षण-ग्रथो की रचना स विरत रहकर भी रीति की पूरी-पूरी छाप रखने के कारण य कवि रीतिसिद्ध कवि या काव्य कवि कहलाय और इनका काव्य रीतिसिद्ध काव्य अभिहित हुआ। रीतिवद्ध लक्षणकार कविया (शास्त्र कवि या आचाय कविया) से ये भिन्न थे।

रीतिसिद्ध कवियो की रचनाआ म शास्त्रीय सिद्धाता का निरूपण और लक्षण निर्माण ता नही हुआ फिर भी इनका रचनाएँ ऐसी वन पडी हैं जो किसी न किसी काव्याग के उदाहरण के रूप मे अवश्य रखी जा सकती है। इन्हे रीतिसिद्ध या रीत्यनुसारी या लक्षणानुसारी कवि कहन का यही कारण है। लक्षणो का नियमत पूरा पूरा पालन न करने पर भी य उनस सपूणत मुक्त न थे जैसे कि स्वच्छन्द कवि थे परन्तु नियमानुसरण करत हुए भी ये स्वतन्त्रता लेते थे। लक्षणग्रन्था की रचना से ये विरत रहते थे पर रीति की पूरी छाप भी रखते थ। रीतिग्रन्थो के कर्ता कवियो स य अवश्य कुछ विशिष्टता रखते थे इसी से इन्ह पथक करने की आवश्यकता समझी गइ। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र के शब्दो म **इस प्रकार के कवियों को जो रीतिवद्ध नहीं और लक्षण ग्रन्थों स ऐसे बँधे भी नहीं कि तिल भर उससे हट न सकें, भले ही वे रीति की परम्परा को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बनाते हों, रीतिसिद्ध कवि कहना चाहिए।**[1] रीति का बधी परिपाटी म इनकी आस्था पूरी थी किन्तु य उसके पूरे गुलाम होकर नहा चलना चाहते थ। उससे अलग हटना भी इन्ह अभीष्ट न था उसकी पूरी दासता भी इन्ह स्वीकाय न थी। इस प्रकार स य मध्यमपथी थ। रीति की सारी परम्परा का इन्ह अच्छा ज्ञान था। कह सकते है कि रीति का समूचा शास्त्र इन्हे सिद्ध था और इन्होने रचनाए भी तदनुरूप ही की हैं किन्तु उसकी बाध्यता इन्हें न थी। य इच्छानुसार स्वतन्त्र भावो का भी सामने लाते थे और अभिनव सूक्तिया का भी विधान करत थे। लक्षणग्रन्थो से बाहर जान की इन्होंने पूरी छूट ल रखी थी। इसी कारण बिहारी रसनिधि सेनापति आदि के छन्द रीत्यनुसारी हाकर भी रीतिग्रस्त नहा थ। रीतिकविया की श्रेणी म अगर इन्ह बिठा दिया जाय तो य अपनी स्वतन्त्र चेतना क कारण पृथक दिखाई पडेंगे। काव्यरीति से पूणत अभिन्न थे किन्तु इनकी स्वतन्त्र चेतना रीति की वेदी पर पूरी तरह चढा नही दी गई थी। ये रीति स हटकर भी जब तक अपनी कल्पना या उद्‌भावना की करामात दिखा दिया करते थ। तात्पय यह कि रीति के बन्धन मे ये रीतिग्रथकार कविया की तरह एकदम कसकर जकड नही जा सके थ य रीति का बन्धन ढीला करके चलते थे फलत स्वतन्त्र काव्य शक्ति एव अभिनव उद्‌भावना के निदशन का इन्ह अधिक अवसर था और इन्होंने निदर्शन भी किया। रीति के नियमो स य चालित ता होते थे किन्तु जब तब य उसका स्वतन्त्र प्रयाग भी करते थे इसी से इनकी रचना म रीतिग्रथानुसारी कवियों की अपेक्षा कुछ उत्कर्ष दिखाई देता है। यह बात भी ध्यान म रखने की है कि ये रीतिस्वच्छन्द

---

१ हिन्दी साहित्य का अतीत भाग २ (शृङ्गार काल) पृ० ५५०

धारा के कवियो की भाँति रीति से सर्वथा मुक्त न थे। रीति की सारी परम्परा इन्होंने अवश्य सिद्ध कर रखी थी, उसकी छाप इन पर पूरी-पूरी थी किन्तु ये आवश्यकता पड़ने पर भाव अथवा कल्पना के आग्रह पर रीति के दाएँ-बाएँ होकर भी अपना करतब दिखाते थे। रीति रानी के ये सर्वदा दास ही नहीं बने रहते थे, इच्छा होने पर अपना स्वामित्व भी दिखा जाया करते थे।

लक्षणानुधावन से विरत रहने के कारण इनकी रचनाएँ कुछ स्वतन्त्रता लिये हुए हैं तथा उनमे व्यक्ति-वैशिष्ट्य का भी थोड़ा विकास हुआ है उनका निजी अस्तित्व बना रह सका है। जो लोग रीतिग्रंथ लिखते थे उन्हें लक्षणगत नियमो के पालन पर पूरा ध्यान रखना पड़ता था और सारी कल्पनाए तदनुकूल करनी पड़ती थी। उपमाएँ उत्प्रेक्षाएँ प्रसंग वर्ण्य सभी कुछ शास्त्रानुकूल और परम्परागत ढग से बिठाते चलते थे। लक्षणो से बाहर जाने की उन्हें गुंजाइश न थी। पर ये रीतिसिद्ध कवि रीति से केवल संकेत ग्रहण करते थे और भाव तथा कल्पना का बंधन स्वतन्त्र ढग से भी करते थे। यही कारण है कि जहाँ ये लोग नवीन उद्भावनाएँ कर सके हैं रीतिग्रंथकार कवि अपनी रचनाओ मे प्राय नवीनता या वैशिष्ट्य नही ला सके हैं। बिहारी की रचनाओं के वैशिष्ट्य का यही कारण है। यदि वे रीतिग्रंथो में दिये लक्षणो से बँधकर रचना करने मे दत्तचित्त हुए होते तो उनकी रचनाओं में व्यक्त उनकी जो स्वतन्त्र सत्ता है वह लुप्त हो गई होती। कवित्त सवैया ऐसे अधिक प्रचलित छंदो की अपेक्षा बिहारी ने दोहे का जो ग्रहण किया वह भी इसी व्यक्ति वैशिष्ट्य का सूचक है। उनके दोहों मे जो सूक्ष्म कारीगरी है, वर्ण एवं नाद सौंदर्य का विधान है गहरी अथवत्ता और ध्वन्यात्मकता है, वह कोरी रीति प्रथा का अनुसरण नही। वह स्वतन्त्र कवि अस्तित्व के विकास का विशाल प्रयास द्योतित करती है। मात्र रीतिबद्धता से पूरा पड़ता न देख बिहारी रसनिधि आदि कवियो ने अपने स्वतन्त्र कवि व्यक्तित्व की सूचना अपनी रीति से पृथक् और विशिष्ट कलात्मक योजनाओ एवं साज सभार द्वारा दी। बिहारी के दोहो को लक्षण-लक्ष्य लिखने वाले रीतिकारो के उन दोहो के साथ यदि रख दिया जाय जिनमे लक्षणो के उदाहरण दिये गये हैं तो रीतिसिद्ध कवियों के वैशिष्ट्य का पता चल जायगा। रीतिग्रंथो के ऐसे कर्त्ता कवि जो अपनी व्यक्तिगत विशेषताओ के कारण पहचान जा सकें देव मतिराम सरीखे कम ही हैं, जो पहचाने जा सकते हैं उनके पहचाने जाने का कारण यही है कि उन्होंने जब तब या बार-बार अपनी स्वतन्त्र कवित्व शक्ति या अपने वैशिष्ट्य का परिचय दिया है जो रीति से बँधा रहकर भी नवीनता का विधान करती रही है।

रीति की सुनिश्चित परिपाटी के अनुकूल रचना करते हुए भी रीतिसिद्ध कवियो ने लक्षण ग्रंथो की रचना नहीं की। ये कवि रीति या लक्षण ग्रंथो की रचना मे इसलिए प्रवृत्त न हुए क्योंकि इन्हें कविगुरु, कविशिक्षक या आचार्य बनने का प्रचलित रोग न था। ये रीतिसिद्ध कवि ऐसे हैं जिनकी उक्तियो या अभिव्यक्तियो मे रीति

की पूरी परम्परा सिमटी हुई है साथ ही साथ ये उसस ऐसे चिपक भी नहीं गये हैं कि तिलभर हट न सकें। इसका कारण यही था कि ये कवि गौरव के अभिलाषी थे कविगुरु काव्य शिक्षक या काव्याचाय बनने के नही। इनकी दृष्टि मे कवित्वशक्ति के निदशन द्वारा काव्य रचना के पुनीत क्षेत्र मे वशिष्टय लाभ करना अधिक श्रेयस्कर था इसके बजाय कि कवि शिक्षा की साधारण पाठय पुस्तक लिखकर रीति का आचाय कहलाना। इनम कवित्व की स्पृहा थी। ये कवि होना अधिक सम्मान की बात समझते थे अपेक्षाकृत इसके कि छोटी मोटी कवि शिक्षा का पुस्तक लिखकर काव्य चाय का बहुकाक्षित पद प्राप्त कर लें। गुरुत्व या कविशिक्षक होने की कामना इह न थी। ये कवि अवश्य इस बात स भली भाति परिचित रहे होगे कि सस्कृत काव्या शास्त्र की विकसित सूक्ष्म विवेचनापूण परम्परा के सामने भाषा म लिखे गये अलकार ग्रथ कितने साधारण कोटि क है एस रीति ग्रथो के सग्रह अथवा अनुवाद से कोई विशेष लाभ या गौरव नहो। इसी कारण इनका काव्य अधिक सरस और मार्मिक बन पडा है। उक्तिया चमत्कार से पूण हैं रीति की पद्धति से सयुक्त भी फिर भी रीति के लक्षणा से जहाँ-तहा स्वतत्र लवण पीछे छूट गये हैं। रीति की सारी बातो को ग्रहण करते हुए चलने म इनका विश्वास न था। शास्त्रस्थिति सपादन मात्र से ये सतुष्ट न होते थ। कभी वे अपने काव्य मे शाब्दिक एव आर्थिक अलकारा की नई चमत्कृति दिखलाते थे तो कभी अभिनव कल्पना विधान एव स्वतत्र भाव सृष्टि द्वारा नूतन ढग का रस सचार भी करते थे। आँख मूदकर काव्य प्रौढियो का अवतर हार्यें सदा नही किया करते थ, कभी कविता मे ये अपनी जिन्दगी के अनुभव भी उडेल दिया करते थे। इसी म इनकी रचना की विशिष्टता है। कोरे रीतिग्रयकारों में यह बात नही, वे तो लक्षण से इधर-उधर हटे नही कि सारा खेल बिगडा नहा। शुद्ध रीतिकार लक्षणो स इधर उधर नही जा सकते थे, रीतिसिद्ध कवि लक्षणो को दिशा निर्देशक मात्र समझते थे। इसमे रीति है चमत्कार भी किन्तु स्वानुभूति और रस की व्यजना भी। रस सचार के लिये य काव्य-कवि स्वानुभुतियो के सहारे अभिनय कल्पनाआ एव उद्भावनाआ की सृष्टि कर काव्य म नवीनता और रमणीयता का सचार करते थे। केवल शास्त्रों की ही गिनी गिनाई बातें सामने नही रखते थे वरन् ससार विपयक अपने अनुभव क सहारे भाव एव सौदय विधान की नई सामग्री पेश करते थ। यदि य भा लक्षण ग्रथ रचना मे प्रवत्त होते तो ऐसे सरस और अभिनव उक्तियो से पूण काव्य की रचना ये न कर पाते जिनके कारण इनका वशिष्टय स्वीकार करना पडता है।

शृगार की सुदर सरस रचना प्रस्तुत करने मे ये रीतिसिद्ध कवि सस्कृत की शृगार की मुक्तक परम्परा से अवश्य प्रभावित हैं। प्राकृत म लिखी हाल की गाथा सप्तशती सस्कृत के अमरुक कवि क अमरुक शतक तथा गोवधन की 'आर्या सप्तशती भतृहरि के शृगार शतक आदि काव्या का प्रभाव रीतिसिद्ध कवियों पर पूरा-पूरा है। प० पद्मसिंह शर्मा ने अपने सतसई सहार मे बिहारी के अनक दोहो पर आर्या

सप्तशती के श्लोका का प्रभाव दिखलाया है। सस्कृत और प्राकृत से होती हुई यह शृ गार मुक्तक परपरा अपभ्र श भाषा के ग्रथो मे भी प्राप्त होती है—हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण तथा द्वयाश्रम काव्य, सामप्रभाचाय के कुमारपाल प्रतिबाध राज शेखरसूरि के प्रवन्ध कोष, प्राकृत पगलम् और पुरातन प्रबध-सग्रह। सस्कृत के शृ गार तिलक घटकपरि भतृ हरि रचित शृ गार शतक विल्हण की चौर पचाशिका आदि भी शृ गार प्रधान मुक्तक ही हैं। बिहारी आदि काव्यकवियो के शृ गारी मुक्तका को इस परम्परा से थाडी बहुत प्रेरणा अवश्य प्राप्त हुई क्योकि इन रचनाओ मे एक ता लक्षणानुधावन का बन्धन नही और य कवि बधन ढीला करके चलना चाहत भी थे। दूसर इन मुक्तको मे जीवन के ऐहिक एव भोगपरक पक्ष क चित्रण का आग्रह था जो इनकी और समसामयिक रुचि क अनुकूल भी था। इस परपरा का उद्देश्य ही शृ गार क रसात्मक मुक्तका द्वारा चित्त को उत्फुल्लता प्रदान करना था। वही काय हमारे रीति सिद्ध कविया ने भी अपन जमान मे किया।

रीतिबद्ध कवियो न काव्याग विवेचन तो किया किन्तु वह बहुत हल्क ढग का रहा। सस्कृत मे काव्यशास्त्र की जसी मीमासा हो चुकी थी वसी व्याख्या विवेचना मण्डल-मण्डन की न तो रीतिबद्ध कवियों मे वत्ति ही थी और न क्षमता। कुछ कवि अवश्य आचाय कोटि म हो गये हैं केशव भिखारीदास कुलपति प्रतापसाहि आदि किन्तु विशद मीमासा आदि की आर ये लाग भी न गये। अधिकाश आचाय तो सस्कृत के उत्तरवर्ती अलकार ग्रथा का ही पल्ला पकडकर रह गये जिनम काव्यागा का सरल और स्पष्ट विवेचन मात्र हुआ था। उदाहरण के लि चन्द्रालोक कुवलयानद सरतरगिणी, रसमजरी आदि। बहुत आगे गये ता साहित्यदपण और काव्यप्रकाश तक किन्तु स्वतन्त्र-सिद्धान्ता की स्थापना करने वाले मौलिक ग्रथा जस ध्वन्यालोक लाचन वक्रोक्ति जीवितम काव्यालकार सूत्रवृत्ति काव्यादश, काव्यालकार तक ये कवि प्राय नहीं गये। रसस्वरूप, काव्यस्वरूप काव्यात्मा, रसनिष्पत्ति आदि सूक्ष्म शास्त्रीय प्रसगा की ओर ता किसी न जाने का साहस भी नहा किया। शास्त्रज्ञता और आचायत्व के लाभ से ये हिन्दी रीतिकार या रीतिबद्ध कवि सस्कृत काव्यशास्त्र के विशाल प्रासाद की बाहरी परिक्रमा या अधिक स अधिक आँगन चक्कर लौट आय और मोटे-मोटे काव्याग-लक्षण निरूपण के ब्याज स शृङ्गार रस के उदाहरण प्रस्तुत कर सके तथा इसी म अपन कवि कम की इतिश्री समझ ली किन्तु रीतिसिद्ध कवियो ने इस सम्बध म अधिक विवक से काम लिया। वे जानत थे कि काव्यशास्त्र के इस सिन्धु का साधारण श्रम और मेधा म सतरण सम्भव नहीं अत ये लोग उस ओर गय ही नही। उनका ज्ञान इह अवश्य था और काव्य रचना क समय भी वह सब इनक दिमाग म रहता था। इनका रचना म रीति की जो पूरी छाप है उसका कारण भी यही है कि रीतिशास्त्र की विचारावली और उसम निरूपित विषयो और बाता की इन्हे पूरी जानकारी थी किन्तु उसे ये सामन रखकर काव्यरचना म प्रवृत्त न होते थ। वह पृष्ठभूमि म ही रहती थी और उसस ये सकेत या प्रेरणा ग्रहण करते थ किन्तु

सस्कृत काव्यशास्त्र के अतिरिक्त य कवि सस्कृत के शृङ्गारी मुक्तका की परम्परा से विशेष प्रभावित हुए जिसका विकास पचाशिका शतक एव सप्तशती पद्धति के ग्रन्था के माध्यम से सस्कृत, प्राकृत अपभ्रश आदि म हो चुका था जिसकी चर्चा हम पहले कर आये हैं।

रीतिसिद्ध कवियो की मानसिक पष्ठभूमि के निर्माण म सस्कृत रीतिग्रथो का भी हाथ रहा है। जसा हम पहले कह आये हैं ये रीतिसिद्ध कवि रीति की पूरी पूरी परपरा से वाकिफ रह हैं। रस ध्वनि अलकार आदि सम्प्रदायो की इन पर भी पूरी पूरी छाप थी। नवजा बेनी नपशभु रसनिधि हठी, पजनस आदि रसवादी कवि ही थ। बिहारी जो लाग रसवादी कहते हैं किन्तु डा० रामसागर त्रिपाठी ने अपन प्रबन्ध मे उन्ह रीतिकाल का प्रधान ध्वनिवादी कवि सिद्ध किया है।[१] सेनापति अवश्य अलकारवादी थे। इतना तो स्पष्ट ही है कि कवित्व के प्रेमी य रीतिसिद्ध कवि अल कार और वक्रोक्ति सम्प्रदाया से कम रस और ध्वनि सप्रदाया से विशेष प्रभावित थे। इनकी काव्यवृत्ति देखते हुए यह बात ठीक ही जचती है।

रीतिशास्त्रीय विषया की ही मानसिक पष्ठभूमि होने के कारण इन कवियो ने भी नायिका भेद ऋतु वणन बारहमासा नखशिख आदि परम्परागत और शास्त्र कथित विषयो को काव्य के वण्य के रूप म प्रचुरता से ग्रहण किया परन्तु उसमे अपनी नूतन गति का परिचय दिया। य विषय ऐस थ जिन पर स्वतन्त्र ढग स निजी अनुभव के बल पर काफी कुछ कहने का अवकाश था। ये विषय रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध दोनो ही प्रकार के कविया द्वारा उठाय गय किन्तु भावनाआ एव उदभावनाओ की नूतनता रीतिसिद्ध कवियो म ही अधिक मिलेगी।

इन काव्य कविया न काव्य के कला पक्ष के साथ-साथ भाव पक्ष पर भी पूरा बल दिया है फलत दोनो का अच्छा समन्वय इनके काव्य की एक सवमान्य विशेषता है। य कवि कम के प्रति अधिक स्वस्थ और सतुलित दष्टि रखते थे फलस्वरूप काव्य के भाव और कला दोना पक्षा को समान महत्व देते थ। एक ओर जहाँ इन काव्य कवियो ने अपनी कविता के भाव पक्ष या वण्य की नवीनता और ताजगी देन की चेष्टा की, उसे चर्वित चवण मात्र होने से बचाया अपनी और अपन युग की सीमाओ से सीमित या बँधे रहने पर भी एहिकतापरक शृङ्गारी रचनाआ द्वारा रस-सचार और आनद सृष्टि का आयोजन किया वहा दूसरी ओर उन्होने काव्य के कलापक्ष के वास्त विक सभार की ओर भी ध्यान दिया। रीतिकालीन आचाय कविया की अपेक्षा रीति बद्ध काव्य कवियो ने भाषा की लक्षणा और व्यजना शक्ति पर अधिक ध्यान दिया और उसे अधिक विकसित किया। लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता बिहारी रसनिधि आदि म रीतिबद्ध आचाय कविया की अपक्षा अधिक है। इनमे भाषा का अधिक सामासिक रूप मिलता है। बिहारी रसनिधि रामसहाय आदि काव्य कविया ने अपने दोहो को

---

१ मुक्तक काव्य परम्परा और बिहारी डा० रामसागर त्रिपाठी।

भावपूर्ण और सुगठित तथा सौंदर्य सम्पन्न करने के लिए काव्य की समास पद्धति का पर्याप्त उत्कर्ष दिखलाया है। अलंकारों के प्रयोग में भी इनकी दृष्टि अधिक विकसित और पूर्ण थी। वक्रोक्तियों के माध्यम से भी इन्होंने पूर्ण रस संचार और काव्य को आनन्द प्रदान क्षम बनाने में सहायता पहुँचाई। भाषा को मृदुल, कोमल नाद सौंदर्य से परिपूर्ण बनाने की इन्होंने चेष्टा की तथा प्रचलित कवित्त सवैया के अतिरिक्त दोहा पर इन्होंने विशेष ध्यान दिया।

रीतिबद्ध काव्य कवियों की प्रवृत्तियों और विशेषताओं के उपयुक्त निवचन के अनन्तर रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य कर्त्ताओं के बीच भेदक रेखा खींच देना भी अनिवार्य जान पड़ता है क्योंकि दोनों की काव्य रचना पद्धति और ध्येय में एक निश्चित भिन्नता थी। रीतिबद्ध कवि लक्षण ग्रंथों की रचना करते थे और लक्षणों को घटित करने वाले उदाहरण के रूप में अपनी कविता लिखते थे। रीतिसिद्ध कवि लक्षण ग्रन्थ नहीं लिखते थे फिर भी रीति की पूरी पूरी छाप लिये हुए थे। रीति का पीछा नहीं छूटा था किन्तु रीति की जकड़न से ये अवश्य मुक्त थे। पहली श्रेणी के कवि हैं केशव देव, भूषण मतिराम, दूलह दास पद्माकर आदि दूसरी श्रेणी के कर्ता हैं बिहारी सेनापति, रसनिधि, पजनेस आदि। पहली श्रेणी के कवि रीतिबद्ध कवि, रीति ग्रंथकार लक्षणकार आदि कहलाते हैं और दूसरी श्रेणी के रीतिसिद्ध लक्ष्यकार काव्य कवि आदि। रीति ग्रंथकार कवि रीति के बंधनों से बेतरह जकड़े हुए थे। उन्हें लक्षण-लक्ष्य का समन्वय करते हुए चलना था व लक्षणों से बाहर नहीं जा सकते थे पर सतसई और हजारा लिखने वाले रीतिसिद्ध कवि रीति का बंधन ढीला करके चलते थे तथा शास्त्रोक्त सामग्री अथवा नियम का उपयोग अपने ढंग से करते थे। इसीलिए नायिकाओं अलंकारों आदि का न तो इन्होंने क्रमिक रूप से वर्णन किया और न उनके समस्त भेदोपभेदों का सांगोपांग वर्णन ही। फलस्वरूप रीतिसिद्ध कवि रीतिबद्ध कवि की अपेक्षा स्वतन्त्र थे। इस स्वतन्त्रता का उपयोग इन्होंने अपनी कवित्व शक्ति के प्रदर्शन और नई-नई उद्भावनाओं के निदर्शन में किया। फलतः काव्यत्व का उत्कर्ष और रमणीयता इनमें रीति ग्रंथकारों से अधिक ही मिलेगी। इनका मत यह था कि शास्त्र में कथित बातें मार्ग निर्देशन के लिए हैं उनके सहारे नई कल्पनाएँ और बातें पैदा की जा सकती हैं पर रीतिग्रंथकार कवि लक्षणों को ही सब कुछ समझते थे, व उससे बाहर नहीं जा पाते थे। रीतिग्रंथकार कवियों ने आचार्य पद पाने और कविशिक्षक का गौरव प्राप्त करने के उद्देश्य से लक्षणों का बोझ ढोना पसन्द किया किन्तु कवि गौरव के अभिलाषी लक्ष्यकार कवि रीति का सहारा लेकर भी रीति के पचड़े में नहीं पड़ना चाहते थे। रीति के एक एक नियम का अनुसरण काव्य सौन्दर्य के लिए इनकी दृष्टि में घातक था। इसी से ये रीति में बँधे भी थे और इससे कुछ पृथक भी। हाँ रीति मुक्तों की भाँति ये रीति से सर्वथा स्वतन्त्र भी न थे। रीति इन पर हावी न थी परन्तु ये रीति के विरुद्ध भी न थे। रीति इनके लिए सहारे का काम देती थी। रीति के सहारे ये काव्य कवि के गौरवपूर्ण पद तक पहुँच सके थे। गुरुत्वकामी रीतिकारों की प्रतिभा

अपना वह उन्मेष न दिखा सकी जो कवित्व कामी कवियों की प्रतिभा द्वारा सम्भव हो सका। शास्त्रस्थिति सपालन और कविया का प्रशिक्षण इनका लक्ष्य न था, कवित्व शक्ति का उत्कर्ष दिखलाना इनका चरम काम्य था। रीतिसिद्धि कवियो को स्वतन्त्र काव्योद्भावना का अवकाश लक्षणकार कविया की अपेक्षा अधिक था। फलत इनमे भावुकता, मौलिकता, अभिनव कल्पना आदि लक्षणानुधावन करने वाले रीति कर्ताओ से अधिक थी और व्यक्ति वैशिष्ट्य के आधार पर भी इन्हें पहचाना जा सकता है। बिहारी अपनी नई सूझ-बूझ वाली उक्तियो के बल पर ही रीतिबद्ध कविया से पृथक किये जा सकते हैं जबकि रीति की उँगली पकडन वाला की बहुत सी रचना एक-सी ही हो गई हैं। उन्हें व्यक्तिगत विशेषता के आधार पर अलग कर सकना सभव नही है। वैयक्तिकता का यह विकास रीतिमुक्त कविया म और भी अधिक मिलेगा। रीतिबद्ध कविया म पिष्ट पेषण और चर्वित चवण सबस अधिक है। रीतिबद्ध कविया म कला पक्ष प्रधान है और भाव पक्ष गौण। रीतिसिद्ध कवियो म कला पक्ष और भाव पक्ष का समभाव है और रीति विरुद्ध या रीतिमुक्त कविया म भाव पक्ष प्रधान और कला पक्ष गौण है। कला और भाव पक्ष का यह तारतम्य तीनो धाराओ की पृथकता का सबस अच्छा आधार है।

## रीतिमुक्त काव्य (रीतिस्वच्छन्द काव्य)

रीति या शृगार काल म रीतिमुक्त काव्य धारा वह थी जिसके अग्रदूत थे रसखान और आलम तथा पुरस्कर्ता थे घनआनन्द बोधा ठाकुर आदि प्रेमोन्मत्त कवि। ये भी शृगार की रचना करते थे परन्तु राजेच्छा की तुष्टि या युग के स्वर म स्वर मिलाने के उद्देश्य स नहीं। ये अपनी उमग पर थिरकने वाले प्रेम के पपीहे थे जो किसी रीति या शास्त्र के बधन को नही मानते थे काव्य की रूढ रीतिया के कगारा को तोडती हुई जिनकी काव्य-पयस्विनी प्रवाहित हुई थी। भाव और कला सभी क्षेत्रो म स्वतन्त्रता या स्वच्छन्दता जिनका नित्य गुण था और जो नायिका भेद रस, अलकार आदि के ग्रथो स निरपेक्ष हो अनुभूति प्रेरित काव्य की रचना किया करते थे। ये कवि नही प्रेम के चातक थे जिनका प्रेम विरह और पीडा में अपनी सार्थकता मानता था मिलन और भाग मे नही। इनके यहाँ तीव्र अनुभूति का ही दूसरा नाम काव्य था। इनकी चर्चा कुछ अधिक विस्तार के साथ हम अगले प्रकरण मे करना चाहते हैं क्योकि घनआनन्द इसी धारा के अन्यतम प्रतिनिधि थे।

## २

# रीति स्वच्छन्द काव्य धारा

प्रेम के जिन उन्मुक्त गायकों ने हिन्दी साहित्य के मध्य युग में रीति स्वच्छन्द शृंगार काव्य की धारा प्रवाहित की उनमें प्रधान हैं रसखान आलम घनआनन्द, ठाकुर बोधा और द्विजदेव। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी काव्य में स्वच्छन्द प्रेम भावना का जैसा पोषण इन कवियों से प्राप्त हुआ दूसरा से नहीं। प्रणय भावना तो सभी देशों के काव्यों में सभी समय मिलेगी। हिन्दी काव्य साहित्य में इन रीति निरपेक्ष कवियों की प्रेम भावना विशिष्ट है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये कवि प्रेम के ही बने थे इनमें अपर तत्त्व कुछ था ही नहीं। इन कवियों का प्रेम निर्बन्ध है—वह लोक-लाज नहीं मानता लोक रीति का अनुसरण नहीं करता, मान अपमान की परवाह नहीं करता कुल धर्म की अवहेलना करता है और स्वच्छन्द वायुमण्डल में जीता है। इनका प्रेम काव्य शास्त्रीय आचारों और मर्यादाओं में भी बद्ध नहीं है। इनके प्रेम का निवेदन सखी सखा या दूतियाँ नहीं करतीं और न ही वे इन कवियों तक रूप-सौन्दर्य विरह वेदना आदि के सन्देशे लाकर इनमें किसी के प्रति रति या करुणा को जागृत करती हैं। इनमें रुचि आप जगती है ये प्रेम का निवेदन आप करते हैं। इसी से इनके प्रणय भाव का रीतिकार या रीतबद्ध कवियों के प्रणय भाव से विभेद देखा जा सकता है। ये किसी आरोपित प्रेम भावना को लेकर नहीं चला करते। ये गोपियों के प्रेम का काव्य परम्परा रूढ़ि या कल्पना के आधार पर अनुभव करते हुए काव्य रचना नहीं करते। प्रेम इनके जीवन में आया हुआ होता है। वह इनके हृदय से होकर गुजरी हुई चीज होती है। लगभग सभी रीति स्वच्छन्द कवियों की प्रेम कहानी हिन्दी संसार में प्रसिद्ध है। आलम और शेख का प्रेम घनआनन्द और सुजान का बोधा और सुभान का, इसी प्रकार ठाकुर का भी वैयक्तिक प्रेमाख्यान अविदित नहीं। रसखान भी किसी से दिल लगाने के बाद ही भगवदोन्मुख हुए थे। जाहिर है कि इनके प्रेम में तीव्रता होगी सच्चाई होगी जो इनके काव्य में भी यथावत प्रतिफलित है। इनके काव्य में जो तीव्र स्वानुभूति और व्यक्तिनिष्ठता है वह भी इसी कारण। सारांश यह कि इनका जीवन और व्यक्तित्व ही प्रणय विनिर्मित था जो अत्यन्त जीवन्त रूप से इनके काव्यों में प्रतिच्छायित मिलेगा।

ये कवि काव्य की समसामयिक प्रवृत्तियों और पूर्ववर्त्तिनी परम्पराओं से अनभिज्ञ रहे हों सो बात भी नहीं। सभी किसी न किसी सीमा तक तत्सम्बन्धी संस्कारों से सपृक्त हैं किन्तु ये प्रभाव इतने जबरदस्त नहीं रह हैं कि वे इन कवियों को अपने नियम और रूढ़ियों के शिकंजों में बाँध सकते जैसा कि रीतिबद्ध कवियों के साथ हुआ। इन कवियों का निजी व्यक्तित्व अत्यन्त प्रबल था। वे काव्य रूढ़ियों को छोड़ कर स्वनिर्मित मार्ग पर चलने के अभिलाषी थे। उन्होंने काव्य क्षेत्र में नव पथ का निर्माण किया। भाषा और शैली शिल्प में उन्होंने अनेक नवीनताओं का विधान किया। ये कवि यह अच्छी तरह समझते थे कि काव्य में भाव या रस तत्व ही मुख्य होता है। शैली शिल्प तो आश्रित वस्तु है। वह साधन हो हो सकती है साध्य नहीं। इसलिए साधन को ही साध्य मान लेने की भूल उन्होंने नहीं की जैसा कि आचार्य केशव सरीखे कई रीतिकार कर चुके थे। इसलिए आप देखेंगे कि भाषा-अलंकरण आदि का आग्रह रीति स्वच्छन्द प्रेमी कवियों में नहीं मिलेगा। रसखान और ठाकुर की भाषा की सादगी अपनी उपमा आप है। घनआनन्द में व्यंजना की जो वक्रता है वह उनके द्वारा अनुसरित काव्य वस्तु या प्रेम वैषम्य के कारण। इन कवियों में शैली गत जो सौन्दर्य और भंगिमा है वह इनके व्यक्तिगत वैशिष्ट्य के कारण।

### काव्यगत दृष्टिकोण की भिन्नता

काव्य के सम्बन्ध में रीति स्वच्छन्द कवियों का दृष्टिकोण रीतिबद्धों से भिन्न था। वे रीति के संकरे पथों पर नहीं चलना चाहते थे, वे काव्य मंदाकिनी का मार्ग प्रशस्त करने के अभिलाषी थे। वे काव्य को स्वानुभूति प्रेरित मानते थे आयास प्रसूत नहीं इसी से वे रीतिबद्ध काव्य की उपेक्षा ही नहीं निश्चित विगर्हणा की दृष्टि से देखते थे। पिटे पिटाये ढंग पर छन्द रचना कर चलना उनकी दृष्टि में निंद्य था। परम्परागत उपमानों के विधान मात्र में जो उस काल की कविता का प्रधान प्रवृत्ति थी कवि और काव्य की कोई सार्थकता न थी। इसी से ठाकुर कवि ने काफी खीझ के साथ उस युग के रीतिबद्ध कवि को फटकारा है—

> सीख लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन,
> सीख लीन्हो यश औ प्रताप को कहानी है।
> सीख लीन्हों कल्प वृक्ष कामधेनु चिन्तामणि,
> सीख लीन्हों मेरु औ कुबेर गिरि आनो है ॥
> ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात
> याको नहीं भूलि कहूँ बाधियत बानो है ॥
> ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
> लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है ॥ (ठाकुर)

काव्य के महत्तर लक्ष्य से अनवगत उसके साथ खिलवाड़ करने वाले कवियों और उनकी आने वाली पीढ़ियों पर इस फटकार का अच्छा प्रभाव पड़ा। रीतिकाल में तो वह अभिनव पथानुधावन हुआ ही आधुनिक काल में आकर रीति से ऊबे हुए

कवियों ने काव्य क्षेत्र में सर्वथा नवीन पथ का अनुसरण किया। कविवर घनआनन्द ने भी अपनी काव्य प्रवृत्ति का क्रमागत एवं समसामयिक काव्य प्रवृत्ति से पार्थक्य इन शब्दों में घोषित किया है—

> तीछन ईछन बान बखान सो पनी वसाहि ल सान चढ़ावत।
> प्रानंनि प्यास भरे अति पानिय मायल घायल चोप चढ़ावत॥
> हैं घनआनन्द छावत भावत जान सजीवन और तें आवत।
> लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत॥
>
> (घनआनन्द)

उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि कवित्त रचना मेरा साध्य नहीं, वह साधन मात्र है। साध्य तो महत्तर है। इस प्रकार मेरे काव्य की प्रेरणा भी सघन और तीव्र है। सुजान के प्रति मेरा उत्कृष्ट प्रेम और तीव्र व्यामोह, उसके लिए मेरे प्राणों की जो तृषा है वही मेरे काव्य में कांति का सृजन करती है। जाहिर है कि ये कवि काव्य किसे कहते हैं! उनकी काव्य विषयक धारणा कितनी उन्नत है! इसके विपरीत इसी युग के रीतिबद्ध शीर्षस्थ कवियों ने कितनी तुच्छतर सिद्धियों में ही काव्य की सिद्धि मान ली थी—

(क) जदपि सुजाति सुलच्छनी सबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त॥ (केशवदास)

(ख) सेवक सियापति कौ सेनापति कबि सोई
जाकी द्वै अरथ कविताई निरवाह की। (सेनापति)

(ग) दूषन कौं करि कै कबित्त बिन भूषण कौं
जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुरमुनि है। (सेनापति)

(घ) बानी सौं सहित सुबरन मुँह रहैं जहाँ
धरति बहुत भाँति अरथ समाज कौं।
सख्या करि लीजे अलकार हैं अधिक यामैं
राखौ मति ऊपर सरस ऐसे साज कौं॥ (सेनापति)

स्वच्छन्द कवियों ने साधन को साध्य समझ बैठने की भूल न की। अलंकृति में ही काव्य की सफलता है ऐसा उन्होंने न कभी कहा न कभी माना जैसा कि सेनापति केशव आदि ने स्वीकार किया है। काव्य की चित्तहारिणी शक्ति में ही उन्होंने कवित्त का अधिवास माना और काव्यगत यह चित्तहरण शक्ति यमक अनुप्रास उपमा और उत्प्रेक्षा के विधान द्वारा प्राप्य नहीं। इसका उद्गम तो तीव्र अनुभूतियों का कोष उनका अंतस्तल ही था। स्वच्छन्द काव्य की इसी विशिष्टता को लक्ष्य करके प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कहा है—

स्वच्छन्द काव्य भावभावित होता है बुद्धिबाधित नहीं इसलिए आंतरिकता उसका सर्वोपरि गुण है। आंतरिकता की इस प्रवृत्ति के कारण स्वच्छन्द काव्य की

सारी साधन सम्पत्ति शासित रहती है और यही वह दृष्टि है जिसके द्वारा इन कर्त्ताओं की रचना के मूल उत्स तक पहुँचा जा सकता है।

इस हृदय भाव या अनुभूति तत्व को ही रीतिमुक्त काव्य में प्रधान स्थान प्राप्त हुआ है, अलकरण या भगिमा को जो बुद्धि एव कल्पना की उपज हैं गौण स्थान दिया गया है। ऐसा नही होने पाया है कि भगिमा या अलकृति (बुद्धि तत्व) को स्वच्छन्द काव्य क्षेत्र से खदेड दिया गया हो उसे रहने दिया गया है किन्तु भाव या अनुभूति (हृदय तत्व) के आधीन बना कर। रीति काव्य में तो बुद्धि (भगिमा या अलकृति) को पट्ट महिषी का पद प्राप्त हुआ था हृदय (भावानुभूति) को अधीनस्थ दासी का पद किन्तु रीति स्वच्छन्द काव्य में क्रम उलट गया है। चेरी (हृदय) रानी हो गई है और रानी (बुद्धि) चेरी—

"रीझि सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी।

(घनआनन्द)

ये कवि भावावेग मे रचना किया करते थे भाव के ऐसे आवेग में जिसके सामने काव्य-रीति कुल मर्यादा लोक लाज सभी के बन्धन टूट जाया करते थे। उनका तो कहना था कि बन्धन और मर्यादा के चक्कर में पडना हो तो इस पथ पर पाव मत रक्खो—

'लोक की भीत धरा धरो मीत तो प्रीति के पडे परो जनि कोऊ।

(बोधा)

सच बात है काव्य और प्रेम जगत के इस अभिनव पथ पर बहुतो ने पाव नही दिया इस पथ पर आने वाले थोडे ही थे चुने हुए किन्तु सच्चे जवा मर्द। प्रेम की पीर मर कर नही जीवित रह कर झेलने वाले जीते जी मृत्यु का वरण कर लेने वाले जैसे घनआनन्द कुल और धर्म को तिलाजलि दे देने वाले रसखान और बोधा। ये कवि काव्यरीति को पकड कर भला क्या चलते। इन स्वच्छन्द कवियो के काव्य का क्या आदर्श था उसके परखने की कसौटी क्या है इस घनआनन्द के कवित्त के सग्रहकर्त्ता ने बहुत मर्मज्ञता से व्यक्त किया है। उन्होने कहा है कि घनआनन्द सरीखे निबन्ध प्रेमी के गूढ प्रेम भाव भरित काव्य को समझने में साधारण व्यक्ति समर्थ नही। उसे तो प्रेम की तरगिणी में भली भाति डूबा हुआ व्यक्ति ही समझ सकता है। फिर उस व्यक्ति को व्रज भाषा का भी अच्छा जानकार होना चाहिए और नाना प्रकार के सौन्दर्य भेदो से अभिज्ञ भी। उसे सयोग और वियोग की स्थितियो एव असख्य अन्तर्वृत्तियो को समझने की शक्ति सम्पन्नता भी अपेक्षित है। किन्तु इन सारी विशेषताओ से भी विशेष जो विशेषता उसमे होनी चाहिए वह यह कि उस काव्य रसास्वादक का हृदय अहर्निश प्रेम के तरल रग मे सराबोर होना चाहिए तथा वियोग और सयोग दोनो स्थितियो में अतृप्त अशान्त रहने वाला होना चाहिए और चित्त का स्वच्छन्द निबन्ध होना चाहिए। तभी वह घनआनन्द के काव्य के मर्म तक पहुच सकता है। जिसने चर्म चक्षुओ से नही अन्तश्चक्षुओ से, हृदय की आखो से प्रेम की पीडा

देखी हो, सही हो वही घनआनन्द की कृतियों में अन्तर्व्याप्त वेदना का मर्म समझ सकता है, मात्र शास्त्र ज्ञान प्रवीणता से काम चलने वाला नहीं। जिसके हृदय की आँखें नहीं खुली हैं वह घनआनन्द की रचना को अन्य साधारण अथवा रीतिबद्ध कवियों की रचना मात्र समझ कर रह जायगा।

> जग की कविताई के धोखे रहैं ह्यां प्रवीनन की मति जाति जकी।
> समुझ कविता घनआनंद की हिय आखिन नेह की पीर तकी।। (ब्रजनाथ)

भावावेग या भाव प्रवणता

स्वच्छन्द धारा के कवियों की पहली विशेषता जहाँ काव्यगत दृष्टिकोण में रखी जा सकती है वहीं इनकी दूसरी प्रमुख विशेषता उनके काव्य में प्राप्य भावावेग अथवा भाव प्रवणता में देखी जा सकती है। कवित्व उनका साध्य न था अन्तःकरण की भाव राशि को मुक्त भाव से उडेल देने में ही उनकी तृप्ति थी। ये ही कवि ऐसे थे जो हृदय की मुक्तावस्था प्राप्त कर रस दशा को पहुँचा करते थे। काव्य रचना करते हुए ये आत्म विभोर हो जाया करते थे। इस रस दशा को प्राप्त कर उनकी वाणी स्वतः भंगिमामयी हो जाती थी। अन्तश्चेतना की ऐसी द्रवीभूत स्थिति की व्यंजना सीधी भाषा में सम्भव भी न थी इसलिए इन स्वच्छन्द कवियों की भाषा शैली में जो बाँकपन है वह सहज और अनायास है उसके लिए इन्हें माथापच्ची नहीं करनी पड़ी है। इसीलिए उसमें नव्यता है पिष्टपेषण अथवा चर्वित चर्वण नहीं। उनकी काव्यविभूति की सुषमा नैसर्गिक है आभ्यान्तरिकता से सम्पृक्त। इन कवियों की इसी विशेषता को लक्ष्य कर आचार्य मिश्र ने लिखा है—

'ये वासना से पंकिल राजाओं के मानस को रंजन करने वाले चाटुकार नहीं थे। ये अपनी उमंग के आदेश पर थिरकने वाले थे। जग के कवि काव्य के बहिरंग में ही लिपटे रह गये, उसके अन्तरंग में प्रविष्ट नहीं हुए। इसी से स्वच्छन्द कवि हृदय की दौड़ के लिए राजमार्ग चाहते थे रीति की संकरी गली में धक्कम धक्का करना नहीं। ये कविता की नपी तुली नाली खोदने वाले न थे। ये काव्य की उन्मुक्त प्रवाहित करने वाले या मानस रस का उन्मुक्त स्रोत देने वाले थे। पश्चिमी समीक्षकों के ढंग से कहें तो रीतिबद्ध कर्त्ता की कृति चेतनावस्था (Consious State) में गढ़ी जाती थी और रीतिमुक्त कर्ता की कविता अन्तःसंज्ञा (Sub-conscious State या Unconcious State) में लीन हो जाने पर आप से आप उद्भूत होती थी। रीतिमुक्त कवि का काव्य स्वतः स्वतः उद्भावित होता था। रीतिबद्ध कवि की काव्य प्रणाली उसकी बुद्धि के संकेत पर टेढ़ मेढ़े मार्ग पर बहती थी पर रीतिमुक्त या स्वच्छन्द कवि अपनी भाव धारा में स्वतः बह जाता था। इस प्रकार दोनों का अन्तर स्पष्ट है।'[1]

---

[1] घनआनन्द ग्रंथावली वाङ्मुख पृ० १३-१४

अननुभूत वस्तु या विषय ये कवि सामने नही लाया करते थे। जो सामाजिक सत्य जीवनगत तथ्य भावगत अनुभूतियाँ इनकी अपनी हुआ करता था। इनका काव्य उसी से निर्मित होता था। पराई अनुभूतियाँ पराये भाव पराई उक्तियाँ इनमे नहीं। रीति से लगे लिपटे कविया मे जहा तहाँ चोरी की बान बहुत थी। भाव का अपहरण भाषा की चोरी ये सब चलती थी। संस्कृत कविया की कितनी हो उक्तियाँ कल्पनाए भाव हिन्दी कविया ने चुराये, विशेषकर रीतिबद्धा ने। बिहारी देव केशव सरीखे प्रतिभावान कविया तक ने ऐसा किया फिर औरा की तो बात ही क्या। ये चोरी छोटे कवि आपस में भी कर लिया करते थे। सेनापति सदृश मेधावी और प्रतिभा सम्पन्न कवि को तो इस साहित्यिक चोरी का ऐसा भय था कि उन्हे हर छन्द मे अपना नाम रखना पडा और बार बार कहना पडा कि हे महाराज! आजकल ता ऐसे कवि हो गये हैं जो एक चरण तो क्या छन्द के चारो चरण चुरा लिया करते हैं मेरे कवित्ता की उनसे आप रक्षा करें इसीलिए अपने कवित्ता की यह थाती मैं आपको समर्पित कर रहा हूँ किन्तु रीति स्वच्छन्द धारा के किसी भी कवि को इस प्रकार डरने की आवश्यकता न थी। उन्हे कविता लिखकर कुछ धन या कीर्ति कमाना न था कोई उनका ऐहिक लक्ष्य न था। उनकी कविता उनके हृदय का भार हल्का करने वाली थी उनका दुख दर्द मिटाने वाली थी उनकी तडप और टीस को राहत देने वाली थी। वह स्वानुभूति निरूपिणी थी। औरा से उन्हे क्या लेना-देना इसलिए उनकी कविता भी औरा के लिए न थी। औरा को उनकी अनुभूति से राहत मिलती हो रसोपलब्धि हो जाती हो वह बात अलग पर वह उनका लक्ष्य न था। अपनी कविता से वे अपना संस्कार कर लिया करते थे अपनी प्यास बुझा लिया करते थे—**लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तो मेरे कवित्त बनावत।** उन्हे अपनी कविता की चोरी का डर नही था क्योंकि उनकी सी भाव दशा को पहुचे बिना कोई वसी उक्तिया किस प्रकार गढ सकता था।

**व्यक्तिवशिष्ट्य**

भावावेगमयी कविता लिखने के कारण रीतिमुक्त कविया के काव्य मे जो व्यक्तिवशिष्ट्य आ गया है वह भी इन कवियो की एक प्रमुख विशेषता है। ठाकुर बोधा रसखान घनआनन्द आदि की कविता सहज ही पहचानी जा सकती है। इनकी रचनाओ से यदि इनके नाम (स्वाल भी) निकाल दिये जायें तो भी काव्य पाठक इनकी कृति भावानुभूति और अभिव्यक्ति पद्धति के वशिष्ट्य के कारण इनको पहचानने में भूल नही करेगा। इसके विपरीत रीतिबद्ध या रीतिसिद्ध काव्यकारो की सकडो की संख्या के बीच बिहारी भूषण मतिराम पद्माकर आदि कुछ ही कवि ऐसे मिलेंगे जिन्हे उनकी व्यक्तिगत विशेषता के कारण पहचाना जा सकता है। शेष सकडो कवि ऐसे मिलेंगे जिनकी रचना को नाम निकाल देने पर पृथक करना असम्भव ही है क्योंकि उनमे वृत्ति और शैली भेद-जन्य विशेषता है ही नही। उनका व्यक्तित्व और उनकी रचना शैली इतनी आवेगमयी न थी जिससे काव्यपटल पर उनकी निजी लीक खिंच

वनी। एक दूसरा भी कारण था। ये कवि सुनिश्चित लीका पर चले फलत नवीनता प्रधान की गुंजाइश ही कहा। कवि शिक्षा के ग्रथ पद-पदकर उन नय मार्गों पर चलना तो दूर सोचन की शक्ति भी शेष न रही थी। अधिकाश तो अलकार और नायिका भेद विषया पर लक्षणोदाहरण प्रस्तुत कर देन म ही कवि कम की इयत्ता समझन लग थ। फलत एक सी उक्तिया एक स वणन, एक सी विशेषताएँ अधिकाश कृतिया म उत्पन्न हुइ। किसी ऋतु अथवा नायिका विशेष के वणन स सम्बधित २५ भिन्न कविया क छन्द एकत्र कर लीजिए और उपयुक्त कथन बिना विशेष श्रम के सिद्ध हो जायगा। ऋतुगत वे ही वण्य अथवा उपकरण, नायिका विशेषगत वे ही बातें थोडे हेर फेर स लगभग सभी छदो म मिलेंगी। कहीं-कहीं तो उक्ति शब्दावली और अलङ्कृति तक का साम्य मिल जायगा। इसका कारण यह नहीं कि सभी कविया ने अनिवाय रूप स भाव अथवा उक्ति का अपहरण किया वरन यह कि उनके सोचन की दिशाएँ इतनी निर्दिष्ट हो चली थी, विचार या कल्पना जगत इतना सकुचित हो चला था कि व उस काव्य परम्परा से इतर दिशाओ म अपनी दृष्टि और कल्पना का दौडा सकन म असमथ थ जिसका पठन पाठन व नियमित रूप स करत आत थे। विशद साहित्यिक अध्ययन-अनुशीलन की न ता वतमान युग सी उस म क्षुधा थी और न सुविधा। प्रतिभा थी किंतु गाडर की जाति की भाति एक ही पथ पर अधानुसरण करने वाली। रीतिमुक्त कविया म यह अधानुकरण न था। उनका अपना जीवन था अपना जगत था। प्रेम की अपनी अनुभूति थी और वक्ति का अपनापन था। इसलिए उनके काव्य का वस्तु जगत कल्पना जगत और शिल्प जगत विशद और विस्तृत है रीति स मुक्त और निरपेक्ष है और इसी कारण उनम व्यक्ति-वशिष्ट्य का विशेष विराम भी लक्षित होता है। दो टूक बात कहने में बोधा अपना सानी नही रखते लाक्षणिकगर्भित प्रवाहपूर्ण भाषा लिखने म ठाकुर अपनी मिसाल नही रखत, प्रीति विषमता की अनुभूति प्रवण चित्रण और विरोधाश्रित भाषा शली का चमत्कार दिखान म घनआनन्द की समता कहाँ और उन्मादिनी पुरानुरक्ति का रसखानि सा सरस सरल चितेरा दूसरा कहाँ! अपनी इसी निजता के कारण य कवि हिंदी की काव्य-सम्पदा के सवधन और रीतिबद्ध काव्य काल म एक अभिनव प्रेम धारा के प्रवाहक हो गय हैं।

**काव्य-सम्प्रदायों से मुक्ति**

रीतिमुक्त कविया न किसी काव्य सम्प्रदाय का अनुसरण नहीं किया। ठाकुर बोधा घनआनन्द आदि काव्यरीतिया म अनभिज्ञ नहा थ इसके पर्याप्त सकेत उनके काव्यों म मिलते है। उन्होने काव्य को किसी परिपाटी विशेष पर नहीं चलाया। संस्कृत साहित्य म प्राप्त विविध काव्य-धारा—अलकार रीति वक्रोक्ति ध्वनि आदि —का विवेचन निरूपण या अनुसरण उनका लक्ष्य न था। रस अलकार छद भाव, वृत्ति आदि काव्यांगों और नायिका भेद आदि विषया पर ग्रथ रचना करना रीति वद्धों के लिए जरूरी था परन्तु इनके लिए सवथा त्याज्य था। ऐसी वृत्ति वालों की

**प्रबन्ध रचना की प्रवृत्ति**

रीतिमुक्त काव्यकारों में एक अन्य विशेषता यह भी लक्षित होती है कि उनकी प्रवृत्ति प्रबन्ध रचना की ओर भी थी। ऐसा तो नहीं था कि सूफी आख्यानक काव्यकारों की भांति इन कवियों ने अनिवार्य रूप से प्रबन्ध रचना की हो परन्तु इतना अवश्य है कि अपने भाव में निमग्न हो या विशद प्रबन्ध भी लिखने में समर्थ होते थे। आलम के लिखे दो प्रबन्ध काव्य बताये जाते हैं—(१) माधवानल कामकन्दला, (२) श्याम सनेही। 'श्याम सनेही' में रुक्मिणी के विवाह की सुप्रसिद्ध कथा है तथा माधवानल कामकन्दला' प्राकृतकालीन प्रसिद्ध कथा को लेकर लिखी गई है। इसी कथा को और भी विस्तार के साथ आगे चल कर बोधा ने 'विरहवारीश' नाम से लिखा। घनआनन्द ने कोई विस्तृत प्रबन्ध नहीं लिखा किन्तु उनकी कुछ कृतियाँ प्रबन्ध नहीं तो निबन्ध-काव्य की कोटि में आ जायेंगी जैसे गिरिपूजन, यमुना यश, वृसभानुपुर सुषमा वर्णन गोकुल गीत आदि। व्रजव्यवहार में प्रबन्धात्मकता का भी थोड़ा विकास देखा जा सकता है। यद्यपि इन कवियों की भी मूल वृत्ति मुक्तक अथवा स्फुट रचना की ओर ही विशेष थी फिर भी प्रबन्ध की दिशा में इनके उपयुक्त प्रयत्न नजरंदाज नहीं किये जा सकते। रीतिबद्ध कवियों की रचनायें तो अधिकांशत लक्षणों को चरितार्थ करने वाले उदाहरण के रूप में लिखित हैं फलतः उन्होंने मुक्तकों के ही ढेर लगाये। प्रबन्ध रचना की ओर वे न बढ़े। प्रबन्ध की रचना उन्होंने यदि की भी तो अधिकांशत वीरगाथाओं की शैली पर आश्रयदाताओं की प्रशंसा करते हुए जैसे वीरसिंह देव चरित हिम्मत बहादुर विरुदावली आदि। यदि रीतिबद्ध कवि लक्षणानुधावन और रूढ़ि का पथ छोड़ कर काव्य रचना में लगे होते तो सम्भव है कुछ शक्तिशाली प्रबन्ध भी लिखे जाते। केशवदास ने कुछ प्रयत्न किया भी पर रीति से उनका मस्तिष्क इतना बोझिल था कि रामचन्द्रिका स्वत काव्य रीति के नाना अंगों छन्द अलंकार, ऋतु वर्णन आदि के उदाहरणों का विशाल संग्रह जान पड़ने लगती है। प्रबन्ध तत्व तो उसमें शिथिल है ही। रीतिमुक्तों के जो दो चार प्रयत्न इस दिशा में हैं वे रीति का मार्ग छोड़ कर चलने के ही कारण। एक दूसरा भी कारण था जिससे प्रबन्ध काव्य की ओर रीतिमुक्त कवियों की दृष्टि किसी सीमा तक गई। वह था कृष्ण चरित्र के उत्तरवर्ती अंश का ग्रहण जैसे 'श्याम सनेही' में या आलम के नाम पर चली हुई रचना 'सुदामा-चरित्र' में। कृष्ण का प्रारम्भिक जीवन उनकी बाल लीला शैशव दीप्त किशोर जीवन गोकुल व्रज और वृन्दावन का माधुर्यपूर्ण वृत्तान्त प्रबन्ध की धारा के लिए उपयुक्त नहीं पड़ता इसी से हिन्दी साहित्य के समूचे मध्य युग, लगभग ४८० वर्षों के साहित्य में कृष्ण के प्रारम्भिक जीवन से सम्बन्धित प्रबन्ध ग्रन्थों का नितान्त अभाव है। नन्ददास कृत रूपमंजरी भंवरगीत, और रासपंचाध्यायी अपवाद स्वरूप ही हैं। इस अंश के सविस्तार किन्तु स्फुट वर्णनों से तो समूचा रीतिकालीन काव्य भरा पड़ा है। स्वच्छन्द कवियों के प्रबन्ध ग्रन्थ सूफी आख्यानक काव्यों से स्वतन्त्र और भिन्न शैली में लिखे गये हैं। इनके काव्य शुद्ध भारतीय प्रेम काव्यों की परम्परा

म न्गिराई पडत हैं। बोधा ने आनम माधवानल कामकन्दला चरित्र या विरह वारीश' मे सूफी प्रेमाख्याना की भाँति रहस्यदर्शी पक्ष का समावेश नही किया है। उसमे कोई समासोक्ति अन्योक्ति या अन्यापदेश (All gory) नही है सूफी इश्कमिजाजी और इश्कहकीकी की चर्चा भले ही हा परन्तु काव्य की कथावस्तु किसी रूपक म अध्यवसित नही हुई है। इस प्रकार स्वच्छन्द कविया के कथानक काव्या म प्रबन्ध की प्रवृत्ति जहाँ तहाँ लक्षित होती है जो रीतिबद्ध कविया म नही मिलती। आलम के जो ग्रन्थ पौराणिक या प्रख्यात कथानका को लेकर लिखे गये हैं उनम भी प्रेम क स्वच्छन्द रूप ही ग्रहण हुआ है।

**देश के पर्वों एव त्योहारों का उल्लासपूण वणन**

रीतिमुक्त शृङ्गार काव्य की एक अन्य विशेषता है—देश के पर्वों एव त्योहारो का उल्लासपूर्ण वणन। रीति स बधे कविया की दृष्टि उधर न जा सकी। शास्त्रबद्ध विषयो स बाहर उन्होने कदम नही बढ़ाया फलत लोक जीवन म हर्ष और आनन्द का जा स्रोत विभिन्न पर्वों एव त्योहारा पर ग्राम निवासिया की मनोभूमि म उच्छलित एव प्रवाहित होता था उसका स्वरूप व कवि सामन न ला पाये। यह काय ठाकुर और बोधा सरीखे सहृदया क लिए ही शष रह गया था। ठाकुर के काव्य म तो बुन्देलखण्ड म प्रचलित त्योहारा का वणन विशष मनायाग से हुआ है जस गनगौर अखती हरियाली तीज बरगदाई (वटसावित्री) होली झूला आदि। रीति स्वच्छन्द कवि देश क इस आनन्दोल्लासपूण पर्वों और अवसरो पर अपने हृद्गत उत्साह और उल्लास को व्यक्त करके दख जात है। इन पर्वों और त्योहारो पर जन जीवन म जा हर्ष और उछाह आज भी थाडा बहुत देखा जा सकता है उसकी अभिव्यक्ति इन्होन की है केवल परम्परा पोषक रचनाकारो की भाँति वसन्त ऋतु और हाली के पिटे पिटाये वणन करके ही ये नही रह गय है। गुलाल की गरद और केसर की कीच म आगे भी इन्होने अपनी दृष्टि का प्रसार दिखलाया है। हमारी नागरिकता का अहकार बौद्धिकता का विकास तथा व्यस्त एव सघषमय स्वार्थी जीवन क्रमश हम अपन प्राचीन सस्कारो स विलग करता जा रहा है, हम अपन देश की सास्कृतिक परम्पराओ को भूलते जा रहे है। और ग्रामीण जीवन म पर्वों और त्योहारा क प्रति जो श्रद्धा भक्ति मयो आनन्द-कामना है उससे रीतिबद्ध कवि दूर ही रह है परन्तु ठाकुर जैसे स्वच्छन्द रीतिमुक्त कविया ने बुन्देलखण्ड के जन जीवन के बीच के अखती गनगौर वटसावित्री (बरगदाई) होली आदि व्रत पूजन पव एव त्योहार आदि का चित्रण कर अपनी हार्दिकता के व्यापक प्रसार का परिचय दिया है। रीतिबद्ध कवि भला ऐसे हृदयग्राही जीवन प्रसगा का ग्रहण कस करत। शास्त्र मे इनक वणन का न तो विधान ही है और न कही कोई उल्लेख ही। ठाकुर कवि द्वारा अखती (अक्षय तृतीया वशाख शुक्ल तीज) का वणन देखिये। पर हिन्दू स्त्रिया के लिए व्रत एव पजन का महत्वपूण पव है। इस दिन बुन्देलखण्ड म किसी वट वृक्ष के नीचे स्त्रिया पुत्तलिका पूजन करती हैं। पुरुष भी सजधज कर पूजन देखने जात है। पूजनोपरान्त पुरुष स्त्रिया से उनके प्रमियो

और स्त्रियाँ पुरुषो से उनकी प्रेमिकाओं का नाम पूछती हैं। लज्जा और स्नेह के कारण जब नाम लेने म सकोच और विलम्ब होने लगता है तो वे एक दूसरे को गुलाब या चमेली की सुकोमल छड़िया से मारते है। इस प्रसग का ठाकुर कृत वर्णन देखिये—

गाव गँठीली चमेली की बोदर घालो न कोउ अनूतरी कहै।
ऊसई नाम लेवाओ तो लेहैं प घाल तें लाल कहा रस रहै॥
ठाकुर कजकली सी लली बलि या जड चोट सरीर न सैहै।
बाल कहै कर जोर हहा यह बोदर लाल हमैं लगि जहै॥ (ठाकुर)

इसी प्रकार बोधा ने वैवाहिक सस्कारो का कैसा हृदयग्राही चित्र माधवानल कामकन्दला म अकित किया है। उन्होने आगन लिपाने दीवारों के पुतवाने, घरो के छवाने आदि का वर्णन किया है और बताया है कि विवाह के अवसर पर किस प्रकार कलश सजाये जाते है, हरे बाँस का केन्द्र म गाड कर मण्डप सजाया जाता है उसे जामुन के पल्लवो म छाया जाता है, गौरि की स्थापना होती है स्त्रियाँ वस्त्राभूषणो स सज धज कर मगल गीत गाती है। कोई स्त्री तेल चढाती है कोई रसोई तयार करती है सब जगह 'हरबर हरबर हो रही है। सारे कुटुम्बीजन बुलाये जाते है मण्डवा म भोजन कराया जाता है सबेरे सिलमायन होती है, स्त्रियाँ होने वाली वधू का हल्दी-तेल चढाती हैं सारे नगर म नाऊ नवता बाटता है सभी पुरवासियो की देवसभा सी पगत लगती है। प्रत्येक वर्ण क लोग अपनी-अपनी पगत म बैठ कर खोवा पुरी सुहारी का जेंवनार करते हैं। दूसरे दिन केवल कुटुम्ब के ही लोग एकत्र होते है और मडवा के तले 'बराभात (कच्ची रसोई) खाते है आदि आदि। हिन्दी जीवन का परम व्यामोहक यह विवाह सस्कार बडी मनोहरता से बोधा के काव्य मे सचित्र हुआ है। जनजीवन के ऐसे ममस्पर्शी प्रसगो पर इन रीतिनिरपेक्ष कवियो की ही दृष्टि की जा सकती थी। भला स्वकीया, परकीया और गणिका, मुग्धा मध्या और प्रौढा तथा खडिता और अभिसारिका के भेद प्रभेदो म फँसी रीतिबद्ध दृष्टि इन रीतिबाह्य विषयो पर कस जा सकती थी? प्रकृति चित्रण के क्षेत्र म थोडी स्वच्छन्दता के दर्शन द्विजदेव और बोधा म होते हैं। आलम के प्रबन्ध म विशद प्राकृतिक रमणीयता का जहाँ-तहाँ चित्रण हुआ है पर अशत वह भी विरही माधवानल के विरह की या तो पृष्ठभूमि बना है या उद्दीपक। द्विजदेव का प्रकृति प्रेम प्रसिद्ध है। वे किसी सीमा तक उसे आलम्बन रूप म ग्रहण कर सके है। अन्य कवियो ने उसे परम्परागत रूप म ही ग्रहण किया है।

### मूल वक्तव्य प्रेम

स्वच्छन्द कवियो का मूल वक्तव्य प्रेम है। इसी मूलवर्ती सवदना स उनका सम्पूर्ण काव्य स्पन्दित है चाहे वह मुक्तक के रूप म लिखा गया हो चाहे आख्यान के रूप मे। आख्यान रूप म सवदित किये जाने पर भी प्रेम ही समूची कथा का मूल तत्व सूत्र और वर्ण्य मिलेगा। मुक्तको म तो वक्तव्य विषय से इधर उधर जाने की

गुँजाइश नहीं परन्तु प्रेम का गुण गान करते हुए ये कवि प्रयत्न में भी सत्य से इधर उधर नहीं हुए हैं जो कुछ प्रेम का गान और विरागान है वह इनके काव्यों से बहिगत कर दिया गया है। इन प्रेम वर्णन का वैशिष्ट्य इस बात में है कि वह स्वानुभूति प्रेरित है। इनकी प्रेम व्यंजना इनकी निजी प्रेम भावना की अभिव्यक्ति है उसमें स्वानुभूति हृदय विपाक व्यक्त हुआ है आरोपित या कल्पित प्रणय निवेदन नहीं है। इसी से इनकी प्रेमभावपूर्ण रचनायें हृदयस्पर्शी और मार्मिक बन पड़ी है। उसमें उनके व्यक्तित्व का ही सस्पर्श है जो उनके काव्य को जीवंतता प्रदान करता है। यहाँ अनुभूतियों का ही दूसरा नाम काव्य है इनके काव्य में हृदय के स्पन्दन का लेखा-जोखा है। मात्र स्थूल प्रणयक्रियाओं और व्यापारों का चित्रण नहीं जैसा नायिका भेद के ग्रन्थों में वर्णित हुआ करता है। इनके द्वारा वर्णित प्रेम इनके जीवन से छन कर आया है उसमें ताजगी है तीव्रता है। इन्होंने औरों के प्रेम का वर्णन नहीं किया है यदि किया भी है तो वह स्वानुभूति के प्रसार रूप में ही। इसके विपरीत रीतिबद्ध कवियों का प्रेम गोपी गोपिकाओं का प्रेम नहीं है बल्कि साधारण नायक-नायिकाओं का प्रेम है जिसकी उद्भावना या तो कल्पना की है या साहित्य परम्परा से उपलब्धि। ऐसा नहीं है कि रीतिबद्ध कर्ताओं में प्रेम की अनुभूति होती न थी। कहने का तात्पर्य यह है कि औरों का प्रेम देख सुन और कल्पित कर इनमें काव्य सृजन की स्फूर्ति हुआ करती थी जबकि रीतिमुक्त कर्ताओं की निजी प्रेमानुभूति ही काव्य सृजन का कारण हुआ करती थी। लगभग सभी रीतिमुक्त कवियों की अपनी अपनी प्रेम कथा है। घनआनन्द और सुजान बोधा और सुभान आलम या शेख या कोई अन्य यवनी आदि की प्रेम कथायें प्रसिद्ध ही हैं। रसखान भी किसी के रूप पर आसक्त थे। प्रेमवाटिका के साक्ष्य से स्पष्ट पता चलता है—

तोरि मानिनी ते हियो फोरि मोहिनी मान।
प्रमदेव की छबिहि लखि, भए मियाँ रसखान॥ (प्रेमवाटिका)

और इस दिशा में ठाकुर की प्रसिद्धि भी कुछ कम नहीं। उनका किसी सुनारिन से प्रेम हो गया था। बुन्देलखण्ड के बिजावर राज्य की बात है। वह सुनारिन विवाहिता थी पर ठाकुर उसी के रूप पर रीझे हुए थे। उसके रूप विभा का वर्णन करते और उसे सुनाते। एक बार वह सुनारिन बीमार पड़ी और चार-पाँच दिन तक घर के बाहर दिखाई न पड़ी। बस तब ठाकुर एक दिन रात्रि के समय उसकी गली में यह छन्द जोर जोर से पढ़ते हुए निकले—'गति मेरी यही निसिवासर है चित तेरी गलीन के गाहन है। कहते है इस छन्द ने औषधि का काम किया और उस सुनारिन की अस्वस्थता जाती रही। ठाकुर के छन्दों से पता चलता है कि दूसरी ओर से उन्हें कोई प्रेम न प्राप्त हो सका था परन्तु ठाकुर को इस बात का कोई खेद न था। वे इतने ही से सन्तुष्ट थे कि उन्होंने किसी को चाहा। यह बात उनके इस प्रसिद्ध छन्द से भी अवगत होती है— वा निरमोहनी रूप की रासि जऊ उर हेत न ठानति ह्वै है आदि। इस प्रकार प्रेम के रंग में रंगे इन प्रेमामार्ग के कवियों की प्रेम व्यंजना ही विलक्षण है।

उनकी प्रेमानुभूति ही विशिष्ट है। इन कवियो के काव्य की प्रेरणा केन्द्र इनकी वे प्रेमिकाएँ हैं जिन्हे ये पा न सके जो इनके जीवन मे आ न सकी। घनआनन्द, ठाकुर बोधा, रसखान आलम प्राय सभी के साथ न्यूनाधिक रूप मे यह बात लागू होती है। इस अप्राप्ति ने ही उन्हे आत्मपीडा निवेदन की प्रेरणा दी और उनके अन्ततम के भाव अभिलाषा चिन्ता आदि काव्य रूप म व्यक्त हो सके। यही कारण है कि अनुभूतिया की जो सचाई इनमे मिलती है वह किन्ही पूर्ववर्ती या परवर्ती कवियो को प्राप्त नही हो सकी है समसामयिक रीतिकारो को तो बिल्कुल ही नही। ये कवि ही सच्चे प्रेमी थे प्रेम ही जिनका इष्ट था जिसे पाकर फिर और किसी वस्तु की चाह न रहा करती थी—

जेहि पाएँ बकुण्ठ अरु हरि हूँ की नहि चाहि।
सोइ अलौकिक, सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि॥ (रसखान)

प्रेम जिस पथ पर इन्हे दौडाता वही इनका निर्दिष्ट माग था, वह माग लोक और शास्त्र की मर्यादाओ का मान कर नहा निरस्कार कर आग बढता था। उस माग म प्रेम ही रास्ता था प्रेम ही मजिल थी। प्रेम स महत्तर कुछ नही था इसलिए प्रेम ही साध्य था। इस माग म प्रेम साधन रूप म कभी भी स्वीकृत नही हुआ जसा कि सूफी सम्प्रदाय के सतो म दृष्टिगत होता है। जहा तक इनके प्रेम काव्य पर पडने वाले प्रभाव का प्रश्न है दो प्रभाव बिलकुल स्पष्ट हैं—सूर आदि कृष्ण भक्तो तथा बिहारी, मतिराम, देव, दास, पद्माकर आदि समसामयिक रीतिकवियो का प्रभाव तथा सूफी प्रेमाख्यानक काव्यकारो का प्रभाव। सूर तथा अष्ट छाप के अन्य कृष्ण भक्तो का प्रभाव रसखान पर स्पष्ट है तथा रीतिकारो का प्रभाव औरो की अपेक्षा आलम और द्विजदेव पर अधिक है। बोधा और घनआनन्द पर सूफी प्रभाव विशेष है। स्वच्छन्द कवियो के काव्य का अध्ययन करते हुए उनकी प्रेम भावना की जिन प्रमुख विशेषताओ पर दृष्टि जाती है उन पर विचार करना यहाँ आवश्यक है।

**प्रेम का स्वच्छन्द और अपरम्परागत रूप**

यह पहले ही कहा जा चुका है कि स्वच्छन्द कवियो की मूल संवेदना प्रेम है। रीतिमुक्त कवियो के काव्य म प्रेम का परम्परागत रूप न प्राप्त होकर उसका निर्बन्ध और स्वच्छन्द रूप देखने को मिलता है। क्रमागत अथवा समसामयिक साहित्य परम्परा म जिस प्रेम का वणन मिलता है वह कुटुम्ब और समाज की मर्यादाओ स बँधे हुए प्रेम का वणन है। उस प्रेम के माग म कितनी बाधायें हैं कितने बन्धन हैं। गुरुजनो का सकोच है लाज की रज्जा है। इतने दिनो के बाद नायक परदेश से वापस आया है उसकी विवाहिता नारी लाज और गुरुजनो के भय से उसे भर आँख देख भी नही सकती। दर्शनाकांक्षा [illegible] हो उठती है। उसम रहते [illegible]। वह छद्म से आती है [illegible] चली जाती है—

नायक सर से [illegible] निलक [illegible]।
[illegible] हार [illegible], [illegible] हाति॥ (बिहारी)

एक दूसरा नायक है जो परदेश जाने को उद्यत है। सारे कुटुम्बियों के बीच से अंतिम विदा लेने के लिए लौट कर नायिका के पास नहीं जा सकता। बेचारे को ऊपर से झाँकती हुई प्रियतमा से इशारों इशारों से विदा लेनी पड़ती है। एक तीसरा प्रेमी युगल है—वे मिलते हैं पर बहुतों की भीड़ के बीच भीड़ किसी काम में इकट्ठी है ये उस भीड़ में भी अपनी बातें आँखों-आँखों में कर ही लेते हैं—

कहत नटत, रीझत खिझत, मिलत, खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं ननन ही सों बात॥ (बिहारी)

उधर निन्दा हो रही है चवाइयाँ चल रही हैं चुगलियाँ हो रही हैं इधर प्रेम चल रहा है। डर भी है उद्वेग भी।

चलत धरु घर घर तऊ धरी न घर ठहराय।
समुझि वही घर को चलै, भूलि वही घर जाय॥ (बिहारी)

इस प्रकार के बंधनमय प्रेम से ये कवि अपरिचित हैं। इतने बंधनों के बीच होकर चलने वाला प्रेम व्यापार न तो इन कवियों को प्रिय हो सकता था और न इष्ट। लोक की लज्जा और परलोक की चिंता जो छोड़ सकता हो वही स्वच्छन्द प्रेम मार्ग का पथिक हो सकता है यह बात स्वच्छन्द कवियों ने पुकार-पुकार कर कही है—

लोक की लाज की शोच प्रलोक को वारिए प्रीति के ऊपर दोई।
गाँव को गेह को देह को नातो सो नेह प हातो करै पुनि सोई॥
बोधा सो प्रीति निबाह करै धर ऊपर जाके नहीं सिर होई।
लोक की भीति डरात जो मीत तो प्रीति के पैंडे परौ जिन कोई॥
(बोधा)

लोक वेद मरजाद सब लाज काज सन्देह।
देत बहाए प्रेम करि विधि निषेध को नेह॥ (रसखान)

उनके प्रेम में वही स्वच्छन्दता है जो राधा और कृष्ण या गोपियों और कृष्ण के बीच थी। इन कवियों को घर-बार लोक-परलोक किसी की चिन्ता न थी, जीवन और जगत के ये झूठे बंधन इन्हें सर्वथा अस्वीकार थे। इसलिए ये कवि शृङ्गार रस तथा नायिका भेद के ग्रंथों में निर्दिष्ट प्रेम की सुनिश्चित लीकों पर नहीं चल सके हैं। स्वकीया परकीया और गणिका के अलग अलग प्रकार के प्रेम फिर मुग्धा मध्या और प्रौढ़ा काम वृत्ति पर आधारित भिन्न भिन्न वृत्तियाँ फिर अवस्थाओं पर निर्भर आगतपतिका प्रोषितपतिका उत्कंठिता अभिसारिका खण्डिता आदि के प्रेम प्रसंग की लुकाछिपी चोरी जारी मन्मथ भजना, मान और मनावन बीच में सखियों और दूतियों का इधर से उधर सन्देश निवेदन बुलाना शठ धृष्ट आदि नायकों के विभिन्न प्रकार के आचरण सखियों या दूतियों का नायक से रमण-सम्भोग सम्बन्धी ईर्ष्या आदि जो अधिकतर रसिद्ध नायिका भेद के ग्रंथकारों द्वारा निर्दिष्ट

प्रेम वणन के विपय हैं उन पर य रीतिमुक्त कवि काव्य रचना करने मे एकात असमथ रहे हैं। य रीतिग्रस्त प्रेम वणन की सकरी गलियाँ हैं इनम स्वच्छन्द कवियो की सांस घुटती था। ये प्रेम की इन गलिया से निकल कर प्रेम के खुले मदान म आये जो उसका सच्चा क्षेत्र था जहा कोई किसी का भला-बुरा कहने वाला नही था। इनके प्रेम वणन को नायिका भेद के चौखटे म फिट नही किया जा सकता। ये अपने प्रेम का निवेदन आप करत थे सखियो दूतियो या सन्देशवाहको के माध्यम स नही। इसी कारण इन रीतिमुक्त कविया के काय म हृदय की, अन्तकरण की जसी मनोहर झलक मिलेगी रीतिबद्ध कविया म वैसी दुष्प्राप्य है। देव, बिहारी, पद्माकर दास, मतिराम आदि कविया ने जहा अनुभूति के साथ प्रेम की व्यजना की है वे भी प्रेम के सुदर उद्गार और अन्तकरण की मनोरम अभिव्यक्तियाँ दे गये हैं पर ऐसा रीति के बधन से हृदय को मुक्त करने पर ही हो सका है।

**प्रेम भावना की उदात्तता**

प्रेम के स्वच्छन्द रूप का ग्रहण करने से रीतिमुक्त कविया की प्रेम भावना म एक प्रकार की उदात्तता (Sublimation) आ गई है। उसम गहराई है व्यापकता है सकीणता और ओछापन नही। उनका प्रेम शुद्ध वासनात्मक स्तर स उपर भी उठ सका है। रीतिबद्धा की दृष्टि अतिशय शरीरी और स्थूल न थी। रसखान, घनआनन्द ठाकुर आदि म उसका पयाप्त उन्नत और उदात्त स्वरूप गोचर होता है। इन कवियो का प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण मुख्यत मामल और शरीरी न होकर सूक्ष्म और भावनात्मक था। बोधा को उपयुक्त कथन का अपवाद कहा जा सकता है। वे कामिक प्रेम के पुजारी थे। परतु प्रेम के कुछ महत्वपूण आदश उनके मन म भी प्रतिष्ठित थे। उदाहरण क लिए यह कि अपने प्रेम का वृत्तान्त अपन तक ही सीमित रखना चाहिए अपना दद आप ही झेलना चाहिए दसरा कोई उस क्या समझेगा। अपने दुख पर तरस खाने वाला कोई न मिलेगा, मजाक उडाने वाले पचासा मिलेंगे—

(क) काहू सों का कहिनो सुनिबो कवि बोधा कहे मे कहा गुन पावत।
(बोधा)

(ख) बोधा किसू सो कहा कहिये सो बिथा सुनि पूरि रहै अरगाइ कै।
यातें भले मुख मौन धरै उपचार करै कहूँ औसर पाइ कै।
ऐसो न कोऊ मिल्यो कबहूँ जो कहै कछु रच दया उर लाइ क।
आवतु है मुख लौं बढि क फिरि पीर रहै या सरीर समाइ क॥

प्रेम के पथ पर चल कर डिगना नही होना प्रेम एक स होना है अनेक स नही—

(क) कवि बोधा अनी घनी नेजहूँ तें चढि तापै न चित्त डरावनो है।
(ख) लगनि लगै यस एक सगि दूजे ठौर बढ़ न।

(ग) जो न मिलो दिलमाहिर एक अनेद मिल तो कहा करिय ल।

प्रेम म अनयता आवश्यक है लाज लाज छोडना पडता है तक्लीफ महनी पडती है। अहकार अभिमान और मगरूरी क लिए प्रेम के साम्राज्य म कोई स्थान नही। प्रेम त्याग का ही दूसरा नाम है। प्रेम करना सरल है पर उसका निर्वाह मुश्किल है। इसलिए बोधा प्रेम के निर्वाह पर बार-बार बल देते पाये जाते हैं। प्रेम के इन ऊँचे आदर्शों पर बोध का अटल विश्वास था—

(क) प्रीति कर पुनि और निबाहै। सो आसिक सब जगत सराहै।

(ख) एकहि ठौर अनेक मुसकिल यारी क प्यारी सो प्रीति निबाहिबो॥

(ग) नेहा सब कोऊ कर कहा कर मैं जात।
करिबो और निबाहिबो बडो कठिन यह बात॥

जब बोधा न प्रेम के सम्बन्ध म इतने ऊचे मानदण्ड स्थिर किये हैं तब रसखान घनआनन्द आदि प्रेम क पपीहो का तो कहना ही क्या! उनकी प्रमवृत्ति की ऊचाई तो सहज ही अनुमित की जा सकती है। रसखान के लिए यह प्रेम कुछ साधारण वस्तु या लौकिक व्यापार मात्र न था। उन्होने तो प्रेम को हरि का दूसरा रूप ही मान लिया था—

प्रम हरि को रूप है त्यों हरि प्रेम सरूप।
एक होइ द्वै यो लस ज्यों सूरज अरु धूप॥

इसकी दिव्यता का तो कहना ही क्या! प्रेम को पा लेने के बाद सारी स्पृहाएँ शेष हो जाती हैं—

जेहि पाए बकुण्ठ अरु हरि हू की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि॥ (रसखान)

इसीलिए बार-बार रसखान पुकार कर कहते हैं प्रेम करो, प्रेम करो! जिसने प्रेम नही किया उसने इस ससार मे आकर कुछ नही किया—

(क) जप बार बार तप सजम अपार ब्रत
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हों नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार चित्त
चाह्यो न निहारयों जो प नन्द के कुमार को॥

(ख) शास्त्रन पढ़ि पडित भए क मौलवी कुरान।
जु प प्रेम जान्यौ नहीं, कहा कियो रसखान॥ (रसखान)

रसखान के मन म प्रेम से महत्तर कोई धम नही कोई तत्व नही। ज्ञान, कम और उपासना य सब अहकार को जन्म देने वाले हैं प्रेम इन सबसे श्रष्ठ है। वह श्रुति पुराण आगम स्मृति सभी का सार है। जसी पवित्रता दिव्यता और महत्ता इन रीतिमुक्त कवियो की प्रेम भावना मे लक्षित होती है वसी रीति से बधे कवियो म नही। घनआनन्द की प्रेमवृत्ति भी एसी ही उदात्त और मनोहारिणी है आमुष्मिकता वासना और ऐहिकता का जहा लेश भी नही प्रेम क्या है मानो शुद्ध अन्तकरण ही

फूट पडा है। इस प्रेम मे सचाई है एकनिष्ठता है समपण है त्याग है। इनके प्रेम की एकनिष्ठता ने इनके प्रेम को वह उच्चता प्रदान की है जिसम प्रेमी प्रिय को चाहता है प्रिय भी प्रेमी को चाहता है, इसकी उस परवाह नही रहती। य प्रेमामत्त कवि इस की चिता नही करत कि उसका प्रिय उन्हें चाहता है या नही। इनके मन म सच्चा प्रेम त्याग और दान म है भोग और उपलब्धि म नही। स्वच्छन्द प्रेमी प्रेम भाव की उच्च भूमिका पर पहुँच कर कुछ चाहता या माँगता नही वह तो सिफ देता ही देता है। वहाँ प्रदान का ही क्रम चलता है आदान का नही। घनआनन्द क शब्दो म—

(क) चाहौ अनचाहौ जान प्यारे प अनन्दघन
प्रीति रीति विषम सु रोम रोम रमी है।
(ख) हमको वह चाहै नहीं हम चाहिय वाहि विषर हर है।
(घनआनन्द)

प्रेम का यह आदश क्रमागत प्रेम भावना म भिन्न है तथा इसम प्रिय क इस अभिनव और उन्मपपूण आदश की पवित्रता और ताजगी भी है। प्रेम क इस उदात्त स्वरूप के समक्ष समसामयिक रीतिबद्ध एव रीतिकार कविया का प्रेम ओछा और निकम्मा जान पडन लगता है क्योंकि उसम रसिकता ह एन्द्रिकता है पार्थिव तृषा है उपभोग की कामुकता ह वासना तुष्टि की प्रबल ईहा है तथा वहाँ त्याग नही, तडप नहा आत्मसमपण और बलिदान नहा और सबस बडी बात तो यह कि अन्तरतम की पीर और पुकार नहा। किन्तु रीतिमुक्त रचयिताआ म प्रेमगत भाग पर नही त्याग पर विशेष बल दिया गया है प्राप्ति म अधिक पीडा और व्यथा को महत् बताया गया है।

प्रेम विषमता का चित्रण

रीतिमुक्त कविया क काव्य म प्रेम विषमता का चित्रण विशेष रूप से हुआ है। प्रेमी प्रिय को जितना चाहता है उसके लिए जितना तडपता है प्रिय प्रेमी क लिए उतना नहा। स्वच्छन्द प्रेम धारा क कवियो न प्रमागत इस वशिष्टय को सविशेष रूप म अपन काव्य म चित्रित किया है। प्रेमी के प्रेम की तीव्रता अनन्यता निरन्तरता आदि दिखाना ही इसका लक्ष्य है प्रिय की क्रूर आर दुष्कर्मी दिखाना नही। प्रिय को निठुर उपेक्षापूण दुख और पीडा स अनभिज्ञ, सहानुभूतिशून्य कहा और दिखाया गया है पर वह सब प्रेमी की प्रेम पिपासा को तीव्रतर करन के उद्देश्य से। इन प्रेमियो न प्रिय को दुष्ट और दुराचारी कह कर अपन प्रेम को उपहासास्पद नही बनन दिया है। प्रिय भूलता है परवाह नही करता उनके दुख को नही समझता इस पर स्वच्छन्द कवियो न उपालम्भ दिया है प्रिय क इस प्रकार क आचरण म अपना दोष देखा है भाग्य को कारण ठहराया है पर प्रिय को छोडन या भूलन की धमकी नही दी है। इस प्रकार स्वच्छन्द कवियो न प्रेमी की उदात्त मनोवृत्तियो का परिचय दिया

है हृदय की किसी तुच्छता या ओछेपन का नही। यह प्रेम विषमता लगभग सभी कवियो के काव्य म आई है तथा नाना प्रकार की अन्तवृ त्तियो की अभिव्यजक हुई है। आलम की गोपिकाओ को शिकायत है कि कृष्ण नाता तो आसानी न जोड लेते हैं पर निभाने की चिन्ता नहा करते। दूसरे कवियो को शिकायतें भी यही या एसी ही रही हैं कि एक ही गाँव म बस कर हम दशन के लिए तरसाया करते हैं आदि आदि। देखिय आलम की गोपिका क्या कहती है—

भलो कीनी भावते जू पाँव धारे याहि खोरि
अनत सिधारे कि बसत याही पुर हो।
निकट रहत तुम एती निठुराई गही
अब हम जाने तुम निपट निठुर हो॥ (आलम)

प्रिय भी यह निठुरता प्रेमी को कसी दीनता की स्थिति मे ला पटकती है! उसकी स्थिति वास्तव म कितनी करुण हो उठी है—

(क) ननिन के तारे तुम प्यारे कसे होहु पीय
पायन की धूरि हमें दूरि क न जानिय।
(ख) जा दिन तें तुम चाहे लोग कहैं पीरी काहे
पीरो न जनय पल पल जिय जरिय।
घूघट की ओट आँसू घूटिबो करत नना
उमगि उसास कों लों धीरज यों धरिय॥
(ग) देखे टक लाग अनदेखे पलकों न लाग
देखे अनदेखे नना निमिष रहित हैं।
सुखी तुम कान्ह हो जु आन की न चिन्ता हम
देखेहु दुखित अनदेखेहु दुखित हैं॥ (आलम)

गोपिका की प्रिय विषयक चिन्ता का वार-पार नही उधर प्रिय के कान पर जू तक नही रेंगती। ठाकुर की गोपियो का भी अनुभव कुछ-कुछ ऐसा ही है। कृष्ण जसा कुछ कहा करते थ आचरण मे वसे नही निकले—

हरि लाँबी औ चौरी बखानत त अब गाढ परे गुण और कढे ज। (ठाकुर)

गोपिया उन्हे क्या समझा करती थी पर वे निकले कुछ और ही। उन्होंने प्रेम का नाता जोड कर गोपिया को अपने कुटुम्ब से नाता तोडने को पहले तो बाध्य कर दिया अब उनकी परवाह भी नही करते गुनाम की गाजरो का सा हाल कर रक्खा है—

खाइ कछू बगराइ कछू हरि गोपी गुलाम की गाजर कीन्हीं। (ठाकुर)

कुछ ऐसे निर्मोही और कठोर हृदय व्यक्ति से प्रेम कर जीवन म जो असफलता गोपिया को प्राप्त हुई है उसकी पश्चाताप से परिपूर्ण कितनी तीव्र व्यजना इन पक्तियों म हुई है—

(क) ऊधौ जू दोष तुम्हैं न उन्हैं हम आपुही पाव प पायर मारे।
(ख) ऊधौ जू दोष तुम्हैं न उन्हैं हम लीनी है आपने हाथ ही बीछी।

(ठाकुर)

कृष्ण से प्रेम क्या किया अपने हाथ स बीछी पकड ली है, परिणाम कितना तीक्ष्ण होगा जाहिर ही है। यहाँ प्रेम वैषम्य की कितनी तीव्र व्यजना है। रसखान के काव्य म आसक्ति और रीझ का प्राधाय होने के कारण प्रेम की विषमता के लिए अवकाश ही नहीं रहा है फिर भी दो चार छन्द एम मिल सकते है जिनम कृष्ण के प्रेम करने का दुष्परिणाम दिखाया गया है—

(क) कान्ह भए बस बासुरी के अब कौन सखी हमको चहि है।

(ख) काह कहू सजनी सग की रजनी नित बीत मुकुन्द की हेरी।
आवन रोज कहैं मनभावन आवन की न कबौं करी फेरी॥

(ग) लाल जे बाल बिहाल करी ते बिहाल करी न निहाल करी री। (रसखान)

और यह प्रेम विषमता घनआनन्द के काव्य म अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है। वैषम्य ही घनआनन्द के प्रेम म निखार और रग लाता है विविध भावना भेदों का उद्घाटन करता है तथा चाह म भीगे हुए हृदय का निदर्शन करता है। घनआनन्द के सम्बन्ध म यह तो निर्द्वन्द्व भाव से कहा जा सकता है कि विषमता उनके प्रेम भावना की अनन्य विशेषता है। प्रेम जितना ही आसक्त है और प्रिय के लिए तडपता है प्रिय उतना ही उपेक्षापूर्ण है। एक तरफ सम्पूर्ण समर्पण है, दूसरी तरफ छल और धोखा। एक का स्वभाव स्मरण करन का है दूसरे का विस्मरण करन का— **इत बाँट परी सुधि रावरे भूलनि।** एक तडप रहा है दूसरा इठला रहा है, इसी प्रकार प्रेमी और प्रिय की प्रकृति म बडा अन्तर है। एक निहकाम है दूसरा सकाम, एक निहचिन्त' है दूसरा सचिन्त एक सहर्ष होता है दूसरा सविषाद जगता है एक की नींद हराम है, दूसरा पर पसार कर सोता है एक चन्द्र की चन्द्रिका का अमृत पीता है दूसरा विषाद के आतप स प्रतप्त रहता है। इस प्रकार प्रिय और प्रेमी का जीवन उनकी प्रकृति उनके मनोभाव आपातत भिन्न और विषम हैं। यह वैषम्य उनके समग्र जीवन को अनुप्राणित किये हुए है। फलत घनआनन्द ने अपने काव्य मे सवत्र शतशत रूपों म इस वैषम्य का चित्रण किया है। यह वैषम्य भाव घनआनन्द म इतना प्रबल है कि वह उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अग हो गया है और उनकी शैली मे भी अनायास उतर आया है। घनआनन्द म यह सघटित यह वैषम्य 'स्टाइल इज दि मन' की उक्ति को चरितार्थ कर रहा है। कुछ लोगो ने इसे फारसी शायरी के प्रभाव रूप मे भी देखा है। घनआनन्द स्वच्छन्द धारा मे प्रेम की विषमता के प्रबलतम पोषक हैं। कहीं से भी उनकी पंक्तियाँ उदाहरण के रूप म ली जा सकती हैं—

(क) दुख द सुख पावत हो तुम तो चित के आयें हम चित्त लहो ।

(ख) पहिलें घनआनन्द सींचि सुजान नहीं बतिया अति प्यार पगी ।
अब लाय वियोग की लाय, बलाय बढ़ाय बिसास दगानि दगी ॥

(ग) क्या हसि हेरि हरह्यो हियरा अरु क्यों हित क चित चाह बढ़ाई ।

(घ) तब तो छबि पीवत जीवत है अब सोचनि लोचन जात जरे ।

(ङ) पहिल अपनाय सुजान सनेह सो क्यो फिरि तेह क तोरिय जू ।
निरधार अधार दै धार मंझार दई गहि बाह न बोरिय जू ॥

(च) चाहो अनचाहो जान प्यारे प जनन्दघन
प्रीति रीति विषम सु रोम रोम रमी है ।

इस प्रकार धनआनन्द म यह प्रीति की विपमता पद पद पर मिलेगी । उनके कवित्त सवयो का तो सारा बधान प्रेम वैपम्य पर ही आधारित है । प्रिय का आचरण उसका स्वभाव उसकी बोली उसके कम उसकी हँसी उसका प्रेम उसका आश्रय उसका आदान प्रदान सभी कुछ कुटिलता और विपरीतता स भरा हुआ है । भला ऐस प्रिय का प्रेमी सुख कस पा सकता है । यही कारण है कि धनआनन्द और उनके सहयोगी रीतिमुक्त कवियो म विरह पीडा और वेदना का प्राधान्य है । इस व्यापक रूप से प्राप्य गुण प्रेम वपम्य के रीतिमुक्त काव्य म आविभाव के कारण की भी सक्षेप मे टोह हो जानी अप्रासगिक न होगी ।

प्रेम उभयपक्षीय होने पर सम तथा एकपक्षीय होने पर विपम कहलाता है । प्राचीन सस्कृत काव्या म समप्रेम का विधान है । दृश्य और श्रव्य उभय प्रकार की काव्य परम्परा म यही बात मिलगी । वाल्मीकीय रामायण के राम और सीता कालिदास कृत अभिज्ञान शकुन्तला के दुष्यन्त और शकुन्तला तथा बाण विरचित कादम्बरी के कपिजल और कादम्बरी म समप्रेम का ही विधान है । वहा एसा नही है कि एक प्रेम करता है दूसरा उपक्षा । यह उभयपक्षीय प्रेम विद्यापति क राधा और कृष्ण म बहुत कुछ अक्षुण्ण है किन्तु सूरदास तक आते उसमे वपम्य का विधान हो गया है । कृष्ण भ्रमर क समान स्वार्थी और कृतघ्नी हो गए वियोग का इतना बडा पारावार लहरान लगा और भ्रमरगीत स विशद प्रेम वपम्य व्यजक काव्य की सृष्टि हुई । फिर भी सूर तथा सहयोगी कृष्णभक्त कवियो क कृष्ण के हृदय मे राधा और गोपियो के प्रति प्रमभाव का एकदम तिरोभाव न होने पाया था । रीतिकाल म आकर रीतिबद्ध काव्य म यह प्रेम-वपम्य नायिका क विरह निवदना म और भी बढ चला गया तथा रीतिमुक्त काव्य धारा के कवियो म अपना चरम सीमा पर पहुच गया जसा ठाकुर घनआनन्दादि की रचनाओ क पन्ने दिय गये अवतरणो स प्रमाणित होता है । इस प्रकार म रीतिमुक्त कवियो म पाई जाने वाली इस प्रेम विपमता क दो स्रोत हो सकते हैं—(१) भागवत (२) सूफी तथा फारसी साहित्य । महाभारत

म कृष्ण प्रेम मे वपम्य नहा आने पाया है पर श्रीमद्भागवत मे वर्णित गोपियो और कृष्ण क प्रेम म विपमता का विधान है। भागवत में यह वपम्य प्रेम लक्षणा-भक्ति के निदशन के कारण आया है। भक्ति म इस प्रकार की विपमता क लिए अवकाश नही कि तु भक्ति म माधुय भाव के सचार के कारण प्रीति विपमता का विधान अनिवाय हो जाता है। भागवतकार न श्रीकृष्ण के मुह स कहलाया है कि **मैं प्रम करने वालों को भी प्रेम नहीं करता।** यह गापिया के प्रेम म दृढता लाने के लिए है। गापियाँ श्रीकृष्ण के साथ रासलीला का आनन्द लेती रहती हैं बीच-बीच म कृष्ण अ तर्धान हो जात हैं। पेमिकाआ का आंखा म प्रेम की सरिता उमड चलती है। भागवत म श्रीकृष्ण को आप्तकाम बताया है। उनकी समस्त कामनायें पूण है, उ ह काई इच्छा नही। सूरदास के भ्रमरगीत मे कृष्ण जा निष्ठुर छली आदि कहे गय ह वे इ ही दाना कारणो स—एक ता वे भगवान हैं आप्तकाम, और दूसर उनक प्रति की जान वाली भक्ति माधुय अथवा का ताभाव की है। यही कारण है कि भागवत स सम्वधित साहित्य म कृष्ण प्रेम क प्रसग म प्रम वैपम्य का विधान हुआ। सूर तथा उनके सम सामयिक कविया स यह प्रभाव परवर्ती कविया पर पडता चला गया। विवेचका ने घनआनन्द आदि स्वच्छन्द प्रेमिया की एसी उक्तियो मे– **तुम तौ निहकाम, सकाम हमैं, घनआनद काम सों काम परयौ**– भागवत क कृष्ण की आप्तकामता और उनके प्रति की गई माधुय भक्ति का प्रभाव दखा है।[१] जा हो यह ता निर्विवाद ही है कि सूर आदि द्वारा चिनित गापीकृष्ण प्रेम प्रसग ही रीतिकाल क अ त ता क्या आधुनिक काल के आरम्भ तक इस अपरिहाय प्रभाव का मूल कारण रहा है। प्रेम वैपम्य की जो स्वीकृति वहा भागवत के प्रभाववश थी वही परम्परित रूप म घनआनन्दादि स्वच्छन्द प्रेमिया द्वारा गहीत हुई।[२] कि तु साथ ही साथ एक दूसरा और सभवत तीव्रतर प्रभाव इन स्वच्छन्द प्रेम की तरग वाले कविया पर और पड रहा था—वह था सूफी कविया का फारसी कविता का प्रभाव जहा इश्क की व्यजना वपम्य के विना सम्भव हा न थी। बोधा आलम रसखान घनआनन्द सभी कवि उदू फारसी की शायरी तथा उसकी परम्परा से वाकिफ थे इनकी भाषा और जगह जगह इनकी शैली सबूत के रूप म पश की जा सकती है। भाषा शली का ता अलग छोडिये इनके अनकानक ग्रथा के नाम ही इनकी उदू फारसी की खासी जानकारी के प्रमाण हैं। उदाहरण के लिए बोधाकृत 'इश्कनामा घनआनन्द कृत इश्कलता आदि। व्रजभाषा के साथ ही साथ मध्य-काल म उदू फारसी की शायरी की परम्परा मुगल दरबारो मे राव उमरावा मे तथा देहली और अवध ऐसे केन्द्रो म चल रही थी। उनकी नाजुकख्याली और अतिशयोक्ति परा-यणता रीतिकालीन काव्य पर अपनी अमिट छाप छोड गई है। विहारी रसलीन

---

[१] घनआनन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा – डा मनोहरलाल गौड पृ० ३४६ ३४७

[२] घनआनन्द ग्रथावली स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाड मुख पृ० ३६ ३७

रसनिधि इश्कचमन' के रचयिता नागरीदास आदि पर यह प्रभाव अचूक रूप से देखा जा सकता है। यही बात आलम बोधा घनआनन्द रसखान आदि के विषय म भी समझनी चाहिए। इन कविया पर सूफी प्रभाव पडा यह निर्विवाद है। इश्क मजाजी स इश्क हकीकी की प्राप्ति के आदश माधवानल कामकदला आदि आख्यान तथा स्वच्छन्द प्रेमिया की प्रेम पीर सूफी प्रभाव के प्रमाण है। उधर फारसी उदू शायरी मे जो प्रेम विपमता दिखाई जाती है उसकी बडी ही लम्बी परम्परा है जा आज भी चली चल रही है। प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का मत है कि स्वच्छ द काव्य मे प्राप्य प्रेम विपमता श्रीमद्भागवत तथा कृष्णभक्तो क काव्य के प्रभावस्वरूप उतनी नही जितनी समसामयिक फारसी और उदू की शायरी क प्रभाव के कारण। कृष्णभक्ति मे प्रेम की विपमता का विधान कृष्णभक्ति या कृष्ण प्रेम को विरह और अप्राप्ति की विपमता की आच म परिपक्व करन क विचार स किया गया है, कृष्ण की कठोरता दिखलाना वहा उसका उद्देश्य नही किंतु स्वच्छन्द कविया न प्रेम वपम्य का सिद्धान्त रूप मे हा स्वीकार कर लिया जान पडता है जा प्रेम वणन की फारसी पद्धति के अनुसरण का परिणाम है जहाँ प्रेम एक ही ओर जोर मारता है। आशिक प्रेम मे विकल होता है तडपता है माशूक खामोशी धारण किये रहता है एक बडी सीमा तक लापर वाही या उपेक्षा भाव भी दिखलाता है। यह प्रेम विपमता मध्य काल के कितने ही कविया म दखी जा सकती है।

**वियोग की प्रधानता**

वियोग का प्राधान्य इन स्वच्छन्द कविया की एक अन्य महत्वपूण विशेषता है। प्रेम का निखार विरह मे ही हाता है। विरह म ही प्रेम रग लाता है। विरही ही अनन्य प्रेम का पुजारी हाता है। प्रेम विरह म ही अपनी पराकाष्ठा का पहुचता है। इस सिद्धान्त का स्वच्छन्द धारा क कवियो न एकमत हाकर स्वीकार किया है। इन कविया क लिए प्रेम ही जीवन था फलत विरह उसका अविच्छेद्य अग और इस लिए विरह का चित्रण उन्हान विशेष अभिनिवेश स किया है। रीतिमुक्त काव्यधारा के कविया म यह विरह असाधारण विस्तार स वर्णित है। रसखान और द्विजदेव में यह अपेक्षाकृत कम है आलम और ठाकुर म विशेष तथा बोधा और घनआनन्द म तो असाधारण रूप से अधिक। अतिम दो कवियो क काव्य म यदि विरह बहिगत कर दिया जाय तो फिर उनक काव्य मे देखने लायक कुछ रह जायगा इसम सन्देह है। हमारे कहन का आशय यह है कि स्वच्छन्द कविया म वियोग भावना की प्रधानता या अतिशयता है। यह अतिशयता दो कारणो स है—एक तो यह कि इनका प्रेम इनके अन्त करण से निकला हुआ आवेग है रीतिबद्धो की तरह आरोपित नही दूसरे इनम से प्रत्येक ने स्वानुभव द्वारा यह निष्कर्ष प्राप्त कर लिया था कि विरह ही सच्चा प्रेम है। जिसने विरह व्यथा का अनुभव नही किया वह प्रेमपथ का सच्चा पथिक नही। हृदय और बुद्धि दोनो स व इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे। इनम से प्रत्येक के निजी

जीवन मे जिस प्रेम का दीपक जला वह कालान्तर म बुझ गया। आगत अधकार मे पुराना प्रकाश फिर मिला या नही और यदि मिला ता किस रूप म यह ता हर एक के जीवन की व्यक्तिगत बात है और इसी कारण उपलब्धि के भिन्न भिन्न रूप मिलेंगे। र इतना सच है कि विरह सबने झेला, उसकी आँच मे सब तपे और इसीलिए शृ गार ाल म इन वियोग भाक्ताओ और अनुभावको का काव्य प्रेम की सच्ची कान्ति से प्त है। विरह का तपन जिसने जितना सहा है उसका काय उतना ही उन्नत हुआ । इस कथन के कविया को परखने के लिए मैं साहसपूवक यह कसौटी आपके सामन खना चाहता हूँ और मुझे इस दृष्टि स घनआनन्द और बोधा श्रेष्ठतर लगत हैं। वेरह की तडप उनम जितना है औरा म नही। इसीलिए उनके काव्यो मे जो भगिमा और प्रभाव की तीव्रता है वह औरा म उतनी नही। मैं रसखान आलम ठाकुर और द्विजदेव के महत्त्व को कम नही कर रहा। लक्ष्य मात्र इतना ही है कि इस दृष्टि विशेष स देखने पर इनकी अपेक्षा बोधा और घनआनन्द म अधिक रमणीयता है।

यह काई सयोग की बात नही कि इन कविया म लगभग समान रूप से विरह का आधिक्य मिलता है। यह उनकी जीवनार्जित धारणा है, सच्चे प्रेम से उत्पन्न निष्ठा है जो विश्व के महाकविया द्वारा स्वीकृत निष्ठा के मेल म है। कविवर शेली ने कहा था कि हमारे मधुरतम गीत व हैं जिनम करुणतम भावनायें प्रतिबिम्बित होती हैं और महाकवि भवभूति ने भी दु:खोद्रेकमूलक वृत्ति का काव्य की मूल वृत्ति माना था। ये कवि भी मानते थ कि सच्चे प्रेमी की मूल स्थिति सयाग नही अपितु वियोग ही है। सयाग समस्त कामनाओ की परिसमाप्ति है। वियाग ही चिरतन कामना है। जीवन का आनन्द तृप्ति म नही, तृषा म है। जितनी तृषातुरता होगी प्रेम उतना ही दिव्य, भव्य और परिपक्व होगा। प्रेम के इसी आदश का गोस्वामी तुलसीदास ने भी स्वीकार किया था। उनका मत ता यह था कि चातक जो वषभर म सिफ एक बार स्वाति नक्षत्र का एक बूद जल पीकर तृप्त हो जाता है उसे वह भी न पाना चाहिए क्योंकि प्रेम की तृषा का बढना ही भला तृप्त पाकर तृषा के कम होन म प्रेमी की मान मर्यादा कम होती है—

> चातक तुलसी के मते स्वातिहु पिय न पानि।
> प्रेम तृषा बाढ़ति भली घटे घटगी कानि॥

सिद्धात रूप म रीतिमुक्त कवि कुछ इसी ढग स साचा करत थे। अपने जीवन के विचारशील क्षणो म जब उद्वेग का ज्वार शान्त हो जाया करता था व अपनी विरह को उद्विग्न कर देने वाली स्थिति स समझौता कर सके थ—

> जाहि जो जाके हितू म दई वह छोड बन महि ओढ़ने आवत। (बोधा)

प्रिय का दिया हुआ विरह उन्हें शिराधाय था। महत्त सुख प्राप्त करने के लिए महत दुःख झेलना ही पडता है यह ससार का नियम है—

> चहिये सुख तो सहिये दुख को दृग वारि पयोनिधि मे बहिये। (बोधा)

घनआनन्द की विरहिणी भी अपनी विरह-व्यथा व्यग्र स्थिति में पूर्णतः संतुष्ट है जिस विरह में वह कर माना गया जाता नहीं और न जागा ऐसा जागना। संसार का कौन-सा शृंगार है जो विरहा का नहीं उतना पड़ता, फिर भी वह विरहिणी अपने मन को समझाती है—'तेरे बाँट आयो है अंगारनि पै लोटिबो' (घनआनन्द)। अपनी दुरवस्था का दोष वह अपने प्रिय के मत्थे नहीं मढ़ती यह तो भाग्य की बात है—

इत बाँट परी सुधि रावरे भूलनि कैसे उराहनो दीजिए जू।

(घनआनन्द)

प्रेम के लिए वे त्याग बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार हैं—

जो बिसास गण माहि [illegible] धेर मरने भर।<br>
सो हित तजिये नाहि [illegible] सहित मरिबो भलो ॥ (बोधा)

व्यथा और पीड़ा अपनी निरन्तरता के कारण इन प्रेमियों के जीवन का एक स्थायी तत्त्व हो गया है। सुख की कामना में जिधर [illegible] है उधर सुख चाहे न मिले दुःख को इनसे इतना लगाव हो गया है कि वह अवश्य मिलेगा—

विधि जेहि चाह्यो सुख मिलत पाय। तिन दरद सनेही मिलत आय ॥

(बोधा)

पीड़ा को इतना स्नेह हो गया है इन्हें पीड़ा से। ऐसी प्यारी पीड़ा को भला ये क्योंकर छोड़ने लगे। जब वियोग यह व्यथा इनके जीवन में इस प्रकार घुल मिल गई थी कि वह इन्हें छोड़ती न थी। ये भी उसे छोड़ कर सुखी न रह सकते थे। इसीलिए इन्हें अपनी व्यथा और तड़पन पर बहुत गर्व भी है। संसार के प्रसिद्ध प्रेमियों मीन और पतंग के प्रेम का ये तिरस्कार करते हैं क्योंकि इन प्रेमियों में वह साहस और सहिष्णुता नहीं जो [illegible] होनी चाहिए। ये प्रेम की रीति नहीं समझते। प्रेम में जलना होता है और तड़पना होता है और अनन्त तड़पन भोगना होता है। ये प्रेमी तो कायर हैं और [illegible] जो जलने और तड़पने से भयभीत हो अपने प्राण ही विसर्जित कर देते हैं—

(क) हीन भए जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समान।<br>
हीन सनेही कौं लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रान ॥<br>
(ख) मरिबो बिसराम गनै वह तो यह बापुरो मीत-तज्यो तरसै।<br>
वह रूप-छटा न सहारि सकै यह तेज तवै चितवै बरसै ॥

(घनआनन्द)

मृत्यु के भय से दुःखों को [illegible] और [illegible] को [illegible] [illegible] और [illegible] हैं। [illegible]

का कठोर हृदय भी पिघल उठता है। अपनी वेदना सहने की इस शक्ति पर उन्हें नाज भी कम नहीं—

> आसा गुन बाँधि कै भरोसो सिल धरि छाती
> पूरे पन सिंधु मे न बूड़त सकायहौं।
> दुख दव हिय जारि अन्तर उदेग आँच
> राय रोम त्रासनि निरन्तर तचायहौं॥
> लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
> साहस सहारि सिर आरे लौं चलायहौं।
> ऐसे घनआनन्द गह्यो है टेक मन माँहि,
> एरे निरदई ! तोहि दया उपजायहौं॥
>
> (घनआनन्द)

प्रेम और प्रेमी की महत्ता व्यथा के सहन करने में है उससे डर कर मृत्यु का वरण करने में नहीं।

**सूफी शायरी के प्रेम की पीर तथा फारसी कवियों की वेदना विवृत्ति का प्रभाव**

इन कवियों का दृष्टिकोण ऐसा पीड़ापरक था। यही कारण है कि प्रेम की पीर इनके काव्य में उमड़ पड़ी है। पहले भी कहा जा चुका है कि स्वच्छन्द कवियों की प्रेम व्यथा सूफियों के 'प्रेम की पीर' का प्रभाव है तथा फारसी शायरी की उस परम्परा का भी जो समसामयिक रूप से उर्दू भाषा की शायरी मे भी चल रही थी। बोधा पर तो यह प्रभाव बहुत ही स्पष्ट है घनआनन्द पर भी है इसमें सन्देह नहीं। इन प्रभावों की चर्चा पहले भी की जा चुकी है और यह बताया जा चुका है कि घनआनन्द और साथ ही साथ रसखान ने इस प्रभाव को बड़े निजी ढंग से अपनाया है। हाँ बोधा ने उसे जरूर बिना आत्मसात किये हुए ले लिया है। उन्होंने लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम की प्राप्ति की बात का ढिंढोरा तो बार-बार पीटा है—

(क) इश्कमजाजी में जहाँ इश्कहकीकी खूब।
(ख) इश्कहकीकी है फुर माया। बिना मजाजी किसी न पाया॥
(ग) सुन सुभान यह इश्कमजाजी। जो दृढ़ एक हुक्क दिलराजी॥

परन्तु प्रेम पन्थ की जो गम्भीरता है उसे बोधा सँभाल नहीं पाये हैं। उनकी प्रेम वर्णना शुद्ध लौकिक है। वासना प्रवणता भी उनके समान औरों में नहीं। वे तो मजाजी इश्क (लौकिक प्रेम) में ही अटक कर रह गये। हकीकी इश्क तक वे पहुँच नहीं सके। रसखान और घनआनन्द जरूर उस उच्चतर सोपान पर पहुँच गये थे जिसे अलौकिक प्रेम या इश्कहकीकी कहा जा सकता है पर उन्होंने इसकी डुग्गी न पीटी थी। इतनी स्पष्टता से इस सूफी आदर्श का उन्होंने उल्लेख नहीं किया है। उनका यह भाव कृष्णप्रेम या कृष्णभक्ति के आवरण में छिप गया है बाहरी या विदेशी प्रभाव आत्मसात होकर काव्य में आया है। यद्यपि सूफी प्रेमादर्शों का अपना निजी रूप

न दे सके। स्वच्छन्द काव्यधारा के प्रतिष्ठित समीक्षको प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और डा० मनोहरलाल गौड ने भी स्वच्छन्द कवियो मे वियोग की प्रधानता का कारण सूफी काव्यधारा और समसामयिक फारसी काव्यधारा का प्रभाव माना है। मिश्र जी कहते हैं कि स्वच्छन्द कवियो मे साभायत तो लौकिक प्रेम का वर्णन हुआ है जो फारसी काव्य की वेदना विवत्ति से प्रभावित है तथा जहा अलौकिक प्रणय भावना का वर्णन हुआ है वहा वह सूफियो के प्रेम की पीर से। प्रेम की पीर सूफी कवियो का प्रतिपाद्य विषय है। स्वच्छन्द कवियो ने भी प्रेम की पीर को सिद्धान्त रूप मे ग्रहण किया है फलत यह प्रेम की पीर सूफियो से ही आई है। सूफिया का विरह वर्णन प्रसिद्ध है। जायसी के पदमावत मे यह प्रेम की पीर प्रतिपादित हुई है। सूफी सिद्धान्त के अनुसार सन्त या साधक या प्रेमी सारी सृष्टि मे विरह के दर्शन करता है, समग्रसष्टि को विरह के बाणा से बिद्ध मानता है समूची सष्टि परमात्मा के विरह में उसे पाडित प्रतीत होती है। सूफिया की यही विरह भावना और प्रेम की पीर स्वच्छन्द कवियो ने फारसी काव्य की वेदना की विवत्ति के साथ ग्रहण किया है। यही कारण है कि उनके काव्य मे भी वियोग का आधिक्य आ गया है।[१] डा० मनोहरलाल गौड ने भी स्वच्छन्द कवियो पर सूफी प्रभाव को स्वीकार करते हुए लिखा है कि सूफिया का विरह मानव मात्र के चित्त मे ही सीमित न रह कर समस्त प्रकृति मे व्याप्त हो जाता है। दूसरे उस विरह मे रहस्य भावना का अश रहता है। घनआनन्द के विरह मे वह व्याप्ति तो नही है पर रहस्य भावना की झलक कही-कही अवश्य आ गई है जो सूफियो से मिलती जुलती है।

सूफी और फारसी कवि दोनो ही वियोग को प्रमुखता देते हैं। सूफिया का वियोग तो उनकी निष्ठा है। यह विरह शाश्वत है। कभी कभी चेतनावस्था मे क्षण भर के लिए सयोग सुख मिलता है। फारसी के कवि भी प्रेम की एकनिष्ठता और अनन्यता दिखाने के लिए प्रिय को कठोर तथा निर्मोह दिखाते हैं। इसलिए विरह की प्रधानता आ जाती है। स्वच्छन्द धारा के कवियो ने विशेषत घनआनन्द ने फारसी काव्य पद्धति से प्रिय की कठोरता और सूफी कविया से प्रेम की पीर की प्रेरणा ली है। फलत उनकी रचनाओ मे वियोग का प्राधान्य स्वाभाविक है।[२] इस प्रकार स्वच्छन्द कविया का प्रेम वर्णन निश्चय ही एक सीमा तक सूफी कविया की प्रेमभावना से प्रभावित है। सूफी कवियो द्वारा वर्णित प्रेम की पीर का प्रभाव बडा व्यापक था। वह कबीर आदि निर्गुण ज्ञानमार्गिया और कृष्णभक्त कविया तक पर पडा। नागरीदास (सावन्तसिंह) कुन्दनशाह आदि मे तो यह प्रेम की पीर इस रूप मे आई है कि उसका विदेशीपन साफ झलकता है।[३] सूफियों की प्रेमभावना की मूल विशेषता है लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम के उच्चतर सोपान पर पहुँचना

---

१ घनआनन्द ग्रन्थावली वाङ्मुख पृ० ४० ४१

२ घनआनन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा, पृ० २६१

३ घनआनन्द ग्रन्थावली मुख पृ० १४

इश्कमजाजी द्वारा इश्कहकीकी की उपलब्धि। प्रसंगत यह सूफी सिद्धान्त घनआनन्द रसखान और बोधा म विशेष मिलेगा। घनआनन्द और रसखान का जीवनगत लौकिक प्रेम उत्कर्ष प्राप्त कर अलौकिक प्रेम मे पर्यवसित हो गया था। सूफियो का यह प्रेम सिद्धान्त बोधा के जीवन मे तो घटित नहीं हुआ किन्तु उनके द्वारा प्रतिपादित अवश्य हुआ है—इश्कमजाजी में जहा इश्कहकीकी खूब। बोधा की भाषा शैली और भावना पर अवश्य यह प्रभाव एक सीमा तक स्पष्ट है। प्रेम के उक्त सिद्धान्त का रसखान और घनआनन्द ने बहुत ही निजी ढग से कहा है। रसखान ने कहा है—यह बात गाँठ बाँध लेने की है कि ससार मे प्रेम के बिना आनन्द का अनुभव नही हो सकता, प्रेम चाहे लौकिक हो चाहे अलौकिक—

आनन्द अनुभव होत नहि बिना प्रेम जग जान।
क वह विषयानन्द क ब्रह्मानन्द बखान॥ (रसखान)

इसी आशय को घनआनन्द यो व्यक्त करते हैं—

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै बिचार
बापुरो हहरिवार ही तें फिरि आयो है।
ताही एक रस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि राधा जिन्हे देख सरसायो है॥
ताकी कोऊ तरल तरग सग छूट्यौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायो है।
सोई घनआनन्द सुजान लागि हेत होत
ऐसे मथि मन पै सरूप ठहरायो है॥

प्रेम के अपार महासागर मे राधा और कृष्ण अहर्निश एक रस क्रीडा करते रहते हैं। उनके प्रेमानन्द की चचल लहर से समग्र विश्व प्रेम स परिपूर्ण हो रहा है और उसी प्रेम तरग के एक कण से घनआनन्द के हृदय म सुजान के प्रति इतना प्रगाढ अनुराग आ गया है। इस प्रकार घनआनन्द और सुजान का लौकिक या मजाजी प्रेम राधा और कृष्ण के अलौकिक या हकीकी प्रेम का एक कण मात्र है। यही सूफी प्रेम तत्त्व है पर कितने निजीपन के साथ कहा गया है कितन आत्मसात रूप म अभिव्यक्त हुआ है।

दूसरा प्रभाव फारसी काव्य की वेदना विवृत्ति का है। घनआनन्द न 'इश्कलता वियोगबेलि' आदि फारसी की शैली पर ही लिखी है। उपयुक्त विवेचन मे अब यह बात निश्चित हो जाती है कि स्वच्छन्द कवि सूफी प्रेम-पीर और फारसी कवियो की विरह व्यजना प्रणाली स प्रभावित थ। इन कवियो पर फारसी भाषा शैली का प्रभाव दिखाने क लिए सम्प्रति दो उदाहरण काफी हैं—

(क) मला क्यो न लाते हैं। अबे हम इश्क मदमाते हैं।
गये थे बाग के ताई। उतै दे छोकरी आई॥

उन्हों जादू कछू कीन्हा। हमारा दिल कद कर लीन्हा ॥
अचानक भया भटभेरा। उन्होंने चश्म टुक फेरा ॥
कलेजा छेद कर ज्यादा। भया मन मारू में मादा ॥
इश्क दिलदार सो लागा। हमने दिल दद अनुरागा ॥

(बोधा विरह वारीश)

(ख) यारा गोकुलचन्द सलोने दिया चस्मदा धक्का है।
छोरि दिया घनआनन्द जानी हुसन सराबी पक्का है ॥
सैन कटारी आसिक उर पर त यारा भुक भारी है।
मद्द्र लहर ब्रजचन्द यार दी जिद असाडा ज्यादी है ॥

(घनआनन्द इश्कलता)

**विरह वणन रीतिबद्ध कवियों से भिन्न**

प्रेम क क्षेत्र म वियाग सम्बन्धी अपनी विशिष्ट धारणा क कारण स्वच्छन्द कवियो का विरह वणन रीतिबद्ध कवियो से भिन्न है। इस भिन्नता का पहला कारण ता आभ्यान्तरिकता या अनुभूति प्रवणता ही है। रीतिमुक्त कवि जहा अपनी व्यथा का निवेदन करते हैं कि वहा रीतिबद्ध कवि पराई (गापी का नायिका की कृष्ण की राधा आदि की) व्यथा का निवेदन करते है। वह पीडा जिसे कवि अपने ही हृदय म अनुभव करता है उस पीडा स कही तीव्र हुआ करती है जिसका उदय दूसर क हृदय म होता है किन्तु कल्पना और सहानुभूति द्वारा कवि जिस अपन मन म उतारता है। यही अतर इन दोनो प्रकार की व्यथाओ की अभिव्यक्ति म भी मिलगा। रीतिबद्ध कवियो की व्यथा आरोपित हुआ करती थी, रीतिमुक्तो की स्वानुभूत। दूसरी बात यह है कि रीतिमुक्त कवि अपनी व्यथा का निवेदन स्वय किया करते थ जबकि रीतिबद्ध कवि की कल्पित व्यथा का निवेदन अधिकतर सखी सखा या दूती आदि किया करते थे। इसके कारण भी अभिव्यक्ति अथवा काव्य की तीव्रता म बडा अतर आ जाया करता है। विरह व्यथा के पारपरिक अथवा परपरामुक्त निवेदना को आमन सामने रखकर यह अन्तर सहज ही देखा जा सकता है। बोधा और घनआनन्द के विरह के उद्गारो की आन्तरिक टीस और व्यथा की समकक्षता बिहारी देव, मतिराम और पदमाकर के दूतियो क कथनो म नही ढूढी जा सकती। मन प्राण और आत्मा की वह बेचनी जो घनआनन्द के इस सवये मे व्यक्त हुई है रीतिबद्ध कलाकारो क बस की बात नही—

अन्तर हो किधौं अन्त रहो दृग फारि फिरौं कि अभागिन भीरौं।'

रीतिबद्ध कवियो क नायक-नायिका कुटुम्ब और गाँव की मर्यादाओ म बँधे थ इसलिए उनके रूप और विषाद लुकाछिपी करते रहते थ। स्वच्छन्द कवियो न खुद प्रेम किया था और विरह की वेदना सही थी। उन्हें किन्हीं मर्यादाओ की परवाह न थी। उनका जीवन ही प्रेम के लिए उत्सग किया जा चुका था फलत मनोवेगो का अकुण्ठ प्रवाह उनकी लेखनी से सम्भव हुआ है। इसी कारण उनके विरह की तीव्रता

और कवि नहीं पा सके हैं। बोधा और घनआनन्द की विरह-व्यंजना मे जितनी और जैसी व्यथा है उसके लिए उनका काव्य ही प्रमाण है—

(क) ऊतर सँदेसो मिलें मेल मानि लोजत हो,
ताहू को अँदेसो अब रह्यो उर पूरि कै।
उठी है उदेग आगि जीउ कौन आस लागि,
रोम रोम पीर पागि डारो चिता चूरि कै॥
निपट कठोर कियो हियो मोह मेटि दियो,
जान प्यारे नेरे जाय मारो कित दूरि कै।
तरफों बिसूरी कै बिथा न टरै मूरि कै,
उड़ायहौं सरीर घनआनन्द यों धूरि कै॥

(ख) तपति बृन्दावन अनन्दघन जान बिन,
होरी सी हमारे हिये लगिय रहति है।

(ग) अन्तर आँच उसास तचै अति अंग उसीजै उदेग की आवस।
ज्यों कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौंहू कहू सघर नहि घ्यावस॥

(घ) रोवत बाल विरह मतमाती। ताके रोवत विरह न छाती॥
अब कहु सखी करों मैं कैसी। भई दशा माधो की ऐसी॥
गिरि ते गिरों मरों विष खाई। तनु तजि मिलों माधवै जाई॥
मरौं मिटै दुख मेरो प्यारी। कसेहु प्राण कढ इहि बारी॥
(विरह वारीश बोधा)

(ङ) बोधा कवि भवन मे कसेहू रह्यो न जाय
बिरह दवागि ते न जायो जाय वन को।
शरद निशा मे चन्द निश्चर ऐसो ताको
चाँदनी चुरैल सो चबाए लेत तन को॥ (बोधा)

(च) बरुनीन मैं नैन झुकै उझकै मनो खजन प्रेम के जाले परे।
दिन औधि के कैसे गनौं सजनी अंगुरीन के पोरन छाले परे॥
कवि ठाकुर ऐसी कहा कहिए निज प्रीत करे के कसाले परे।
जिन लालन चाह करी इतना तिन्है देखिबे के अब लाले परे॥ (ठाकुर)

विरह वर्णन सम्बन्धी तीसरी विशेषता जो इन कवियों मे जगह-जगह पाई जाती है वह यह है कि अनेक बार इन्होंने अपनी व्यथा को मौन मे छिपा रखा है। खामोशी भी बड़ी व्यंजक हुआ करती है। इन कवियों ने भी अनेक बार कुछ न कह कर बहुत कुछ कह दिया है। उस मौन मे भी इनकी पीड़ा फूट कर ही रही है। इनके हृदय में बार-बार यह बात आई है कि अपने मन की व्यथा मन में ही रखी जाय। बार-बार व्यथा इनके मन ही मन घुटती रही है और ये व्यथा में घुटते रहे हैं—

(क) गहिये मुख मौन भई सो भई अपनी करी काहू सों का कहिये। (बोधा)

(ख) आवत है मुख लों बढ़ि क पुनि पीर रहै हिय ही में समाइ कै। (बोधा)

(ग) मुदते ही बन कहत न बन तन मे यह पीर पिरिबो कर। (बोधा)

(घ) पहिचान हरि कौन मो से अनपहचान कों।
स्यों पुकार मधि मौन कृपा कान मधि नन ज्यों। (घनआनन्द)

चौथी विशपता इनक वियाग वणन मे ऊहात्मवता या दूरारढ कल्पना का अभाव है। इनकी अभिव्यक्ति अत प्रेरित रही है। इसी कारण भावुकता से असपक्त उक्तियो वा विधान इनमे बहुत कम मिलता है। रीतिकारो की सी विरह सबधिनी उपहासास्पद उक्तिया इन कवियों म अपवाद-स्वरूप ही मिलेंगी। स्वच्छन्द काव्य के विरहियो के गाँव मे माघ महीने की रात्रि म विरह ताप जन्य ऐसी लुयें नही चलती जिनमे सखियो को गीले कपडे ओढकर नायिका क पास जाना पडता हो। ये विरही एसी आह नही भरते जिससे इनका विरह दुवल मात्र साँस लने और छोडन म छ-सात हाथ पीछे या आगे हट बढ जाय। इनका देह विरह म ऐसी भट्टी नही बनने पाया है जिसके ऊपर गुलाब जल की भरी शीशी उलट दी जाने पर भी मात्र भाप के ही रूप म दिखाई देती है तथा जुगनुओ का देखकर इन विरहियो को अग्नि वर्षा का भ्रम नही होता। विरह ताप की ऐसी नाप-जोख ये कवि नही कर सके क्योकि इनका विरह सच्चा था निजी था भुक्तभोगी का कथन था। आलम की निम्नलिखित युक्ति अथवा ऐसी कुछ उक्तियाँ स्वच्छन्द धारा की वियोगमूलक काव्य राशि मे अपवाद-स्वरूप ही मिलेंगी—

अब क्त पर घर माँगन है जाति आगि,
आँगन मैं चाँदु चिनगारी चारि झारि लै।
साँझ भई मौन सँझवाती क्यों न देति है री
छाती सों छवाय दिया बाती आनि बारि ल॥ (आलम)

आलम की यह युक्ति कि साँझ हो गई है दिया जलाने के लिए आग नही मिलती इस पर विरहिणी अपनी सखी से कहती है कि देख मरा ये हृदय विरह के कारण जल रहा है दिया बत्ती ले आ और मरी छाती से उसे छुआ कर जल ले उक्ति चमत्कार की यह कल्पना समसामयिक रीतिबद्ध काव्य और फारसी उर्दू की अतिशयोक्ति प्रधान शली के प्रभावस्वरूप की गई जान पडती है। स्वच्छन्द कवियो मे ऐसी भाव विच्छिन्न कल्पना बहुत कम मिलेगी। उसका कारण यही है कि इन कवियो ने हृदय की सच्ची व्यथा को मुखर किया है।

आभ्यान्तरिक और हृदय प्रसूत होने के कारण इनके विरह म रीतिग्रथो मे वर्णित विरहिणियो का-सा शास्त्रीय विरह वणन नही है अर्थात उसम विरह के नाना भेदोपभेदा (अभिलासा हेतुक ईर्ष्या हेतुक विरह हेतुक प्रवास हेतुक शाप हेतुक और

मान हुतुक) तथा विभिन्न स्थितियाँ और कामदशाओ (अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति गुण कथन, उद्वेग, प्रलाप उन्माद, व्याधि जडता मृति) का बँधा-बँधाया स्वरूप निदर्शन नही है। ये भेद और कामदशाएँ इनके काव्य म ढूँढ कर निकाली जा सकती हैं किन्तु शास्त्रोक्त योजनानुसार ये स्वच्छन्द कवि चले नही हैं चल सकते नही थे। ऐसा हो भी कसे सकता था जब ये अतव्यथा के आवेग मे रचना किया करते थे।

इनकी वियोग व्यथा की व्याप्ति और आन्तरिकता का तो पूछना ही क्या! जीवन का कोई क्षण ऐसा न होता था जब बेचैनी दूर होती हो। स्वच्छन्द धारा के घनआनद श्रेष्ठतम प्रतिनिधि की तो कम से कम यही स्थिति थी बोधा का विरह भी बहुत कुछ इसी कोटि का था। विरही घनआनद को तो रात दिन चैन न था—

रन दिन चन को न लेस कहूँ पयै भाग
आपने ही ऐसे दोस काहि धौं लगाइय।

प्रिय की मनमोहिनी मूर्ति अपनी नाना छवियो क साथ रात दिन सामने खडी रहती है— निसि द्यौस खरी उर माँझ अरी छबि रग भरी मुरि चाहनि की। यह छवि मन की आँखो के सामने तो सतत विद्यमान रहती थी पर तन की आखें उसके लिए सदा तरसती रहती थी उसकी एक झलक भी नसीब न होती थी— घनआनद जीवनमूल सुजान की कौंधनि हू न कहूँ दरस। इस प्रकार इनकी वियोग व्यथा विरह मे तो सताती ही रहती थी, सयोग मे भी पीछा न छोडती थी—

भोर तें साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
साँझ तें भोर लौं तारन ताकिबो तारनि सौं इकतार न टारति॥
जौ कहूँ भावतो दीठि पर घनआनन्द आँसुनि औसरि गारति।
मोहन सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति॥

वियोग तो वियोग ही था। उसका खटका सयोग म भी लगा रहता था कि कही वियोग न हो जाय—

अनोखी हिलग दया बिछुरयो प मिल्यौ चाहै,
मिलेहू पै मारै जार खरक बिछोह की।

औरो क लिए भले ही अचरज की बात हो पर सच तो यह था कि इनका हृदय वियोग सहते-सहते विरह का इतना अभ्यस्त हो चला था कि सयोग की सुखद स्थिति म भी चन नही मिलने पाता था—

(क) कहा कहिये सजनी रजनी गनि चन्द कढ कि जिय गहि काढ़।
अमीनिधि प विषसार सब हिम जोति जगाय क अगनि डाढ़॥
सु या पति सग न जानति है घनआनन्द जान वियोग की गाढ़।
वियोग मैं बैरिनि बाढ़ति जसी, कछू न घट, जु सजोग हू बाढ़ै॥
(ख) यह कसो सजोग न जानि पर जु वियोग न क्यों हू बिछोहत है।

ऐसी दारुण स्थिति थी कि सयोग मे भी वियोग ने वियोग नहीं होने पाता था—

दिशि जहि चल्यों सुख चित चाय। तिस दरद सनेही मिलत आय॥

(बोधा)

विरह की आँच म तप कर इन प्रेमियो का प्रेम पवित्र हो गया था। इनकी वृत्तियाँ उदात्त हो गई थी अनक कवि तो भगवदोन्मुख भी हो चले थे। मन की वासनाओ का सस्कार हो चला था। वियोग इन्हे प्रेम क उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठापना म सहायक हो सका। वासना और कामुकता के निर्बाध उद्गार केवल बोधा म मिलेंगे, कहीं-कहीं आलम में शेप कवियो की कृतियाँ तो पवित्र प्रेम की व्यजनाएँ हैं। उन्होने शरीर सुख की कामना नही की। मात्रा मिलन और सान्निध्य का अभिलाष व्यक्त किया है विगत घटनाओ की स्मृति की है प्रिय के लाख लाख गुणो का स्मरण, उसकी साम्प्रतिक अवहेलना पर उपालम्भ तथा लक्षविध आत्म निवेदन। प्रणय की ऐसी दिव्य और तीव्र अनुभूतियो को उन्होने वासना स पंकिल नही होने दिया है। प्रेम की व्यथा जरूर व्यक्त की है पर वासना स मुक्त और दिव्य प्रेम की आभा से मडित—

(क) जब ते सुजान प्रान प्यारे पुतरीनि-तारे
आखिन बसे हो सब सूनो जग जोहिय।
(ख) जब तें निहारे इन आखिन सजान प्यारे
तब तें गही है उर आन देखिबे की बान।
रस भीजे बननि लुभाय क रचे हैं तही
मधु-मकरद-सुधा नावों न सुनत कान।
प्रानप्यारी ज्यारी घनआनन्द गुननि कथा,
रसना रसीली निसिबासर करत गान।
अग-अग मेरे उनही के सग रग रँगे
मन सिंघासन प बिराज तिनही को ध्यान।

इनके विरह वर्णनो म आसक्ति की तीव्रता है इसी स इनका प्रणय इतना प्रगाढ है। एक ओर तो वासना का तिरस्कार दूसरी ओर रीझ या आसक्ति का अतिशय। इसी रीझ क हाथ य बिक हुए है— बौरी फिर न रहै घनआनन्द बावरी रीझ के हाथिन हारिये। आसक्ति जितनी तीव्र होगी अप्राप्ति म प्रिय प्राप्ति की लालसा उतनी ही बलवती होगी। यही कारण है कि य कवि विरह का आत्यन्तिक चित्रण कर सके हैं। इनकी आसक्ति और तज्जन्य विरह कोरी बुद्धि की उपज न थी वह सब इनके हृदय द्वारा अनुभूति थी इसी से इनकी अभिव्यक्तियाँ भी इतनी मार्मिक हो सकी हैं उनमे जो नवलता है वह इसी हार्दिकता की लपेट के कारण। इन कवियो की व्यजना शली मे भी जो वैशिष्ट्य है वह इसी व्यक्तिनिष्ठता के कारण प्रणय भावना की आन्तरिकता के कारण। इसी विरह प्रसग म दो एक और बातें भी प्रासगिक रूप स

निवेदनीय हैं। एक तो यह कि इन कवियो ने मात्र नारी के विरह का चित्रण नही किया है पुरुष के विरह का भी वणन किया है जैसे रीतिबद्ध काव्य मे कम मिलता है सम्भव है यह सूफी प्रभाव हो। बोधा न माधवानल कामकदला मे माधव का विरह स्थान-स्थान पर विस्तारपूवक दिखलाया है। यही बात आलम के भी आख्यान ह और गोपी घनश्याम के व्याज से वर्णित सात गोपी विरह मूलत तो घनआनद की स्वीय प्रीति-व्यथा की अभिव्यक्ति है। इसका कारण एक बडी हद तक स्वानुभूति का प्रकाशन भी है। दूसरी बात यह है कि प्रबध की धारा म कथा की आवश्यकता के अनुसार जगह-जगह भिन्न भिन्न स्थितियो मे विरह का जो वणन किया गया है विशेषत अपने आख्यानों म बोधा और आलम के द्वारा उसका स्वरूप भी पर्याप्त गम्भीर है। मैं समझता हूँ कथाकाव्या मे परिस्थिति के सघात स विरह की वणना विशेष चमत्कारपूण और प्रभावोत्पादक हा जाती है। विरह चित्रण की यह गम्भीरता और सुदरता बोधा के काव्य मे सर्वोत्कृष्ट रूप म सुलभ है। मुक्तका मे भाव की वह गम्भीरता इतनी सरलता से नही लाई जा सकती जो पूर्वापर सम्बधो से युक्त प्रबध काव्यों म सहज वियस्त हो सकती है। तीसरी उल्लखनीय बात यह है कि जगह जगह पर विरह का चित्रण करते हुए इन कवियो ने उस विरहोमाद का भी चित्रण किया है जो हमें परम्परा से प्राप्त रहा है जिसम पड कर ये विरह जड चेतन का भेद भूल जाते हैं तथा कभी वृक्षो स कभी लताओ स कभी पक्षियों से अपने प्रिय का समाचार पूछते हैं और कभी वायु स अथवा मेघ से अपनी व्यथा का निवेदन करते हैं और उसे प्रिय तक पहुँचान का आग्रह भी। चौथी बात यह है कि य कवि भी आवश्यकतानुसार ऋतुआ और प्रकृति की परिवतनशीलता मे विरह के उत्तेजित स्वरूप का चित्रण परम्परानुमादित रूपा म कर गय है। नियमित रूप से रीतिकारो की भाँति तो षडऋतु वणन किसी ने नही किया है पर वर्षा और वसन्त ऐसी ऋतुओ म विरह की स्थिति का चित्रण अवश्य हुआ है। बारहमासा तो बोधा ने ही लिखा है।

**रहस्यदर्शिता का अभाव**

स्वच्छद कवियो के काव्य मे यह बात लक्ष्य करने की है कि उनका काव्य मूलत रहस्यमूलक नही है। उसम वर्णित प्रेम मूलत लौकिक है कभी-कभी एसा अवश्य हुआ है कि लोक मे प्रेम की असफलता प्राप्त हान पर वही वृत्ति भगवदोन्मुख हो गई है। वह प्रेम वृत्ति ईश्वर क सगुण रूप श्रीकृष्ण मे समा गई है। यदि निगुण निराकार के प्रति वह आसक्ति निवेदित की गइ हाती तो रहस्यमयता के लिए गुजाइश भी होती। सूफिया का रहस्यवाद प्रसिद्ध है। इन पर सूफिया का प्रभाव या फिर भी ये रहस्यवादी न बन सके। घनआनद आदि मे कहीं-कहीं रहस्यात्मकता की झलक मिलती है। उदाहरण के लिए, इस प्रकार के दो चार कथनो म—

(क) मन जसे कछू तुम्हें चाहत है स बखानिये कैसें सुजान हो हो ।
इन प्रानंनि एक सदा गति रावरे बावरे लौं लगिय नित लो॥
बुधि औ सधि मननि वननि मैं फरि वास निरतर अतर गो ।
उघरो जग छाय रह घनआनद चातिक त्यौं तक्यि अब तो॥
(ख) अतर हा किधौं अत रहौ, दग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं ।
आगि जरौं परि पानी परौं अब कसो करौं हिय का बिधि धीरौं॥
जौ घनआनन्द ऐसी रुची तौ कहा बस है अहौ प्रानंनि पीरौं ।
पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हें धरनी मैं धँसौं कि अकासहि चीरौं॥

परन्तु वह इन कविया की स्थायी वृत्ति कभी नहीं रही। काव्य के क्षेत्र म रहस्य भावना का प्रसार और विस्तार निगु ण को स्वीकार करके चलने में सभव होता है किन्तु स्वच्छन्द कवियो ने विरह वणन के लिए गोपी कृष्ण के प्रेम-वृत्त का सहारा लिया कृष्ण को यदि ईश्वर के रूप म स्वीकार किया तो भी उनकी व्यक्त सत्ता ने चिंतन और ध्यान म रहस्य भावना गुह्य या गोप्य का ध्यान और चिंतन के लिए अवकाश न था फलस्वरूप उनका प्रेम या विरह वणन रहस्यात्मक नही होने पाया है। गोपिया का विरह निवेदन उन्होने अत्यन्त विशद रूप म किया है परन्तु सगुण स्वरूप वाले श्रीकृष्ण के सदभ म रहस्य दशन और गुह्य चिंतन की गु जाइश न थी है। बात यह है कि रहस्यात्मक प्रवत्ति का मेल जितना अधिक निगु ण साधना से बैठता है उतना अधिक सगुण साधना मे नही। कही-कही जसा कि उपयु क्त अवतरणो से तथा अयत्र की गई विवेचनाओ एव उदाहरणा स पता चलेगा रहस्य की झलक भर आ गई है। भारतीय भक्ति म यो भी रहस्यात्मकता का समावेश कभी नही रहा।[१] रहस्य की जो झलक यत्र-तत्र प्राप्त है उसे प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने फारसी साहित्य और सूफी साधना के प्रवाह से सबद्ध रूप म देखा है। यह झलक घनआनन्द, रसखान और बोध तथा आलम मे तो मिल सकती है क्योकि इन पर थोडा-बहुत सूफी प्रभाव था फिर भी यह झलक है बहुत ही कम। ठाकुर और द्विजदेव मे तो रहस्य की झलक बिल्कुल ही न मिलेगी क्योकि ये कवि शुद्ध भारतीय प्रेम पद्धति को लेकर चले हैं। इनकी प्रेम भावना बिल्कुल भारतीय ढग की है।

### स्वच्छन्द कवि मूलत भक्त नहीं प्रेमी थे

स्वच्छन्द धारा के कविया की गणना भक्त कवियो मे न की जाकर प्रेमी कवियों मे की जायगी क्योकि य प्रेम की उमग के कवि थे। घनआनन्द ने निम्बार्क सप्रदाय म दीक्षा ली थी। सप्रदाय विशेष की भक्ति अगीकार करने तथा भक्तिपरक साहित्य की सजना करने के अनतर भी वे प्रेमिया की ही मडली की शोभा बने साहित्य म वे प्रेम की पीर के ही कवि रूप म प्रसिद्ध हुए। आलम ठाकुर, बोधा और द्विजदव

शृंगार के ही कवि माने गये। कुछ छंदों में इन्होंने देवी देवताओं की स्तुति लिखने के कारण इन्हें भक्त नहीं कहा जा सकता। सूर, तुलसी और मीरा की श्रेणी में इन्हें नहीं बिठाया जा सकता। रसखान उत्कट कृष्णानुराग के कारण अवश्य भक्तों में गिने जाते हैं परन्तु उनका भी चरम काम्य प्रेम ही रहा है। वे प्रेमी की निर्बाध महिमा के गायक रहे हैं—

(क) प्रेम अयनि श्री राधिका प्रेम बरन नँदनन्द।
प्रेम वाटिका के दोऊ, माली मालिन द्वन्द्व॥

(ख) प्रेम अगम अनुपम अमित सागर सरिस बखान।
जो आवत एहि ढिग बहुरि जात नहीं रसखान॥

(ग) शास्त्रनि पढ़ि पंडित भए के मौलवी कुरान।
जु पै प्रेम जान्यौ नहीं कहा कियौ रसखान॥

(घ) जेहि पाये बैकुण्ठ अरु हरिहू की नहिं चाहि।
सोइ अलौकिक सुद्ध सुभ सरस सुप्रेम कहाहि॥

इस प्रकार रसखान भी प्रेम की महिमा का अखंड संकीर्तन करते हुए प्रेमियों के शिरमौर हो गये हैं। आचार्य मिश्र लिखते हैं कि

'जिस प्रकार ये रीति से अपने को स्वच्छन्द रखते थे उसी प्रकार भक्ति की साम्प्रदायिक नीति से भी। अतः ये भक्ति मार्गी कृष्णभक्तों, प्रेममार्गी सूफियों रीतिमार्गी कवियों—सबसे पृथक स्वच्छन्दमार्गी प्रेमोन्मत गायक थे। कोई इन्हें इनकी भक्ति-विषयक रचना के कारण भक्त कहना हो तो कहे पर इतने व्यतिरेक के साथ कि ये स्वच्छन्द प्रेम मार्गी भक्त थे तो कोई बाधा नहीं है। स्वच्छन्दता इनका नित्य लक्षण है। यही कारण है इन्होंने काव्य शैली की दृष्टि से भी भक्तों से प्रस्थान भेद सूचित किया।'[1] रसखान के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी कहा है कि 'वे आरम्भ से ही बड़े प्रेमी जीव थे। प्रेम के ऐसे सुन्दर उद्गार इनके सवैयों में निकले कि जनसाधारण प्रेम या शृङ्गार सम्बन्धी कवित्त सवैयों को ही रसखान कहने लगे। इनकी कृति परिमाण में तो बहुत अधिक नहीं है पर जो है वह प्रेमियों के मर्म को स्पर्श करने वाली है। दूसरी रसखान ने कृष्ण भक्तों के समान गीतिकाव्य का आश्रय न लेकर कवित्त सवैया में अपने सच्चे प्रेम की व्यंजना की है।'[2] ये कवि कृष्ण के साथ अन्यान्य देवी देवताओं का नामोल्लेख भजन या कीर्तन करते थे। कृष्ण का ही प्रधान रूप से उल्लेख इनके काव्यों में कृष्ण भक्ति के कारण नहीं वरन इसलिए कि उनसे अधिक प्रेमोपयुक्त पात्र अथवा प्रेम का देवता कोई दूसरा न था। रीतिमुक्त या रीतिबद्ध कवियों देव दास पद्माकर बिहारी, सेना पति आदि ने भी विभिन्न देवी देवताओं की स्तुति में छन्द रचना की है पर यह इनकी भक्ति का लक्षण नहीं। भगवद् भक्ति में सूर तुलसी और मीरा की सी निमग्नता इनके काव्यों में नहीं। ये स्वच्छन्द कवि लौकिक प्रेम के पुजारी थे पर यह लौकिक प्रेम स्थूल

---

१ घनआनन्द ग्रंथावली वाङ्मुख पृ० ४३

२ हिंदी साहित्य का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल पृ० १७७

भोगवासना प्रधान न होकर मानसिक और आतरिक अधिक था। जहाँ तहाँ स्थूल ऐन्द्रिकता भी थी, इसका निषेध नही किया जा सकता। कृष्णलीला इनकी उस प्रेम व्यजना के साधन रूप मे स्वीकृत है इनकी भक्ति का आधार नही। यह पहले ही बता चुके हैं कि इन कवियो का निजी जीवन ऐहिक प्रीति रस से सिक्त था। सरल सादा प्रेममाग जिसमे बुद्धि की चतुराई और वक्रता के लिए कोई गुजाइश न थी। इनका प्रिय माग था—

> अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाक नहीं।
> तहाँ साँचे चल तजि आपुनपौ झझक कपटी जे निसाक नहीं॥

ये उसी सयानपरहित और अवक्र माग पर चलने वाले पथिक थे हृदय का अपण य जानते थे। बुद्धि की चतुरता से भरी क्तर ब्योंत से इनका वास्ता न था। ये हृदय को आग करने वाले थे, रीझ पर मरन वाले थे। बुद्धि की चातुरी इनकी सादगी पर पानी भरा करती थी—'रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी है करि दासी। (घनआनद)

स्वच्छन्द कवियो की रचनाओं के तीन स्थूल विभाग

स्वच्छन्द कवियो की समस्त रचनाआ के मोटे तौर से तीन खण्ड किये जा सक्ते हैं। ये खड या विभाग रचनागत प्रवत्ति की दृष्टि से हैं। पहले प्रकार की रचनाएँ वे हैं जो रीति स प्रभावित है जिसम रीतिबद्ध रचनापद्धति की छाप है। यह छाप आलम और द्विजदेव की काव्यशली पर विशेष है। इनकी वणन शैली उपमान योजनाएँ किसी सीमा तक रीतिबद्ध अथवा रीतिसिद्ध कर्त्ताओ के मेल मे हैं। नेत्रो को लेकर बाधी गई उक्तिया खडिता के कथन आदि जो इन तथा अन्य स्वच्छन्द कविया में समान रूप से मिलते है रीति के प्रभाव के ही सूचक हैं। हाँ विपरीत रति और सुरताल के चित्र बोधा को छोड किसी ने नही प्रस्तुत किये। बोधा पर यह बाजारी प्रभाव विशेष था। नायिका भेद किसी ने नही लिखा। खडिता आदि के जो वणन हैं उनम प्रिय के अपर प्रिया के ससग अथवा रमण चिन्हो का सविस्तार वणन कम हृदय की भावनाओं का चित्रण विशेष है। नीचे एकाध उदाहरण देकर यह दिखाने का यत्न किया जा रहा है कि ये रचनाएँ किस प्रकार रीतिबद्ध, कर्त्ताओ की कृतिय' के मेल मे हैं—

> (क) कधौं मोर सोर तजि गए री अनत भाजि
> कधौं उत दादुर न बोलत हैं ए दई।
> कधौं पिक चातक महीप काहू मारि डारे
> कधौं बक पाँति उत अन्तगति है गई।
> आलम कहै हो आली अजहूँ न आए प्यारे,
> कधौं उत रीति बिपरीति बिधि ने ठई

मदन महीप की दोहाई फिरिबे तें रहो
जूझि गए मेघ कधौं दामिनी सती भई ॥

(ख) तरोई मुखारबिन्द निन्द अरबिंद प्यारी
उपमा को कहै ऐसी कौन जिय मैं खग।
चपि गई चन्द्रिकाऊ छपि गई छबि देखि,
भोर को सो चाद भयो फीकी चादनी लग ॥

(ग) आलम कहै हो रूप आगरो समातु नाहीं,
छबि छलकति इहा कौन को समाई है ॥
भूषन को भारु है किशोरी बैस गोरी बाल,
तेरे तन प्यारी कोटि भूषन गोराई है ॥ (आलम)

(घ) जावक के भार पग परत धरा प मन्द,
गन्ध भार कुचन परी हैं छूटि अलकें।
द्विजदेव तसियै विचित्र बरूनी के भार
आधे आधे दृगन परी हैं अध पलक ॥
ऐसी छबि देखि अग अग की अपार,
बार बार लोचन सु कौन के न ललक।
पानिप के भारन समारत न गात लक
लचि लचि जात कच भारन के हलक ॥ (द्विजदेव)

हो सकता है किसी किसी कवि मे इस प्रकार की रचनाएँ का यारभ काल की हा। स्वच्छन्द कवियो पर समसामयिक काव्य पद्धति का बिल्कुल ही प्रभाव न होता यह बहुत हा कठिन बात थी। वस्तु और भावतत्व पर कम शली पर यह प्रभाव अवश्य है।

दूसरे प्रकार की रचनाएँ वे हैं जिनमे भक्ति भावना के दशन होते है। ये प्रभाव रसखान और घनआनद पर विशेष है। इस प्रकार की पक्तियाँ—

(क) या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर को तजि डारौं।
(ख) काग के भाग कहा कहिये हरि हाथ सों ल गयो माखन रोटी।
(ग) सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गाव। आदि

लिख कर जहाँ रसखान न अपनी अनन्य भक्ति का परिचय दिया है वहा घनआनद न भी नाममाधुरी ब्रजस्वरूप गोकुलविनोद 'ब्रजप्रसाद पदावली आदि कृतियो द्वारा अपनी भक्ति-परायणता का परिचय दिया। यह आदि पूर्ववर्त्तिनी और समसामयिक भक्ति प्रवाह परिणाम था जा इस प्रकार की रचनाओ से स्पष्ट है—

(क) गोपाल तुम्हारेई गुन गाऊँ।
करहु निरंतर कृपा कृपानिधि बिनती करि सिर नाऊँ।
टरत न मोहनि मूरति हिय तें देखि देखि सुख पाऊँ।
आनंद घन हो बरसौ सरसौ प्रान पपीहा ज्याऊँ॥

(ख) कौन पै गावत गनत बन हो।
गुन अनंत महिमा अनंत नित निगमौ अगम भन हो।
जो जाको अनुमान जानमनि मानत मोद मन हो।
चातक चोंप चटक त्यां चितयो उचित आनंदघन हो। (घनआनंद)

तीसरे प्रकार की और सबसे महत्त्वपूर्ण रचनाएँ वे हैं जिन्हें हम स्वच्छन्द या रीतिमुक्त कहते हैं जिनकी विशेषताओं का हम सविस्तार विश्लेषण कर आये हैं जिसके सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि घनआनंद हैं तथा जिसकी परम्परा निरपेक्षता ने उसे मध्य युग की इतनी प्रधान काव्य धारा का रूप दिया है।

## शैली शिल्प या कला पक्ष

अंतिम महत्वपूर्ण विशेषता है रीति स्वच्छन्द कवियों की शैली। ये कवि शैली के क्षेत्र में भी रीति परम्परा से मुक्त रहे हैं। ये मुक्ति एक तो इस बात में है कि सभी स्वच्छन्द कवि अपनी भाषा शैली के बल पर पहचाने जा सकते हैं चाहे उनकी कृतियों से उनके नाम निकाल दिये जायें। रसखान घनआनंद बोधा और ठाकुर तो अपनी शैली वैशिष्ट्य के कारण छिपाये नहीं छिप सकते। यह शैलीगत वैशिष्ट्य इस बात का द्योतक है कि कवि रचना पद्धति के क्षेत्र में किसी निर्दिष्ट पथ पर नहीं चले बल्कि सभी ने अपनी लीक अलग बनाई। इन कवियों की शैली अनुकृति छंद और भाषा सम्बन्धिनी जो स्वतन्त्र विशेषताएँ हैं उनका सविस्तार व्याख्यान यहाँ सम्भव नहीं फिर भी संक्षेप में कहा जा सकता है कि रसखान की सादगी और भावुकता घनआनन्द का विरोधाश्रित भाषा शिल्प ठाकुर की लोकोक्ति प्रधान तथ्यगर्भित शब्दावली बोधा की विरहोन्मत्त वाणी सभी अलग हैं। आलम का भाव और शैली विषयक संतुलन और द्विजदेव की धारा शैली भी विशिष्ट है। दूसरी जो महत्त्वपूर्ण बात लगभग सभी कवियों में समान रूप से पाई जाती है वह है रीतिकारों की अतिशय अलंकारप्रियता के प्रति उदासीनता। आलंकारिक चमत्कार ने निदर्शन का लक्ष्य लेकर कोई भी काव्य रचना में प्रवृत्त न हुआ। बोधा ठाकुर और द्विजदेव के लिए अलंकार बहुत कुछ अनपेक्षित ही था। इनकी कृतियों में सहजता और आयासहीनता का वैशिष्ट्य है। किन्हीं किन्हीं कृतियों में तो अलंकार खोजने पड़ते हैं। तीसरी बात जो लगभग समान रूप से सब में प्राप्य है वह है अन्तःप्रेरित भाषा और अभिव्यंजना। इनकी भाषा और शैली स्वतः प्रसूत है भावप्रेरित है अतः आयास रहित और निजत्व संपन्न है। चौथी विशेषता यह है कि भाषा की शक्ति को इन सभी कवियों ने समृद्ध किया है। इनमें भाषा के प्रति दृष्टि संकीर्णता न थी। संस्कृत, अरबी, फारसी के साथ

बुन्देली पजाबी राजस्थानी, भोजपुरी, अवधी आदि के देशज शब्द स्वतन्त्रतापूर्वक इन्होंने ग्रहण किये हैं। किसी भी भाषा के शलीकारो की यह विशेषता सदा से रही है। भाषागत किसी कट्टरता या अनुदारता की नीति इन्होंने कभी नहीं अपनाई। प्रयोगो द्वारा प्रचलित शब्दो मे नया अर्थ भरने का काम भी इन्होंने सफलतापूर्वक किया है। लक्षणा और व्यजना की शक्तियो को इन्होंने असाधारण रूप से सम्पन्न किया है। भाषा को लचीली बना कर उसमे प्रयोग सौन्दर्य के साथ-साथ अर्थ की सम्पदा भरने का भी इनका प्रयत्न श्लाघनीय है। मुहावरे और लोकोक्तियो से इनकी शली सजीव बनी है। छन्द के क्षेत्र में इन्होंने कोई नया माध्यम नहीं स्वीकार किया। युग के सर्व प्रिय छन्दो कवित्त सवैया म ही इन्होंने अपनी वाणी का विलास निर्दशित किया है पर छन्दगत वशिष्ट्य का विधान शास्त्रबद्ध दृष्टि द्वारा ही सम्भव है। शास्त्रमुक्त दृष्टि लेकर चलने वाले ये कवि भला ऐसी दशा मे क्याकर जाते। घनआनन्द ने अनेक अनिरिक्त छन्दो का भी प्रयोग किया है तथा भारी सख्या म पदो की रचना भी की है। बोधा म छन्दो की प्रचुरता है क्योकि वे प्रमुख रूप से प्रबन्ध रचना म लीन हुये। उर्दू के छन्द और रखते आदि भी इन कवियो ने प्रयुक्त किये हैं। अभिव्यजना या वर्णन शली के क्षेत्र म कोरी अतिशयोक्तियो से ये दूर रहे हैं। अतिशयोक्तियाँ इन्होंने की हैं पर भाव मे सपृक्त।

इस प्रकार ये कवि प्रकृत्या स्वच्छन्द थे। न तो कृष्णभक्तो की इनमे साम्प्रदायिक भक्ति थी न सूफियो सी रहस्यमयी ब्रह्म साधना और न रीतिबद्ध काव्याचार्यों सा रीति और शास्त्र का आग्रह। प्रेम की दिव्य मन्दाकिनी म निमग्नामग्न रहने वाले ये स्वच्छन्द कवि अपनी शली म भी स्वच्छन्द थे इनका हृदय जहा लौकिक प्रेम से आपूर था वहीं इनकी अभिव्यजना भी आन्तरिकता की ज्योति से कान्त थी। इन स्वच्छन्दमार्गी प्रेमोन्मत गायको के लिये भक्ति कुछ नहीं थी साम्प्रदायिकता त्याज्य थी और रीतिमार्ग व्यर्थ। लीको से हट कर चलना—स्वच्छन्दता—इनकी मूल वृत्ति थी जो और तो और वर्णन शैली म भी प्रत्यक्ष है। इन्हीं विशिष्टताओ के कारण समूचे मध्य युग म इन प्रेमी गायको की स्वच्छन्द काव्य धारा का स्थान अत्यन्त विशिष्ट है। रीतिकाल म रचना बाहुल्य और आग्रहपूर्वक रीति को पकड कर चलने के कारण जो महत्त्व रीतिबद्ध काव्य का है उससे अधिक महत्त्व रीति के आग्रह से मुक्त हो अपनी प्रेम की उमग पर थिरकने के कारण इन प्रेमोन्मत्त गायको के काव्य का है। परिणाम की दृष्टि स वाग्विलास और चमत्कार की दृष्टि से, आग्रहो म बद्ध रहने की दृष्टि म नहीं गुण की दृष्टि म भावुकता की दृष्टि से और निबन्ध शैली म काव्य रचना करने की दृष्टि से इनका स्थान रीतिकारो मे निश्चय ही श्रेष्ठतर है

# ३

# घनआनन्द जीवन वृत और कृतियाँ

आनद, आनदघन और घनआनद

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थो म घनआनद के नाम के सम्बन्ध में बडी भ्रमात्मक धारणाए प्रचलित रही हैं। बहुत समय तक हिन्दी जगत इस भ्रम म था कि आनद आनदघन और घनआनद तीनो एक ही व्यक्ति थे। बहुत समय तक आनद कवि के विषय म किसी को कुछ पता न था। नवीन शोध मे आनद कवि की एक पुस्तक कोकमजरी का पता चला है जिसके आधार पर इनका कुछ परिचय प्राप्त होता है—

> कायथकुल आनद कवि बासी कोट हिसार।
> कोक कलाइहि रुचि करन जिन यहो कियो विचार॥
> रितु बसत सवत सरस सोरह स अरु साठ।
> कोकमजरी यह करी धम कम करि पाठ॥

स० १६६० म आनद कवि विद्यमान थे। साहित्य भूषण' के रचयिता महादेव प्रसाद न आनदघन (या घनआनद) को कायस्थ कुल का तो बताया है किन्तु साथ ही यह भी कहा है कि वे दिल्ली क बादशाह मुहम्मदशाह रगीले के मुशी थे जो अत समय मे वृन्दावन गये और नादिरशाह के मथुरा आक्रमण म मारे गये। मुहम्मदशाह रँगीले का शासन काल स० १७७६ स १८०५ तक था और नादिरशाह के आक्रमण का समय स० १७९६। इस प्रकार आनद और आनदघन दोनो के जीवन काल मे सौ से अधिक वर्षों का व्यवधान पडता है। शिवसिंह सरोज' म भी शिवसिंह सेंगर ने आनद घन कवि दिल्ली वाले का समय अर्थात काव्य काल स० १७१५ दिया है। यदि इस निराधार काल को भी सच मान लिया जाय तो भी आनद और आनदघन के समयो में ४० ४५ वर्षों का अन्तर पडता है। दोनो की काव्य रचना में तो भारी अन्तर है ही। ऐसी स्थिति मे सिद्ध है कि आनद और आनदघन दो भिन्न कवि हैं।

आनदघन नाम के भी तीन कवियो की चर्चा साहित्य के इतिहास और समीक्षा ग्रथो में मिलती है—

१ जनमर्मी आनदघन

२ वृदावनवासी आनदघन

३ नद गाँव के आनदघन

मिश्रबधुओ न अपने मिश्रबन्धु विनाद' म दिल्ली वाले या वृदावनवासी आनदघन के अतिरिक्ति एक अय आनदघन का परिचय दिया है—

आनदघन

ग्रथ—आनदघन—बहत्तरी—स्तवावली

रचना काल—१७०५

विवरण यशोविजय के समसामयिक थे।

दिल्ली वाले या वृदावनवासी आनदघन तथा जनमर्मी आनदघन के एक होने की सम्भावना थी क्षितीशमोहन सेन ने एक लेख व्यक्त की है।[1] शिवसिंह सरोज मे आनदघन नाम के एक और कवि का उल्लेख हुआ है जिनका समय स० १६१७ बताया गया है। श्रीमती नानवती त्रिवदी न इन आनदघन और 'जैनमर्मी आनदघन को एक बतलाया है।

**जनमर्मी आनदघन और वृदावनवासी आनदघन**

जैनमर्मी आनदघन (महात्मा लाभानद जी) का समय विक्रम की १७ वी शती का उत्तराध ठहरता है। उनकी 'चौबीसी' का रचनाकाल स० १६७८ के पश्चात है। श्री यशोविजय ने जिन्हान इनकी प्रशस्ति लिखी है स० १६८८ मे दीक्षा ली तथा स० १७४३ उनकी मृत्यु तिथि है। इससे स्पष्ट है कि जनमर्मी आनन्दघन स० १७०० लगभग जीवित थे।

वृदावनवासी आनदघन को नागरीदास का समसामयिक कहा गया है। कृष्ण गढ के राजकवि जयलाल ने छप्पनभोग चन्द्रिका म तथा बाबू राधा कृष्णदास जी ने राधाकृष्णदास ग्रथावली म उक्त आशय क कथन किये हैं। राधाकृष्ण जी ने अपने यहाँ क एक अत्यन्त प्राचीन चित्र का उल्लेख किया है जिसमे नागरीदास जी और घनआनद जी एक साथ विराजते हैं। नागरीदास के नाम से चार महात्मा हो गये हैं। राधाकृष्णदास जी न चौथे नागरीदास जी का (जिनका काव्य काल स० १७८० से १८१९ तक माना जाता है[3]) वृन्दावनवासी आनदघन का समसामयिक माना है। इस प्रकार वृदावनवासी आनदघन का समय विक्रम की १८ वी शती का उत्तराध ठहरता है।

---

१ देखिये जनमर्मी आनदघन शीर्षक लेख (वीणा नवम्बर १९३८)

२ देखिये घनआनन्द (समाशाकृति) श्रीमती नानवती त्रिवेदी पृ० ११

३ देखिये हिन्दी साहित्य का इतिहास —रामचन्द्र शुक्ल।

जनमर्मी आनन्घन (१७वी शती उत्तराध) और वृन्दावनवासी आनदघन (१८वी शती उत्तराध) समय म प्रकार १०० वर्षों का व्यवधान है अत उन्ह एक ही व्यक्ति नही कहा जा सकता।

**नद गाव क आनदघन**

नद गाँव के जिन तीसर आनदघन का थोडा बहुत इतिवृत मिलता है व चतन्य महाप्रभु के समसामयिक थे। चतन्य महाप्रभु स० १५६३ म नद गाँव गये थ जहाँ उन्होन एक मदिर मे नन्द यशोदा बलराम और कृष्ण की मूर्तियो के दशन किय थे जिन्ह नद गाव क आनदघन जी न स्थापित किया था। इन दोनो महात्माओ की भेंट भी हुई थी। नन्द गाव क आनन्दघन के रचे चार पद मिलते हैं जो नद गाव क मदिर म भिन्न भिन्न समय म गाये जाते हैं। नद गाँव क आनदघन 'खरोट गाँव के हैं जो मथुरा क निकट है, इनके वशज अब भी नद गाव क मदिरो के अधिकारी है। इनका समय १६ वी शती का उत्तराध है अत सिद्ध है कि नद गाँव के आनदघन (१६वी शती उत्तराध)' जैनमर्मी आनन्घन (१७वी शती उत्तराध) और वृन्दावनवासी आनदघन (१८वी शती उत्तराध) भिन्न भिन्न व्यक्ति हैं।

**आनदघन या घनआनद**

हिन्दी म जिन आनदघन या घनआनद के कवित्त सवये और पद अत्यधिक प्रचलित हैं वे हैं वृन्दावनवासी घनआनद जिनका समय १८वी शती उत्तराध है। इनका नाम सभवत घनानद था परन्तु कविता म ये अपना नाम घनआनद और आनद घन इन दोनो रूपो म रखत थ।

**जीवन वृत**

कविरत्न घनआनद का प्रामाणिक एव विस्तृत जीवन वृत उपलब्ध नही। जन्म और मृत्यु की भी पूणत निश्चित तिथिया हम ज्ञात नही जीवन की प्रमुख घटनाए अथवा उसके सूक्ष्म ब्यौरे हमे नही मिलते। परिणामत अन्वेषणशील विद्वानो को भी अटकल अनुमान और किंवदन्तियो का सहारा लेते हुए यत्किंचित ऐतिहासिक आधारो पर घनआनद के जीवन वृत का भवन निर्मित करना पडा है।

घनआनद के जीवन की सबसे प्रसिद्ध घटना जिसका उल्लेख प्राय सभी विद्वानो ने किया है इस प्रकार है। घनआनद दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले के 'खास कलम (प्राईवेट सेक्रेटरी) या दरबार क मीर मुशी थे। वे आशिक मिजाज आदमी थ। मुहम्मदशाह के दरबार की सुजान नामक वेश्या पर वे जी जान से फिदा थे। राज दरबार म घनआनद क प्रति कुछ ईर्ष्यालु व्यक्ति भी थे। उन्होन उन्हें राज्य स निष्कासित कराने का षडयन्त्र रचा। एक दिन दरबार मे उन सबन रगीले बादशाह स घनआनद की गानकला की प्रशसा की। मुहम्मदशाह ने घनआनद से गाने को कहा पर घनआनद न विनम्रतापूवक गाना सुनाने मे अपनी असमथता व्यक्त की। इस पर उन षड्यन्त्रकारियो ने कहा कि मीर मुशी साहब ऐसे गाना नही सुनायेंगे। इस समय

इनकी सुजान बुला ली जाय और अगर वह कह दे तो ये अवश्य सुना देंगे। सुजान बुलाई गई और इन्होंने सचमुच सुजान की ओर मुँह करके गाना गाया। इनके गाने से सभी मन्त्र मुग्ध हो गये पर गान के प्रभाव से मुक्त होने पर बादशाह नाराज हुआ क्योंकि एक तो घनआनद ने वेश्या की बात की बादशाह की बात से ज्यादा कदर की, दूसरे बादशाह की ओर पीठ कर और उस वेश्या की ओर मुँह करके इन्होंने गाना गाया। इस बेअदबी को वह बरदाश्त न कर सका और उसने इन्हें अपने राज्य से निकल जाने का हुक्म दिया। कहते हैं कि राज्य छोड़ते समय ये सुजान के पास गये और उससे साथ चलने को कहा परन्तु उसने अपने जातीय गुण की रक्षा की और जाने से इन्कार कर दिया। उधर मुहम्मदशाह इनकी बेअदबी माफ न कर सका इधर सुजान ने भी इन्हें धोखा दिया। ये बिचारे दोनों दीनों से वंचित होकर रह गये परन्तु सुजान का प्रेम ये अपने हृदय से निकाल न सके। ये खिन्न और विरक्त भाव से राज्य छोड़ कर चल दिये और जाकर वृन्दावन पहुँचे जहाँ इन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ले ली। श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना ने लिखा है—

जीवन की विरक्ति उनके लिए प्रेम पूर्ण राधाकृष्ण के चरणों की अनुरक्ति बन गई। मरते दम तक सुजान को वे नहीं भूल पाये। राधाकृष्ण को उन्होंने सुजान की स्मृति बना दिया और निरन्तर सुजान के प्रेम में आँसुओं के स्वरों में गीत कवित्त सवैये लिखते रहे। प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र लिखते हैं कि घनआनद 'भगवद् भक्ति में सुजान शब्द का व्यवहार श्रीकृष्ण और श्री राधिका के लिए अपनी रचना में बराबर करते रहे। सुजान के निष्ठुर व्यवहार से इन्हें जो मर्मांतक पीड़ा पहुंची उसका प्रमाण स्वयं इनका काव्य है। निराशापूर्ण प्रेम के उस गहरे आघात को इन्होंने निरन्तर व्यक्त किया है वैष्णव भक्ति भावना में लपेट कर ही सही। सुजान के प्रति इनका मोह और अनुराग कभी छीजा नहीं। कहते हैं कि नादिरशाह के आक्रमण में उसके सिपाही धन की खोज में मथुरा पहुंचे और उनके हाथों घनआनद की मृत्यु हुई।

इनकी मृत्यु की कथा इस प्रकार चलती है। जब नादिरशाह के सिपाही मथुरा पहुंचे तो कुछ लोगों ने उनसे कहा कि बादशाह मुहम्मदशाह का मीर मुंशी वृन्दावन में रहता है उसके पास बहुत धन होगा। पता लगाते-लगाते सिपाही इनके पास आ पहुँचे और जोर जोर से चिल्लाने लगे— जर जर जर- अर्थात् हमें धन चाहिए धन चाहिए धन चाहिए। घनआनद ने रज रज रज कहते हुए वृन्दावन भूमि की तीन मुट्ठी धूल उन पर फेंक दी। इससे बड़ा धन उनके पास था भी क्या। इस पर क्रुद्ध हो सिपाहियों ने इनका हाथ काट डाला। खून की धारा बह निकली। कहा जाता है कि मरते समय इन्होंने अपने रक्त से यह कवित्त लिखा था—

बहुत दिनान को अवधि आस पास परे
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को।
कहि-कहि आवन छबीले मन भावन को,
गहि-गहि राखति ही दै-दै सनमान को॥

झूठी बतियानि का प यानि तें उदास ह्व क,
अब ना घिरत घनआन द निदान को।
अधर लगे हैं आनि करि क पयान प्रान,
चाहत चलन ये संदेसों ल सुजान को ॥

इस रचना म इनकी अन य भक्ति और निष्ठा अंकित है। यदि यही इनकी अंतिम रचना हो तो कहना पड़ेगा कि इ होने अपने जीवन प्रणय भावना और ईश्वर निष्ठा सब कुछ का त्याग अपनी जीवन सवस्व 'सुजान का नाम लेकर ही किया। साहित्य भूपण' के रचयिता श्री महादेव प्रसाद ने सवप्रथम घनआन द जी का सक्षिप्त जीवन वृत्त प्रस्तुत किया था। इ ही के द्वारा प्रदत्त समग्री के आधार पर डा० ग्रियसन ने दि माडन वर्नाक्यूलर लिटरचर आफ हि दुस्तान' म घनआन द का जीवन-वृत्त दिया है तथा उसी सामग्री को अ याय हि दी विद्वानो न भी प्रस्तुत किया है। श्री महादेव प्रसाद ने यह भी लिखा है कि घनआन द कायस्थ कुल के थे दिल्ली के मुगल बादशाह मुहम्मदशाह क मीर मु शी (प्राइवेट सेक्रेटरी या खास कलम) थ दिल्ली क रहने वाले थे और नादिरशाह क मथुरा आक्रमण पर मार गये। मुहम्मदशाह का राज्यकल स० १७७६ स १८०५ तक था और नादिरशाह का आक्रमण स० १७९६ मे हुआ। इससे घनआन द का समय भी निर्धारित हो जाता है—विक्रम की १८वी शती का उत्तराध।

ब्रजमाधुरीसार म श्री वियोगीहरि न घनआन द का ज म स० १७४६ विक्रमी क आस पास माना है पर इसके लिए कोई प्रमाण अथवा आधार उ होने नही दिये। उ होने घनआन द का कविता काल स० १७७७ वि० माना है तथा उपयुक्त जीवन कथा को एक ही छ द म अंकित किया है।[1]

लाला भगवानदीन न घनआन द क जीवन स सम्ब धित खोजबीन को लक्ष्मी पत्रिका म एक निब ध म प्रकाशित कराया। उनके निष्कर्षों का साराश इस प्रकार है—घनआन द का ज म सवत् १७१५ क आस-पास हुआ और मृत्यु स० १७९६ म हुई। ये दिल्ली निवासी थे और जाति क भटनागर कायस्थ। फारसी क य अच्छे ज्ञाता थे और जनश्रुति क अनुसार अबुलफजल के शिष्य। ये शाही दरबार मे साध

---

१ घनआन द सुजान जान को रूप दिवानो।
वाही क रग रग्यो प्रेम पद्धति अरुयानो॥
बादशाह को हुकुम पाय नहिं गायो इकपद।
पै सुजान क कहे चाव सो गाय धुरपद॥
बादशाह न कोपि राज्य त याहि निकारयो।
व दावन म आय वेप वष्णव को धारयो॥
प्यारे मीत सुजान सो नेह लगायो।
वगन बान तें बिंध्यो विरह रस म त्र जगायो॥ (कवि कीतन वियोगी हरि)

रण कमचारी से बढ़ते-बढ़ते मुहम्मदशाह बादशाह के खास कलम (प्राइवेट सेक्रेटरी) हो गये। जनश्रुति के अनुसार घनआनन्द को रासलीला का बचपन स ही बड़ा शौक था। दिल्ली मे रहते हुए ये बहुधा अपने खच स महीना रासलीला मण्डलियाँ बुलवाकर रासलीला कराया करत थे। कभी कभी ये स्वय भी रासलीला मे भाग लिया करते थे। परिणामत भाषा म लिखित रास सम्बन्धी पद साहित्य और सगीत का इन्हे अच्छा परिचय प्राप्त हुआ। इन्होंने स्वय रास के पद लिखे जो अभी तक रासधारियो द्वारा गाय जात हैं। इन रासलीलाओ से अतिशय प्रभावित हो घनआनन्द राजदरबार और गहस्थ जीवन छोड वृन्दावन चले आये। यहाँ उन्हाने किसी व्यास वशी साधु से दीक्षा ली और भगवदोपासना मे लीन रहने लग। उपासना भाव मे लीन ये वशीबट क समीप ही कहीं पडे रहा करते थे। कृष्णलीलाओ के चिन्तन और ध्यान म लिप्त ये ब्रजभूमि मे कई कई दिन तक ध्यानस्थ ही रहते थे। इन्हे नित्य नैमित्तिक कर्मों की सुधि न रहती थी। यही पर घनआनन्द जी ने सुजान सागर नामक ग्रन्थ लिखा। दीन जी की उपलब्धिया का आधार कुछ तो जनश्रुति है और कुछ का पता नही।

एक जनश्रुति के अनुसार देव और घनआनन्द का विवाद हुआ बताया जाता है। किसकी कविता बढ़िया है ?' यह विवाद का विषय था। इस पर घनआनन्द का उत्तर यह था कि देव कवि दूसरो पर बीती कहते हैं पर मैं आप बीती कहता हूँ।

कहा गया है कि सरस काव्य रचना के साथ-साथ ये गान विद्या मे भी बड निपुण थे तथा नागरीदास क समकालीन थ। दानो का वृन्दावन म सत्सग हुआ करता था। किशनगढ के महाराज सावन्तसिंह (भक्तवर नागरीदासजी) से इनकी बड़ी मित्रता थी। उनक साथ य जयपुर आदि स्थानो म गये तथा इन्ही की प्रेरणा से नागरीदास जी न मनोरथ मजरी' लिखी। कीतन मे इनकी विशेष रुचि थी और इनकी कीतन मण्डली म हरिदास, बद्रीदास मुरलीदास आदि महात्मा सम्मिलित होते थे। नागरीदास जी इनका बडा आदर करते थे। बाबू राधाकृष्णदास ने लिखा है कि उनके पास एक अत्यन्त प्राचीन चित्र है जिसम नागरीदास जी और घनआनन्द एक-साथ बठे हुये हैं।

एक अन्य किवदन्ता का उल्लेख रीवा नरेश महाराज रघुराजसिंह के 'भक्त माल म मिलता है। उसक सम्बन्ध म उन्हाने लिख भी दिया है कि व्रज म यह कथा अधिक प्रचलित है जिसस सुनने की हुलास हा जाकर विमल ब्रजभूमि म सुन ले। यह किवदन्ती घनआनन्द की मृत्यु स सम्बन्धित है। एक बार दिल्ली का कोई शाहजादा मथुरा पहुचा। मथुरा वालो न उसका उपहास करन क लिए एक पनहियो (जूतियो) की माला उसके गले म पहना दी। उस शाहजाद न क्रोध म भर कर दिल्ली से अपनी सेना बुलवाई और अपन अपमान का बदला लेने के लिए उसने सैनिको से कहा कि इम मथुरा में जो भी मिलें सबको मारो, किसी को मत छोडो। इस पर म्लेच्छ सनिको ने एक एक नगर वासी का मारना शुरू किया। इसी समय की बात है—

पत गाद यशावट पाहीं। बठ रह भावना माहीं ॥
राधा माधव व मधि रासा। सखी रूप छबि पीवन आशा ॥
हाथे लीन्हे रहे मुखारी। तेहि क्षण में मवाना पसारी ॥
सोइ मुखारी कर मे लीन्हें। दिन रजनी बिताय सब दीन्हें ॥

इस प्रकार मुख शुद्धि क लिए दातौन लिए हुए बिना मुख शुद्धि किय हुए घनआनन्द जी न दिन रात बिता दी। तब श्रीकृष्ण न इन्ह अपन हाथ स पान का बीडा दिया जिस उन्होंने मुह म रख लिया। जब पान का लाल रग इनक अधरा पर खिला तब घनआनन्द का ध्यान भग हुआ। इसी समय आकर एक म्लेच्छ ने इनक सिर पर तलवार की चाट की परन्तु इनका सिर कटा नहीं। उसन फिर प्रहार किया किन्तु इनका सिर फिर भी अछिन्न था। तब कृष्णस्नेही घनआनन्द न कृष्ण को पुकार कर कहा कि तुम्हारी यह कौन सी रीति है। मैं शरीर छोडना चाहता हूँ फिर भी तुम मेरा उद्धार नही करते—

मोको भूरि मार है बेहू। यत्न कियो छूट नहिं केहू ॥
कौन हेतु राखत ससारा। क्यों न बोलाव नन्दकुमारा ॥
कह्यो यमन कह पुनि गोहराई। अबकी मारहु सिर कटि जाई ॥
हन्यो यवन अस कटिगो शीशा। सब यमनन बिमान नभ दीशा ॥
घनआनन्द सन कढयो न लोहू। सो चरित्र लखि परयो न कोहू ॥

उक्त घटना के सम्बन्ध म श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना का यह मत है कि यह घटना नादिरशाह क आक्रमण क समय न घट कर कट्टर मुसलमान शासक औरगजब के समय म घटी होगी जब हिन्दुओ पर हिन्दू मन्दिरो पर कहर ढाया जा रहा था और प्रजा अत्यत असन्तुष्ट थी। हिन्दुओ और उसके देवी दवताओ का अपमान जब डक की चोट पर किया जाता था। उनका कहना है कि हो सकता है यह घटना औरगजब के ही साथ घटी हो अथवा उसक किसी हाकिम मुहम्मद कुली खाँ या अब्दुलनबी खाँ के साथ घटी हो और इसका समय व सन १६६० (स० १७१५) ठहरात हैं किन्तु इस घटना क समय और व्यक्ति क निश्चय मे व बहुत कुछ अनुमान के सहारे बढे हैं तथा उनके मतानुसार घनआनन्द का जीवन काल स० १६२० स १७१७ (सन १५७ १६६०) तक ठहरता है। इस काल का प्रामाणिक मान लन पर उनक मतानुसार घनआनन्द का अबुलफजल का शिष्य होना भी सम्भव है। परन्तु हम लोग प्रस्तुत प्रसग के आरम्भ म तथा आनन्द आनन्दघन और घनआनन्द शीर्षक क अन्तगत देख चुके हैं कि घनआनन्द का समय किस प्रकार विक्रम की १८ वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध ठहरता है ऐसी स्थिति म बहुगुना जी की समय सम्बन्धी मान्यता कसे स्वीकार की जा सकती है?

घनआनन्द जी की मृत्यु तिथि के सम्बन्ध म विद्वद्वर प० विश्वनाथप्रसाद जी मिश्र के शोधपूर्ण तर्क एव प्रमाणपूर्ण निष्कर्ष मान्य हैं उनकी सम्मति म घनआनन्द जी

की मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण मे न होकर अहमदशाह अब्दाली के मथुरा पर हुए दूसर आक्रमण मे स० १८१७ (मन १७६१) मे हुई।[1] उक्त मत की पुष्टि मे उनके तर्क इस प्रकार हैं—नादिरशाही मे घनआनन्द की मृत्यु नही हुई क्योकि नादिरशाह का आक्रमण दिल्ली पर हुआ था, मथुरा पर नही। हाँ अहमदशाह अब्दाली के मथुरा पर आक्रमण की बात अवश्य इतिहास सम्मत है। नवीन शोध भी इसी बात की पुष्टि करता है कि घनआनन्द जी का निधन मथुरा म ही हुआ और इनकी मृत्यु नादिरशाह के आक्रमण मे नही वरन अहमदशाह के आक्रमण म हुई। अहमदशाह अब्दाली का मथुरा पर पहला आक्रमण स० १८१३ (सन् १७५७) और दूसरा आक्रमण स० १८१७ (सन १७६१) म हुआ। नादिरशाह का आक्रमण मथुरा पर नही वरन दिल्ली पर स० १७९६ म होना एक ऐतिहासिक सत्य है। उधर अन्तसाक्ष्य के आधार पर पता चलता है कि स० १७९८ मे घनआनन्द जीवित थे और ग्रन्थ रचना कर रहे थे। यह बात उनकी एक कृति बतलाती है—

> गोपमास श्री कृस्नपच्छ सुचि। सबत्सर अठानव अति रुचि॥
> मुरली सुर सुख कहत न आवै। सो जान जो सुनि गुनि पाव गाव॥
>
> (मुरलिका मोद)

इससे स्पष्ट है कि नादिरशाह के आक्रमण म घनआनन्द की मृत्यु नही हुई। स० १८१३ म घनआनन्द जी का कृष्णगढ के महाराज सवतसिंह नागरीदास के साथ कृष्णगढ म रहन और जयपुर जाने का उल्लेख 'राधाकृष्णदास ग्रन्थावली' म मिलता है। चाचा हितवृन्दावनदास 'हरिकलावलि' मे दोनो आक्रमणो की चर्चा है जो क्रमश स० १८१३ और १८१७ म हुये। हरिकलावेलि का रचना काल स० १८१७ है—

> ठारह सौ सत्रहों वषगत जानिय।
> साढ वदी हरि बासर वेल बखानिय॥

इसकी कृति म दानो आक्रमणो का उल्लेख है। बताया गया है कि इन आक्रमणो म अनेक उच्च जाति के सन्त पुरुषो का मुगलो ने वध कर डाला। स० १८१३ मे चाचा हितवृन्दावनदास जी गगा के किनारे बसे हुए शहर फरुखाबाद मे थे परन्तु स० १८१७ मे उन्होने घनआनन्द का शव अपनी आँखो देखा था और उस कारुणिक दृश्य का वणन उन्होंने इस प्रकार किया है—

> बिरह सौं तायौ तन निबाह्यौ वन साँचौ पन,
> धन्य आनन्दघन मुख गायौ सोई करी है।
> एहो ब्रजराज कुवर धन्य धन्य तुमहूँ कौ,
> कहा नीकौ प्रभु यह जग मे बिस्तरी है॥

---

१ घनआनद ग्रथावली—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (वाङ्मुख प०५७ ६१)

*गाढ़ी व्रज उपासी जिन देह अन्त पूरी पारी,*
*रज की अभिलाषा सो तहाँ ही देह धरी है।*
*वन्दावन हित रूप धुमहू हरि उडाई धूरि*
*ऐ प साँची निष्ठा जनही की लाल परी है॥*

घनआनन्द की यही जीवनाभिलाषा भी थी कि उनका शरीर वन्दावन की पावन धूल मे मिल जाय जो पूरी भी हुई। 'हरि तो धूल ही उडाते रहे पर भक्त की निष्ठा ही सत्य निकली कि शरीर व्रज रज मे ही मिला खड-खड कण-कण होकर।'[1] राधाकृष्ण ग्रन्थावली म भी एक स्थान पर उक्त वणन की पुष्टि मिलती है—'सुना जाता है कि मथुरा म कत्लेआम करने वालो से उन्होने कहा कि मेरे तलवार के घाव बहुत थोडे थोडे बहुत देर तक दो। इनको ज्यो ज्यो तलवार के घाव लगते गये त्यो-त्यो यह व्रज रज म लोटते रहे ऐसे देह त्याग दिया।'[2]

सम्प्रदाय

घनआनन्द के सम्बन्ध मे यह बात जनश्रुति म चली आ रही थी कि व 'निम्बाक सम्प्रदाय म दीक्षित थे। इधर उनके द्वारा लिखे गये ग्रन्थो की परमहस वशावली के उपलब्ध हो जाने से उक्त धारणा और भी पुष्ट हो गई। उसम उन्होंने अपनी गुरु परम्परा का भी वणन किया है —

| | | |
|---|---|---|
| १ नारायण | १४ कृपाचाय | २७ गोपाल भट्ट |
| २ सनकादि | १५ श्री देवाचाय | २८ बलभद्र भट्ट |
| ३ निम्बादित्य | १६ सुदर भट्ट | २९ गोपीनाथ भट्ट |
| ४ श्री निवासाचाय | १७ पद्मनाभ भट्ट | ३० केशव भट्ट |
| ५ विश्वाचाय | १८ उपेन्द्र भट्ट | ३१ मगल भट्ट (गागल भट्ट ?) |
| ६ पुरुषोत्तमाचाय | १९ रामचन्द्र भट्ट | ३२ श्री केशव (काश्मीरी) |
| ७ विलासाचाय | २० वामन भट्ट | ३३ श्री भट्ट |
| ८ स्वरूपाचाय | २१ कृष्ण भट्ट | ३४ हरि व्यास |
| ९ माधवाचाय | २२ पद्माकर भट्ट | ३५ परमानिधि (परशुराम ?) |
| १० बलभद्राचाय | २३ श्रवण भट्ट | ३६ हरिवश |
| ११ पद्माचाय | २४ भूरि भट्ट | ३७ नारायणदेव |
| १२ श्यामाचाय | २५ माधव भट्ट | ३८ वन्दावनदेव (देव) |
| १३ गोपालाचाय | २६ श्याम भट्ट | |

घनआनन्द उक्त गुरु शिष्य परम्परा म ३७वें गुरु श्रीनारायणदेव के शिष्य थे। उनकी प्रशसा म इन्होंने लिखा है कि वे विपुल विद्या की राशि थे तथा प्रेम क स्वाद से पूण परिचित। सदा कृष्ण गुणगान मे लीन रहते थे अपने मत का मडन और

---

१ विश्वनाथप्रसाद मिश्र।
२ राधाकृष्णदास ग्रन्थावली (पृ० १७३)

विरुद्ध वचन प्रस्तुत करने वालो का खडन किया करते थे। काव्य रचना उनकी उत्कृष्ट थी। दीनो को वे शरण देते थ तथा उनके दु ख का हरण करते थे। 'हरि-चरित मनि नामक ग्रथ उन्होने लिखा (?)। उनका धाम हरिविनाद (कहलाता) था, जो पृथ्वीतल की मणिभमि व दावन मे था। बीस कोस तक इनकी महिमा परि-व्याप्त थी लोग इन्हे सिद्धभक्त करके जानते थे। घनआनन्द सदा अपने ऐसे गुरु के कृपा हस्त की छाया अपने सिर पर चाहते थे। उन्ही की भक्ति से भर कर इन्होंने परमहस वशावली लिखी।[1]

घनआनद की परमहस वशावली' से ही यह भी पता चलता है कि निगमागम ज्ञान मे प्रवीण किसी काशीवासी शेष से इन्ह साम्प्रदायिक परम्पराओ का ज्ञान हुआ। उन्हीं से उन्होंने वदिक एव पौराणिक आख्यान सुने;तथा पुरातन नीति की भी शिक्षा प्राप्त की।[2] य शेष कौन थे ? मडन कवि विरचित 'जयशाह-सुजस प्रकाश' की भूमिका मे इसके सम्पादक श्री ब्रजवल्लभशरण न लिखा है कि वृन्दावन देवाचाय (जो घनआनद द्वारा प्रस्तुत की गई गुरु शिष्य परम्परा म ३८ वें गुरु थे) के शिष्य और प्रकाण्ड विद्वान जयराम जी शेष ने अपने गुरु (वन्दावनदेव) के अनन्तर श्री निम्बार्कीय मठ मन्दिरो का प्रबन्ध सँभाला। श्री वृन्दावनदेव के अनन्तर स० १८००—१८१४ तक श्री गोविन्द देवाचाय जी तथा स० १८१४—१८४१ तक श्री गोविन्द शरण देवाचाय जी सम्प्रदाय की गद्दी पर वठे। श्री गोविन्द देवाचाय के समय (स० १८००–१८१४) म मठ मन्दिरो का प्रबन्ध जयराम शेष और ब्रजानन्द जी किया

---

१ श्री नारायण देव कौं तिनकौं कृपा प्रसाद।
अति उदार विधा विपुल पूरन प्रेम सवाद॥
सदा कृस्न गुना कथन रत मनमडन जय रूप।
विमुखनि खडन बचन-वर रचना तु ड अनप॥
बिधानिधि वहुविधि निपुन कृपा अवधि रसकन्द।
बचन रचन हरि चरित मन ससि तें अमल अमद॥
जगवोहित मोहित प्रकट हरि विनोद निज धाम।
अवनी मनि श्रीयुत सदा वृन्दावन अभिराम॥
विस बीस महिमा तिन्हैं ताहि कोस हैं बीस।
सदा बसौ नीक लसौ कृपा ईस मा सीस॥
परमहस वशावली रची सची इहि भाय।
कठ धारिहै गुरुमुखी सुखदाई समुदाय॥ (परमहस वशावली)

२ कासी वासी सघगन निगमागमनि प्रवीन।
निंबान्वय अनुगम सब परम पुनीत कुलीन॥
तिन करि यह निहचय करी परमपरा की रीति।
श्रुति औ सुमति पुरान की कथापुरातन नीति॥

करते थे। घनआनन्द जी का निधन सं०१८१७ में हुआ अतएव श्री गोविन्ददेव के समय मे उनका जीवित होना सिद्ध है। उनका उक्त शेष से परम्परा की रीति जानना या सीखना असम्भव नहीं। श्री गोविन्द देव के समय मे वे जीवित थे जो उनके गुरुदेव श्री नारायण देव के शिष्य थे। उनका स्मरण भी उन्होंने श्रद्धापूर्वक किया है—

भजि भजि भजि भजि श्रीहरि व्यास।
जो चाहौ हरि पद की आस॥
हंस रूप नारायण स्वामी। सनकादिक नारद निहकामी॥

श्री नारायणदेव आप हरि। उचरण नाम पाप भाज जरि॥
श्री वृन्दावनदेव सनातन। चातक रसिकन को आनन्दघन॥
जो यह भोजनादि धुन गाव। श्री गोविन्ददेव पद पाव॥[1]

इस पद की रचना श्री गोविन्दशरण देव के समय में नहीं हुई नहीं तो उनका नाम इसमे अवश्य आता। जिन व्रजानन्द जी का नामोल्लेख ऊपर किया गया है कहीं वे ही तो घनआनद के कवित्तो के प्रसिद्ध संग्रहकर्ता व्रजनाथ नहीं हैं? आचार्य प० विश्वनाथ प्रसाद जी मिश्र ने इस आशय का अनुमान व्यक्त करते हुए एक अन्य व्यक्ति व्रजनाथ की टीका का भी पता लगाया है जो उदयपुर के प्रसिद्ध राजकाय कर्ता थे घनआनद के समसामयिक थे और निम्बार्क सम्प्रदाय की गद्दी के सम्बन्ध में हुए मतभेद में दौत्य कर रहे थे।'

'निम्बार्क सम्प्रदाय प्रवर्तक श्री हंस भगवान माने जाते हैं। इसी से हम सम्प्रदाय के आचार्य परम हंस वंश के कहे जाते हैं।'[2]

निम्बार्क सम्प्रदाय का दूसरा नाम 'सनकादि सम्प्रदाय' है। इस सम्प्रदाय में द्वैताद्वैत दर्शन स्वीकृत किया गया है तथा सखी भाव से भक्तो की भावना काम करती पाई जाती है। इस सम्प्रदाय के भक्त जब प्रगाढ़ भक्ति की एक अवस्था विशेष तक पहुंच जाते थे तो उनका साम्प्रदायिक नामकरण कर दिया जाता था। सम्प्रदाय के अपने अन्तरंग मंडल में वे इन्हीं (स्त्री नामों) से सम्बोधित किये जाते थे। घनआनन्द जी की गुरु परम्परा में उनके गुरु श्री नरायणदेव तथा कुछ अन्य आचार्यों के सखी नाम इस प्रकार मिलते हैं—

| | |
|---|---|
| श्री हरिव्यासदेव | हरिप्रिया सखी |
| श्री परसुरामदेव | परम सहेली |
| श्री हरिवंशदेव | हित अलबेली |
| श्री नारायणदेव | नित्यन वेली |
| श्री वृन्दावनदेव | मनमंजरी |

१ भोजनादि धुन में घनआनन्द के नाम से प्राप्त एक पद।
२ घनआनन्द ग्रन्थावली—विश्वनाथप्रसाद मिश्र, देखिये वाङ्मुख पृ० ७७

इस सम्प्रदाय म दीक्षित होकर घनआनन्द जी भी साधना की ऊँची भूमिका पर पहुँच गये थे। "प्रेम-साधना का अत्यधिक पथ पार कर वे बडे-बडे साधकों सिद्धो का पीछे छोड कर 'सूक्ष्मों' की कोटि म पहुँच गये थे अत सम्प्रदाय में उनका सखी भाव का नामकरण हो गया था।"[1] घनआनन्द जी का साम्प्रदायिक अथवा सखी नाम 'बहुगुनी था। बहुत दिना तक उनके इस नाम का लोगो को पता न था। इधर वृषभानुपुर सुषमा वर्णन' तथा 'प्रियाप्रसाद नामक पुस्तका के उपलब्ध होने पर उनक सखी नाम का भी पता चल गया है—

नीको नावँ बहुगुनी मेरो। बरसाने हो सुदर खेरा॥
राधा नावँ बहुगुनी राख्यौ। सोइ अरथ हिये अभिलाख्यौ॥
रीझनि बिबस होत जब जानौ। तब बहुगुनी कला उर आनौ॥
ताही सुरहि साध कछु बोलौं। प्रेम लपेटो गासनि खोलौं॥
बुरी बात हू उघरि पर जब। सो सुख कह्यौ न परत कछु तब॥
(वृषभानुपुर सुषमा वणन)

राधा धरयौ बहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाए जाऊँ॥
राधा सब ठौं सब समय रहति बहुगुनी सग।
तान रमन गुन-गान की ल बरसावति रग॥
राधा अचल सुहाग के ललित रगीले गीत।
रागनि भीजी बहुगुनी रिझवति राधा मीत॥ (प्रिया प्रसाद)

**घनआनन्द की कृतियाँ**

वैसे तो घनआनन्द की सरस कविताओ के प्रथम सकलनकर्त्ता व्रजनाथ कहे जाते हैं जिन्होने अनेकानेक छन्दो म घनआनन्द कवि की प्रशस्ति लिखी ह।[2] किन्तु इनकी सरस रचनाओ का सर्वप्रथम सग्रह भारतेन्दु बाबू हरिश्चद्र न सुजान शतक नाम से किया था जिसम सवया कवित्त छप्पय और दोह मिला कर १०० स अधिक छद हैं।[3] घनआनन्द की कृतियो के सम्बन्ध म सवप्रथम विस्तृत सूचना मिश्रबन्धुओ ने दी है। उनके अनुसार इन्होंने सुजान सागर कोकमान घनआनन्द कवित्त रसकलि बल्ली और कृपाकाड निबन्ध नामक ग्रन्थ बनाये जो खोज म मिले हैं। सरदार कवि न अपने सग्रह म इनके प्राय डेढ सौ छन्द लिखे हैं और इनके ४२५ छन्दो का एक स्फुट सग्रह और हमन देखा है। इनके अतिरिक्त हमको इनका ५४२ बडे पृष्ठो का एक भारी ग्रन्थ स० १८८२ का लिखा हुआ दरबार छतरपुर क पुस्तकालय म देखन को मिला जिसम १८११ विविध छन्दो तथा १०४४ पदो द्वारा निम्नलिखित विषय वर्णित

---

१ घनआनन्द ग्रन्थावली—विश्वनाथप्रसाद मिश्र देखिये वाङ मुख पृ० ७७
२ नही महाव्रज भाषा प्रवीन और प्रेम सदा अति ऊँची चाहै आदिक छन्द देखिये प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित घनआनन्द कवित्त क आरम्भ म दिये छन्द।
३ प० रामनरेश त्रिपाठी कविता कौमुदी (स० १९९०) पृ० ४०१,

हैं—प्रियाप्रसाद ब्रज व्योहार वियोग बेलि, कृपाक‍न्द निबध गिरिगाथा भावना प्रकाश गोकुल विनोद, ब्रजप्रसाद, धाम चमत्कार कृष्ण कौमुदी नाम माधुरी, वृन्दावन मुद्रा मुरलिकामोद प्रेम पत्रिका ब्रज वणन, रग बसन्त, अनुभव चद्रिका रग बधाई परमहस वशावली और पद। इनमे पदो की रचना साधारण है और उनमे भक्ति तथा ब्रजलीलाओ का वणन किया गया है। दूसरे वणन विविध छन्दो म किये गये हैं जिनमे कवित्त तथा सवयाओ की अधिकता है। इनमे वर्णित विषयो का ज्ञान उनके नामो ही से प्रकट होता है।[1] प० रामनरेश त्रिपाठी ने इनकी इन कृतियो का उल्लेख किया है—सुजानसागर घनआनन्द कवित्त रसकेलि बल्ली कृपाकाड निबध, कोकसार और विरह लीला।[2] बाद के इतिहासकारो और समीक्षकों ने प्राय इसी सूचना के आधार पर घनआनन्द की इन्ही कृतियो का नामोल्लेख किया है।[3] आचाय रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास म दी हुई सूचना मिश्रबन्धु विनोद के आधार पर है।[4] मिश्रबन्धुओ द्वारा प्रदत्त सूचना सभा की खोज, रिपोर्टों एव अन्यान्य सूत्रो से उपलब्ध सूचनाओ के आधार पर शोधपूवक नाना व्यक्तिगत एव सस्थागत पाण्डुलिपियो की उपलब्धि कर घनआनन्द की समस्त कृतियो की उपलब्धि और प्रकाश का अक्षय श्रेय आचाय प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र को है जिन्होंने स० २००६ म घनआनन्द ग्रथावली का प्रकाशन किया। इन स्रोतो की चर्चा उक्त ग्रथ म सविस्तार मिलेगी और ग्रथो की प्रामाणिकता के सम्बन्ध म परिपूण विचार भी।

अनेक वर्षों के श्रमपूण अनुसधान के पश्चात जिन ग्रन्थो को प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने प्रामाणिक मान कर 'घनआनन्द ग्रन्थावली' के रूप म प्रकाशित किया है उनकी नामावली इस प्रकार है —

| | | |
|---|---|---|
| १ सुजान हित | ९ ब्रजविलास | १७ गिरि पूजन |
| २ कृपाकन्द | १० सरस बसत | १८ विचार सार |
| ३ वियोगबेलि | ११ अनुभव चन्द्रिका | १९ दान घटा |
| ४ इश्कलता | १२ रग बधाई | २० भावना प्रकाश |
| ५ यमुना यश | १३ प्रेम पद्धति | २१ कृष्ण कौमुदी |
| ६ प्रीति पावस | १४ वृषभानुपुर सुषमा वणन | २२ धाम चमत्कार |
| ७ प्रेम पत्रिका | १५ गोकुल गीत | २३ प्रियाप्रसाद |
| ८ प्रेम सरोवर | १६ नाम माधुरी | २४ वृन्दावन मुद्रा |

१ मिश्रबन्धु विनोद (स० १९७०) पृ० ६२३ २४
२ कविता कौमुदी (स० १९९०) पृ० ४०१
३ जसे (i) हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास हरिऔध (स० १९९७) पृ०४२८
(ii) हिन्दी साहित्य—हजारी प्रसाद द्विवेदी (१९५२ ई०) पृ० २०९
(iii) हिन्दी मूल और शाखा—श्यामबिहारी बरागी (१९५५ ई०) पृ० २२३
(iv) हिन्दी साहित्य का उदभव और विकास (द्वितीय खण्ड)—भागीरथ मिश्र (१९५६ ई०), पृ० १०९
४ हिन्दी साहित्य का इतिहास—शुक्ल जी (स० २०१४), पृ० ३१०

२५ ब्रजस्वरूप
२६ गोकुल चरित्र
२७ प्रेम पहेली
२८ रसनायश
२९ गोकुल विनोद
३० ब्रजप्रसाद
३१ मुरलिकामाद
३२ मनोरथमजरी
३३ ब्रजव्यवहार
३४ गिरिगाथा
३५ पदावली
३६ प्रकीणक (स्फुट)
३७ छन्दाष्टक
३८ त्रिभगी
३९ परमहम वशावली

उन्होने लिखा है कि घनआनन्द जी की कुल ४१ कृतिया अद्यविधि हिन्दी म ज्ञात हो सकी हैं। शेष २ जो बच रहती हैं व हैं कवित्त सग्रह और 'ब्रज वणन'। 'कवित्त सग्रह' तो घनआनन्द कवित्त ही जान पडता है जिसे व पृथक से प्रकाशित करा चुके हैं। 'ब्रज वणन' प्राप्त नही है। उनका अनुमान है कि 'ब्रज वणन' उनका 'ब्रजस्वरूप' नामक कृति का ही दूसरा नाम है। यदि यह अनुमान सत्य हो तो घनआनन्द जी की सभी कृतियाँ उपलब्ध समझना चाहिए।[1]

**घनआनन्द के काव्य की प्रेरक शक्ति सुजान**

घनआनन्द के जीवन-वृत्त के विविध पक्षो की चर्चा करते हुए देखा जा चुका है कि मुजान कौन है क्या है। वह दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार की वेश्या या नतकी थी और घनआनन्द जी उसी पर मुग्ध थे। घनआनन्द जी के काव्य को देखने से भी इस बात मे कोई सन्देह नही रह जाता कि सुजान नाम की एक स्त्री पर वे बेतरह आसक्त थे—

(क) त्यौं ही सुजान तिय घनआनन्द मो जिय बौरई रीति रिझाव।

(ख) जान ! प्यारी हौं तौ अपराधनि सों पूरन हौं
कहा कहौं ऐसो गति आवत गरौ रुक्यौ।

(ग) बूंदे न परति मेरे जान जान प्यारी ! तेरे
विरही कों हेरि मेघ आँसुनि झरयौ कर।

घनआनन्द की आसक्ति की लोक विश्रुत कथा पहले ही दी जा चुकी है।

हिन्दी के कुछ विद्वानों ने वश्या सुजान के प्रति घनआनन्द के अनुराग की कथा को कोरी कपोल कल्पना माना है। हम बता आये हैं कि लाला भगवानदीन जी ने घनआनन्द व कृष्ण के और वृन्दावन के प्रति अपार अनुराग के बीज उनके रासलीला प्रेम मे देखा है। श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना भी मुजान नामक वेश्या मे घनआनन्द का प्रेम होना नही मानते। वे लिखते हैं कि 'इतना आधिक्य (सुजान आदि) शब्दों का है कि साधारण पाठक सोचने लगता है कि सुजान सम्भवत कोई प्रेमिका रही होगी जिससे प्रेम म ये नेह मकरन्द भरे हैं किन्तु सूक्ष्म अध्ययन साफ बतलाता है कि सुजान शब्द का प्रयोग राधा तथा कृष्ण दोनों के लिए कवि ने किया है।

१ हिन्दी की इन कृतिया के अतिरिक्त बिहार उडीसा रिसर्च जरनल के आधार पर घनआनन्द की एक फारसी ममनवी का पता चलता है पर वह अभी तक उपलब्ध नहा है।'—घनआनन्द ग्रन्थावली, स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, वाङ्मुख पृ० ७४

यदि सुजान कोई नारी थी भी तो सम्भवत रासलीलाओं की नारी (राधा) की स्मृति मात्र है जो परमात्मा का प्रेमपूर्ण रहस्यात्मक प्रतीक बन गई है। नख शिख नृत्य संगीत का जो वर्णन सुजान के विषय में है वह रासलीला की राधा की लीलाओं का प्रभाव और उसके मानसिक कल्पनाओं में उत्पन्न चेतना का वर्णन है।[1] घनआनन्द पर महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले भावुक समीक्षक श्री बहुगुणा जी ने सुजान कौन थी इस विषय का प्रतिपादन करने में उल्टी तर्कपद्धति का सहारा लिया है। लौकिक आलंबन से अलौकिक सत्ता तक पहुँचने की बात बहुत बार और बहुत जगह सुनी गई है। बहुगुना जी को सुजान नाम की कोई स्त्री थी भी इस बात में भी सन्देह है जब कि घनआनन्द जी ने अनेक स्थलों पर सुजान तिया का स्पष्ट नामोल्लेख किया है। इस प्रकार की सन्देह पद्धति का सहारा लेकर केवल काल्पनिक निष्कर्षों पर पहुँचा जा सकता है। सम्भव है उन्हें यह बात नितान्त निंद्य लगी हो कि घनआनन्द ऐसा कविरत्न एक मुसलमान वेश्या की प्रबल प्रेरणा से इतना उत्तम काव्य लिखे इसी से घनआनन्द के प्रेम की तड़प और कल्पनाभिव्यक्ति का कारण बहुगुना जी ने घनआनन्द की भक्ति भावना में ढूँढा है जो माधुर्य भाव की थी—स्पष्ट है कि कृष्णार्पण की हुई घनआनन्द की कविता की मूल प्रेरणा घनआनन्द की प्रेमा भक्ति है जो विरह की तीव्रता में भागवत की भक्ति है और प्रेम की सरसता के कारण गौड़ीय सम्प्रदाय की सखी भावना के अन्तर्गत आने वाली प्रेमानुभूति है। किन्तु यह मर्यादावादी दृष्टि सत्य के उद्घाटन की बजाय उस पर आवरण ही डालने में सहायक हुई है। आप यह क्यों भूल जाते हैं कि घनआनन्द के समान धर्मा कवियों में अनेक के जीवन में सौन्दर्य और प्रेम की तीव्रतम अनुभूतियों का कारण बहुत कुछ एक सी घटनाएँ हैं। बोधा कवि को सुभान नाम की एक यवनी वेश्या से प्रेम हो गया था, उसी के प्रेम की प्रेरणा और विरह की वेदना बोधा की कविता में सौन्दर्य बन कर पुष्पित हुई है। आलम कवि के शेख रंगरेजिन से प्रेम हिन्दी साहित्य के किसी विद्यार्थी से छिपी हुई चीज नहीं। आलम के पगड़ी की खूँट का अधबना दोहा पूरा कर शेख ने आलम को अपना बना लिया था तथा दोनों की प्रेमपरक रचनायें हिन्दी साहित्य के गौरव की वृद्धि में सहायक हुई है। ठाकुर का एक सुनारिन पर रीझना प्रसिद्ध ही है। यही बात घनआनन्द और सुजान के प्रेम में भी कही जा सकती है। सुजान कुछ साधारण रूपवती तो थी नहीं। उसके अंग-अंग से कांति की तरंगें उठा करती थी हँस कर अगर वह बोल देती थी तो सुनने वाले हृदय पर फूलों की वर्षा हो जाती थी उसकी मुस्कराहट से रस निचुड़ा पड़ता था। ऐसी नवनीत कोमलांगी यवनी पर अगर घनआनन्द मुग्ध ही थे तो क्या हुआ। देखने की बात यह नहीं कि एक हिन्दू हृदय एक मुसलमान रूप पर क्या रीझा बल्कि यह है कि कसी जबरदस्त थी वह रीझ जिसके हाथों कवि हारा हुआ था। प्रेम सौन्दर्य और रीझ जाति और धर्म की

---

१ घनआनन्द—श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना (प्रथम संस्करण सं० २००१ पृ० १३ १४)

तुच्छ और सकीण मीमाओ का सदा अतिक्रमण करते रहे हैं। घनआनन्द के काव्य की मूल प्रेरणा भक्ति नही प्रेम है यह बात समझ लेनी चाहिये। भक्ति से व प्रेम की ओर नही बढे बल्कि प्रेम से भक्ति की ओर वे गये। वे पहले प्रेमतरगी हैं बाद म कुछ और। हम धोखा नही खाना चाहिये इस बात मे कि घनआनन्द की मूल वृत्ति क्या थी ? वह थी प्रेम और कुछ नही। यह प्रेम पहले लौकिक था शुद्ध लौकिक। वह प्रेम सुजान वेश्या के प्रति था जिससे उन्ह बिछुडना पडा और सदा के लिये। यह वियोग काम-वासना की जागृति भी किया करता था, घनआनन्द ने बराबर स्वीकार किया है कि वे 'मैन की आरति से उबर नही पाते।' परन्तु दीर्घ काल-व्यवधान इस शरीरी वासना का मानसिक धरातल पर ले जाता है और वृन्दावन का पावनवास कृष्ण लीलाओ की चिर मधुर स्मृति निम्बार्क सम्प्रदाय की दीक्षा और भक्ति पद्धति भटकते हुए घनआनन्द की वृत्तियो को स्थिर, गम्भीर और भगवदोन्मुख कर देता है।

सुजान कोई काल्पनिक सत्ता न थी वह हाड मास की बनी एक शरीर धारिणी रूपवती थी। घनआनन्द के लिये तो वह विधाता की एक विशिष्ट सृष्टि थी। घनआनन्द साहित्य के अन्यतम शोधक, विद्वान और ममज्ञ आचाय प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र को अजयगढ राज्य स प्राचीन कवियो का एक सग्रह मिला जिसम उन्ह जय सुजान के कवित्त' शीषक स सुजान के ११ कवित्त मिले हैं। दो तीन छद सुजान के नाम म सुधासर नामक काव्य सग्रह म पन्ना म मिले है। रचना और प्रेम-व्यजना की दृष्टि स य छन्द भी अच्छे ह जिसम सुजान की अपनी विरह भावना और मिलनोत्कठा अकित हुई है प्रिया के रूप का आकषण और अपनी रीझ का चित्रण हुआ है। इन कवित्तो का रचयिता सुजान नाम की कोई स्त्री ही है ऐसा स्पष्ट लक्षित होता ह क्योकि इन छदो म अनेक बार कहत सुजान अथवा 'सुजान कहै' पद व्यवहृत हुआ है। देखिये—

(क) यह बीनती मेरी सुजान कहै चित द इतनी सुनि लबो करो।
(ख) कहत सुजान कान्ह रूप के विधान वह
मूरत किसोर मेरी आँखिन मैं धरि जा।
(ग) सुजान कहै सुनि मोहन बालम मोहनी सी पढ़ि डारी है मानो।
(घ) बिन देख तुम्हें यों सुजान कहै बिरहानल मैं तन ताइये जू।

ये छद किसी सुजान नामक कवियित्री के ही हैं। इन छन्दो म प्रेम की जमी भावना अकित हुई है वह वैसी ही प्रतीत होता है जसी गोपियो की कृष्ण के प्रति थी। सुजान की प्रीति घनआनन्द या 'आनन्दघन' के प्रति थी इसका प्रमाण इन छन्दो म आने वाली एक पक्ति है जिससे मिल सकता है—

रूप सलोनो दिखाय महा हिय मैं अति आनन्द को घन छावत।

इन छन्दो की रचना करने वाली 'घनआनन्द' प्रेमिका सुजान का असली नाम कदाचित सुजान राय था ऐसा भी एक पक्ति से अवगत होता है—

**मेरे लेखें यह ब्रज ऊजर मुजानराइ**
**जिहीं और बस का ह तिहीं और बसतो।**

सुजानराय असम्भव नहीं कि वेश्या रही हो क्योकि एक तो उस युग म वश्याआ के नाम इसा प्रकार के हुआ करत थे जस रंगराइ' 'नवरगराइ', 'प्रवीनराइ' आदि , दूसर उस युग की वेश्याएँ नृत्यगान की ही भाति चित्र और काव्य अथवा समस्यापूर्ति की कला म भी पटु हुआ करती थी।

इन छन्दो से एक बात जो और जाहिर हाती है वह यह कि घनआनन्द ही सुजान क प्रति आसक्त और विरह व्यथामय न थे वह भी घनआनन्द के प्रति आसक्त और विरह व्यथित थी। जब तक इन छन्दा की शोधोपलब्धि न हुई थी यही माना जाता रहा है कि यह प्रम एक पक्षीय था। घनआनन्द सुजान क लिए तडपते थे पर वह सुजान वेश्या की जाति ठहरी थी बडी निष्ठुर। किन्तु ये छन्द अब घनआनन्द के प्रम चित्रो को सम्पूर्णता प्रदान करत है। इतनी तडप जिसक दिल म थी वह कोरी या खाली नही गई। सुजान भी उन पर रीझी थी। विरह की कठोर यातनायें सहकर घनआनन्द जिस दयार्द्र करना चाहत थे उसका हृदय सचमुच पसीज गया था, भले ही उसन घनआनन्द के निर्वासन म उनका साथ न दिया हो। घनआनन्द ने ठीक ही कहा है कि मछली तो **जड मीत के पानि पर को प्रमान** परन्तु मेरा प्रिय जड नही वह मेरे दुख और दद का समझता है—

**या मन की जु दसा घनआनन्द जीव की जीवनि जान ही जान।'**

अब सक्षप म सुजान की रीझ या प्रीति का कारण और स्वरूप भी समझ लिया जाय। सुजान के छन्दा स यह बात जाहिर हाती है कि घनआनन्द एक रूपवान और अल्पवय व्यक्ति थ। उनकी उम्र का कम होना और रूप दोना हा उस आकर्षित कर लेन का प्रधान कारण थे। घनआनन्द का रूप उस सलाना, रगभरा, किशार और मोहक लगता था। सुजान न अपन प्रिय का निष्ठुरता की भी बात की है—

**सुजान ए प्रान लगे तुम ही सो सु क्यौं निरमोही कहा तन तावत।**
**मोहनी डारि क मोहन जू वह मोहनी मूरत क्या न दिखावत॥**

× × ×

**कौन कही करियो हित आपतें जो करयो तो अब का बिसरावत।**

× × ×

**मोहनी मूरत कों दरसाय सुजान कहौ इत क्यों नहीं आवत।**

सुजान क प्रेम की व्यंजना इस प्रकार हुई है—

**(क) मन मेरो तुम यह लागि चुभ्यौ अब कोऊ कछू किन कवा करौ।**
**वह मूरति मोहनी रगभरी सु दया धरि चित्त दिलबो करौ॥**

**(ख) कहत सुजान का रूप के निधान वह**
**मूरत किसोर मेरी आँखिन मैं धरि जा।**

क जी यह लाल तेरो जो प यह बात साजी
मन नाँहि राजी तौ नजर बाजी करि जा ॥

(ग) बिना प्रीति प्यारे कौऊ काहे को परेखो कर
प्रीति हीको प्रीतम परेखो कीजियतु है।

(घ) सीख सुन नहिं मो मन नक सु तौ तन देखि क ऐसो लुभानौ।
लाज तजी क्लकान तजी सब लोक चबाई मैं नावँ धरानौ ॥
सुजान कहै सुनि मोहन बालम मोहनी सो पढि डारी है मानौ।
नेह लगाय क पीठ न दीजिय हाय इती बिनती उर आनौ ॥

(ङ) कबहूँ इन आखिन को वह मोहनी मूरत लाल दिखाइय जू।
मन आव तब रुचि सो सुनि प्यारे मया करि क इत आइय जू ॥

और विरह निवदन इस प्रकार किया गया है—

(क) तोहि बिन देखें मोहि कल न परति हाय,
, द करि दिखाइ पीर बिरह को हरि जा।

(ख) तुम्हरे विरह तें बिकल दिनरात गोपी,
रही मुरझाय कबहूँ न देखी हसती।

× × ×

मेरे लेखे यह ब्रज ऊजर सुजान राइ,
जिहीं और बस काहू तिहीं ओर बसती ॥

(ग) झुकाय सरीर अधीन कर दृगनीर की बूद की माला फिराव।
नेह की सेली वियोग जटा लियें आह की सींगी सुपूरि बजाव ॥
प्रेम की आग मैं ठाढ़े जर सुधि आरा ल आपनी देह चिराव।
सुजान कहै कला कोटि करो प वियोगी के भेद कों जोगी न पाव ॥

इधर स० १८२२ विक्रमा का एक छन्द-सग्रह जस कवित्त' नाम स मिला है। उसम घनआनन्द के सुजान से प्रम होन पर किसी ईर्ष्यालु की गन्दी उक्तिया और गाली गलौज की गई मिलती है। घनआनन्द की अपकीर्ति म लिख गये उन महादय के छन्द असाधारण हैं—

(१) कर गुर निन्दा यह हरकिनी कौ बन्दा महा,
निराधनी गन्दा खात पानीर औ नान है।
बन कों चुराव ताकी मजमून लाव कूर,
कविता बनाव गाव रिजौली सो तान है ॥
सुरा घट-सोखी देह मांस ही सों पोखी विप्र
गयन को दोखी रूप धरे अभिमान है।
पाप को भवन कर अगम-गमन ऐसो,
मुड़िया अनन्दघन जानत जहान है ॥

(२) इफरी बजाव डौम डाडी सम गाव काहू
तुरक रिझाय तब पावै झूठौ नाम है।
हुरक्नी सुजान तुरक्नी को सेवक है,
तजि राम नाम याकों पूज काम धाम है।

सोहा ज्यों सगाम जसे घसनो को चाम है।
पीव मग कुण्डा सग राख गुण्डा
मसुण्डा अनन्दघन मुण्डा सरनाम है।

(३) मुदित अनन्दघन कहत विधाता सों यों,
लाल को आसन दीजो गारी मोहि गावगी।
मो मुख को पीकदान करयो सुजान प्यारी
हुरक्निी तुरक्निी युक्त सुख पावगी।।
धोती को इजार दुपटो को पेशवाज और
देहुगे रुमाल ताको पूछना बनावगी।
पागिया पायदाज कीजियो गरीब निवाज
भरि गए मो मन-पलिग पर आवगी।

इन प्रमाणा म सुजान का अस्तित्व, घनआनन्द का उसके प्रति और उसका घनआनन्द के प्रति प्रम तथा घनआनन्द की गौरवपूर्ण काव्यकृति की प्रेरणा रूप सुजान का होना निर्भ्रान्ति रूप स सिद्ध है।

४

# घनआनन्द के काव्य के प्रधान वर्ण्य

घनआनन्द के काव्य का प्रधान सवद्य प्रेम है और इस प्रणय भावना का प्रधान आलम्बन सुजान है। घनआनन्द के जीवन वृत्त क सन्दभ म हम देख ही चुके हैं कि सुजान कौन थी। वह दिल्ली क बादशाह मुहम्मदशाह रगीले की सभा की शोभा थी। इन्ही बादशाह क खास कलम (प्राइवेट सैक्रेटरी) घनआनन्द उसके रूप पर आसक्त थे और उसका आसक्ति इनम इतनी तीव्र थी कि य उस पर अपनी जान भी दे सकते थे। वेश्या पर क्या रीझे इसका कोई क्या जवाब द— ऊधौ मनमाने की बात'। स्वच्छन्द कवि और प्रेमी प्रेम म कुल और जाति का विचार नहा करता उधर रूप और सौन्दय भी बाधा व धना और मर्यादाओ के ऊपर हुआ करता है उसके द्वारा आकृष्ट या विद्ध व्यक्ति स सम्हाल हा उसकी आर दौडता है और मुह क बल गिरता है। घनआनन्द का यहा हालत थी, उसक रूप और इनकी रीय न इन्हे उन्मत्त कर रक्खा था। ये दिल्ली सल्तनत क बादशाह का अवना कर सकत थे पर सुजान की नहीं। बादशाह क कहने पर घनआनन्द न अपना सगीत नही सुनाया पर सुजान क कहने पर चट तानपूरा उठा सुनान बैठ गय—इतना ही नहीं गायन के समय इनका मुह सुजान की ओर था और पीठ मुहम्मदशाह की ओर। प्रेम का नशा पीकर घनआनन्द तो मतवाले थ (जान घनआनन्द अनोखो यह प्रेम पंथ, भूले ते चलत रहैं सुधि के थकित है।) पर बादशाह होश म था। इनकी बअदबी पर उसन इन्ह अपनी सभा क्या राजधानी स बाहर कर दिया। सब कुछ सुजान पर निछावर करन वाल घनआनन्द न जब उसे साथ चलने का कहा ता वह नट गई—वेश्या जा ठहरी। धन और राज प्रतिष्ठा को वह घनआनन्द के लिए नही छाड सकती थी। घनआनन्द ने राजधानी छाड दी और सुजान क प्रेम म विकल हा विसूरते हुए वे वृन्दावन पहुचे। सारा जीवन इन्होने वही व्यतीत किया पर निष्ठुर सुजान की स्मृति उनके हृदय देश स बाहर न जा सकी। मम म धँसे काट की तरह वह इन्ह जीवन भर सालती रही। भक्ति ता बाद में आई निराश हो जाने पर नाना वाह्य प्रभावा क कारण। विवशता ने इन्ह भक्त बना दिया अन्यथा घनआनन्द प्रेमी थे शुद्ध प्रेमी। भक्त हा जान पर इन्ह निम्बार्क सम्प्रदाय म दीक्षा भी मिल गई और रफ्ता रफ्ता ये भक्त बन भी गये

इनकी वाणी म भक्ता सी निष्ठा भी आ गई और भक्ति का पुनीत भाव भी, सम्प्रदाय की छाप भी इन पर लग गई और सम्प्रदायगत भक्ति साधना का पर्याप्त पथ पार कर सिद्धा मे भी इनकी गणना होने लगी पर घनआनन्द के सुजान प्रेमी के ही रूप मे अधिक जाने जाते हैं। अतएव उनके काव्य म अनुशीलन की प्रथम वस्तु यह है कि घनआनन्द की दृष्टि मे सुजान कौन था ? कसा थी ? उसका इनके प्रति कैसा व्यवहार था और य उस कैसा समझत थ ? उसकी निष्ठुरता क बावजूद भी इनके हृदय म उसक प्रति कस भाव थ ? इनका प्रम उसक प्रति कितना था आर किस प्रकार की व्यथा और तडप से इनका काव्य ओत प्रोत है ?

## सुजान का रूप और सौ दय वणन

वसे तो घनआनन्द का पूरा काव्य ही प्रम भावना से आप्लावित है परन्तु सुजानहित घनआनन्द क लौकिक प्रेम या सुजान प्रेम का अचल स्मारक ह। जिस सुजान के लिए घनआनन्द मे इतनी तडप पीडा और मनोवदना है वह सुजान कोई साधारण रूप वाली स्त्री न रही होगी। यदि घनआनन्द न अपनी प्रेयसी सुजान के रूप का अग प्रत्यग की शोभा का कोई विवरण न दिया होता तो भी हम उनके काव्य मे अकित उनकी मनोव्यथा से घनआनन्द की प्रेमिका के रूप सौन्दय का अनुमान कर सकते थे। किन्तु घनआनन्द जी न इस सम्बन्ध म हम अधकार म नहीं रक्खा है। नाना छन्दो म विशद रूप से उन्होंने सुजान के रूप का यौवन का अगलावण्य की मुख छवि का हँसन बोलन चलन दखन आदि का वणन किया है। जो हमारे रतिभाव या प्रेम का भाजन होता है उसका एक एक अग हम मधुर लगता है। उसकी एक एक चाल और एक एक बात म हम अपूव माधुय लक्षित होता है। सुजान का रूप घनआनन्द न इसी भाव से अकित किया है। सुजान का रूप चाहे जसा भी रहा हो—वह निश्चय ही अत्यन्त सुन्दर रहा होगा—हम उसक उस रूप को यहा पर प्रत्यक्ष कराने की चेष्टा करेंगे जो कविवर घनआनन्द के मन म नैना म बसा हुआ था। यहा पर हमारा अभीष्ट यही दिखलाना ह कि घनआनन्द की सुजान नामी प्रेमिका कसी थी और क्या वह घनआनन्द की इतनी तीव्र आसक्ति का आलम्बन बनी ? बहुत दिनो के बाद जसे पहली बार घनआनन्द ने ही वयक्तिक प्रम की कविता लिखी हो, ईश्वर प्रेम का व्यक्तिनिष्ठ चित्रण करने वाले कवि हो गये ये पर मानवी और लौकिक प्रेम की इतनी आत्मनिष्ठ [illegible] रचना करने वाला कोई कवि हिन्दी म घनआनन्द स पहले न हुआ था। अपने प्रम का प्रकाशन करने वाले तो हुए पर उनका प्रेम प्रकाशन प्रच्छन्न पद्धति पर था। घनआनन्द न पहली बार वयक्तिक प्रम को निर्भीक और प्रत्यक्ष रूप म चित्रित किया अपने हृदय की भावनाओ को अकुण्ठ चित्त से सामने रक्खा कदाचित इसी कारण व कतिपय दुजनो द्वारा लाछित होने क पात्र भी हुए जिसकी थोडी चर्चा हम इनकी जीवनी क सन्दभ म कर आय हैं।

अब उस सौन्दय की देखिय जिसन घनआनन्द को साधारण मीर मुन्शी स एक

'महाकवि' और 'सिद्ध सुजान' की कोटि तक पहुँचा दिया, जिनसे प्रेम की चोट खाकर वे प्रेम लोक के अमर व्यक्तियों की श्रेणी में पहुँच गये।

घनआनन्द ने सुजान के रूप का क्रमबद्ध रीति से नख शिख वर्णन नहीं किया है। सुजान की समस्त छवि के जिस अंश का आकर्षण या प्रभाव मन पर पड़ा है उसी के चित्रण में वे प्रवृत्त हो गये हैं। सुजान के रूप और अंग सौन्दर्य ने जब उन्हें आकृष्ट किया है तब वे उसके चित्रण में तन्मय हुए हैं। इसी से समस्त रूप सौन्दर्य वर्णन हम एक साथ नहीं पाते। रूप के या जिस अंग का आकर्षण जब जितना तीव्र हुआ है तब वे उतने उन्मेष के साथ छन्द लिख गये हैं। क्रमबद्ध रूप से एक साथ शिख से नख तक का वर्णन कर कवि परिपाटी का अनुसरण उन्होंने नहीं किया है। उनकी स्वच्छन्द वृत्ति और प्रेम की उमंग उन्हें ऐसा कैसे करने देती ?

सुजान के रूप वर्णन में कवि का ध्यान प्रायः छवियों के चित्रण पर रहा है। एक-एक अंग को, उसकी सुन्दरता को अलग अलग करके देखने दिखाने की प्रवृत्ति उनमें नहीं। कुछ छन्द ऐसे मिल जायेंगे जिनमें केवल एक ही अवयव (आँख या चितवन कटि, केश आदि) का वर्णन करके कवि रह गया है परन्तु वहाँ भी किसी अंग विशेष का वर्णन कोई अभिप्राय रखता है। ये वर्णन उस अंग विशेष की अतिशय शोभा या प्रभविष्णुता दिखाने के लिए या किसी नवीन पद्धति पर अंग वर्णन करने या किसी ऐसे अंग का वर्णन करने के लिये लिखे गये हैं जिसका वर्णन कवियों ने सामान्यतः नहीं किया है। आलम्बन का समस्त रूप भी कवित्त या सवैये में चित्रित कर सकना सम्भव नहीं इसीलिए हम देखते हैं कि सुजान की सौन्दर्य-वर्णना का प्रत्येक छन्द उसकी एक नई छवि लेकर सामने आता है। छवि में नवीनता तीन कारणों से आई है। एक तो दृष्टिकोण या दृष्टिबिन्दु के बदल जाने के कारण, दूसरे रूप शोभा की अतिशयता के कारण तीसरे हृद्गत प्रेम के आधिक्य के कारण। दृष्टि भिन्न भिन्न अंगों या अंग समूहों पर पड़ती है इसलिए नई-नई छवियाँ कवि प्रस्तुत करता गया है तथा भिन्न भिन्न अवयवों की नई-नई दृष्टियों से सश्लिष्टता के कारण वर्णित छवियाँ नाना विधि हो गई हैं साथ ही सुजान के रूप और अंग प्रत्यंग का सौन्दर्य क्षण-क्षण नवीनता वाले सिद्धान्त के अनुसार जितनी बार वर्णित हुआ है उतनी ही बार नई शोभा और प्रभाव के साथ कहा गया है फिर सुजान के रूप पर कवि की निजी रीझ या उल्लास में भी तो कुछ कमी नहीं है जो एक ही अंग के बार बार वर्णन किये गये वर्णन में नवीनता ताजगी और नई कान्ति पैदा कर देता है। इस प्रकार कवि ने सुजान के रूप का नाना छन्दों में विस्तार के साथ नाना प्रकार से वर्णन किया है।

सुजान की रूप सौन्दर्यवर्णना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने साक्षात्कृत एवं स्वानुभूत सौन्दर्य का आसक्त भाव से वर्णन किया है। प्रत्येक वर्णन चित्र या छवि के पीछे कवि की अपनी अनुभूति और अपनी दृष्टि छिपी हुई है इसी आत्मतत्व या अति वैयक्तिकता (Subjectivity) के अभाव में रीति कवियों के रूप वर्णन

एक से और निर्विशिष्ट हो गये हैं जबकि घनआनन्द जी के रूप और छवि चित्र स्वकीय और अपरम्परागत कह जायेंगे। उनका बहुत सारा सौन्दर्य और उन चित्रों की श्रेष्ठता का बहुत सारा श्रेय उनकी इसी आत्मनिष्ठता को दिया जायगा। उसमे जो नवीनता है, ताजगी है, सूक्ष्मता है, स्वच्छन्दता और नवीन भावनाओं और कल्पनाओं का योग है वह सौन्दर्य चित्रण की इसी आत्मपरक दृष्टि के कारण। बाह्य रूप सौन्दर्य और अंग लावण्य के भी तह में जाकर कवि ने जगह-जगह सुजान के आंतरिक सौन्दर्य की जो झलक दी है वह भी बड़ी मार्मिक और हृदयस्पर्शिणी है।

कुछ चित्र या वर्णन रीति शैली पर भी मिलेंगे जिसमे अलंकारों की योजना के सहारे रूप का साक्षात्कार कराया गया है पर वहाँ भी अलंकारिकता में नयापन और ताजगी मिलगी। मात्र पिष्टपेषण औरों में एक बार मिल भी सकता है पर घनआनन्द में नहीं। इस दृष्टि से वृत्ति की स्वच्छन्दता घनआनन्द में जितनी मिलेगी औरों में नहीं। स्वच्छन्द वृत्ति की दृष्टि से कवियों का क्रम इस प्रकार होगा—घनआनन्द ठाकुर, रसखान, बोधा, आलम, द्विजदेव।

अब घनआनन्द जी द्वारा वर्णित सुजान के रूप सौन्दर्य के वर्णनों की जो छोटी छोटी विशेषतायें है और अवयवों के सौन्दर्य का जो सूक्ष्म चित्रण है उस पर किंचित विस्तार से चर्चा अपेक्षित है।

**शिर, केश, भाल, घूघट, श्यामल साड़ी**

सुजान के चिकने केशों के आकर्षक लटें उसके स्वच्छ मुख पर फैलकर (बिथुर) उसके सुहाग बिन्दु मंडित भाल और शिर की जो शोभा प्रदान करती हैं उनका क्या बखान किया जाय—

> **चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे**
> **कहा कहौं सोभा भाग भरे भाल सीस की।**
> **मानौ घनआनन्द सिंगार रस सों सँवारी**
> **चिक मैं बिलोकति बहनि रजनीस की॥**

उसके खुले हुए केशो (छूट बार) को देख कर पपीहे दौड़ने लगते है। इन मुक्त कुन्तलो में पपीहो को अपने प्रियतम मेघ की प्रतीति होने लगती है और श्याम वर्ण के उसके सघन केश अपनी वर्णच्छटा के कारण भ्रमरों की भक्ति भावना के आलम्बन हो गये हैं—

**(क) छुटे बार हेरि कै पपीहा पुञ्ज धावहीं।**

**(ख) बारनि भौंर कुमार भज।**

रात्रि शयन के समय प्रातःकाल सोकर उठने पर छूटी हुई अलकों या बिखरी हुई लटों के सौन्दर्य की भी चर्चा की गई है।

भाल के वर्णन मे कवि ने सुहाग दीप्ति या मंगल बिन्दु की चर्चा की है। उसका भाल या मस्तक सौभाग्य चिन्ह से ज्योतित रहता है जिससे उसके प्रति उसके प्रेमी के प्रेम का भी पता चलता है—

सुहाग सों ओपित भाल दिप घनआनन्द जान पिया अनुराग ।

एक दा छन्द म घनआनन्द ने सुजान को 'घूघट वारियैं' कह कर उसके अव गुंठित रूप को भी प्रस्तुत किया है और उसकी सलज्जता तथा तत्कालीन घूंघट के रिवाज का भी परिचय दिया है—

घूघट काढ़ि जो लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिनुकाजनि ।

एक जगह श्यामन रग की साड़ी भी उसे पहना दी गई है, अगो की गोरी काति जिसमे बाहर फूटी पडती है। घनआनन्द का वस्तु शब्द स्थिति, भाव सभी कुछ की विरोधात्मकता म जो सौन्दर्य लक्षित होना था उसी के आधार पर उन्होंने अपनी गोरी सुजान को साँवली साड़ी भी पहना दी है और स्वय मुग्ध भाव से उसकी प्रशसा करते पाये जाते हैं—

स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहै अमावस-अक उज्यारी ।
घूम के पु ज मैं ज्वाल की माल सी प दृग-सीतलता-सुखकारी ॥
क छकि छायौ सिगार निहारि सुजान तिया-तन दीपति प्यारी॥
कैसी फबी घनआनद चोपनि सों पहिरी चुनि साँवरी सारी ॥

**भौंह और नेत्र**

भौंहों क वणन म उनक वाकपन (बक्रता) का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है। उनकी किञ्चित चपलता तनाव (रोष या गव आदि का सूचक) मनिकटता आदि अन्य गुणा का भी सकेत मिलगा—

मजन क अजन द भूषन-बसन साजि
राजि रही भ्रकुटी जुटीहौं बक्तनि है।

नेत्रों का वणन अपेक्षाकृत अधिक चार किया गया है। उनकी प्राणवत्ता, आकषण शक्ति प्रभाव डालन की क्षमता आदि इसक कारण हैं। नत्रो की विशालता, रगीलापन श्यामलता, उज्ज्वलता सुन्दरता काम मद मत्तता आनन्द के आसव से छका होना, आजस्विता अजन अजित होना नेह-युक्त होना चतुरता, चपलता, रसिकता अरवीलापन (अड़ने की प्रवृत्ति) लाड से पालित होना, तीक्ष्णता प्रसिद्ध उपमानो का रूप दलन करने की शक्ति सलज्जता, शीलयुक्तता, हँसीलापन कातिपूण होना, रस राशि समन्वित होना मनरजिनी एव रससाविनी शक्ति, स्नह समन्वित होना, तृप्ति आदि दाता का वणन नाना छन्दा म किया गया है। इतन इतने गुणा और शक्ति से सम्पन्न नेत्रा का वणन स्वभावत अनकानक छन्दा की अपेक्षा रखता है। घनआनन्द ने बार-बार अपनी प्रमिका क ऐसे गुणशाली नत्रो का जिक्र किया है—

(क) बडी अँखियान में अजन रेख लजीलो चितौनि हियो रस पाग।
(ख) अरु बक विसाल रँगीले रसाल बिलोचन मैं न कटाछ कमी।
(ग) अलक अति सुदर आनन गोर छके दृग राजत कानन ह्व ।
(घ) जोवन गरुर गरुवाई सों भरे बिसाल
लोचन रसाल चितवनि बक ह्व त है।

(ङ) बक बिसाता रँगीले रसाल छबीले कटाछ कलानि मैं पंडित।

× × × × ×

आनन्द आसव घूमरे नन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित।

(च) रूप-गुन-मद उन्मद नेह-तेह भरे,

छल बल आतुरी चटक चातुरी ,पढ़े।

घूमत घुरत अरबीले न मुरत नेकौ,

प्रानन सो खेल अलबेल लाडके बढे।।

मीन-कंज-खंजन कुरंग मान भंग कर,

सींचे घनआनन्द खुले सकोच सो मढ़े।

पने नन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ

धाती बडे काती लिए छाती प रहैं चढ़े।।

(छ) चोप चाह चाँचरि चुहल चोख चटकीली

अटक निवारै टार कुल कानि-बीचि क।

घात ल अनूठी मर चेतक चितौन-मूठी

घूघरि चिलक चौंध बीच कौंध सौं टिक।।

भीजे घनआनन्द सुजान के खिलार दृग,

नसिक निहार जिनकी निकाई प बिक।

रूप अलबेली सुन बेली प्यरी तेरी आँख

ताकि छाकि मार हुरिहाई न कहूँ छिक।।

(ज) पानिप पूरी खरी निखरी रस रासि निकाई की नीवहिं रोप।

लाज लडी बडी सील गसीली सुभाय हँसीली चित चित लोप।।

अजन अजित श्री घनआनन्द मजु महा उपमानहूँ ओप।

तेरी सौं एरी सुजान तो आखिन देखिये आँखिन आवति मोप।।

(झ) खजन ऐसे कहा मनरजन मीननि लेखौ कहा रसढार सो।

कजनि लाज को लेस नहीं मृग रूखे सने ये सनेह के सार सो।।

मोतिन के यह पानिप जोति न बार जिवाई न जानत मार सो।

मीत सुजान सिरावत तो दृग है घनआनन्द रग अपार सो।।

नेत्रो के सौंदय-वणन म कवि की दृष्टि केवल उनक आकार प्रकार और वण शोभा तक ही न जाकर उनकी सलज्जता, अनुरक्ति तीक्ष्णता रसाद्रता छका हुआ या नशीलापन अडियलपन काम के मद से रगा होना आदि आन्तरिक गुणो पर भी गई है जिसस सुजान क बाहरी स्वरूप को ही नहीं हम उसक आन्तर रूप तक भी जा पहुँचते हैं। इन आन्तर गुणो का सकेत कवि के निजी निरीक्षण एव अनुभव का सूचक है। नत्रो या उनस उत्पन्न कटाक्षो तथा उनक प्रभाव का भी घनआनन्द न विस्तार से वणन किया है जिसकी चर्चा अन्यत्र की गई है। उपर्युक्त उदाहरणो म भी

नेत्रों के कटाक्ष और उन कटाक्षों के तीखे प्रभाव की बात कही गई है जिसका कारण यही है कि ये सारी विशेषताएँ या अंग सुषमा परस्पर संबद्ध हैं। जिन छंदों में थोड़ा अलंकृत शैली का प्रयोग हुआ है वहाँ भी पिष्टपेषण नहीं मिलेगा। अंतिम उदाहरण में सुजान के नेत्रों के सामने प्रसिद्ध उपमानों को जो फीका ठहराया गया है वह सूरदास की मुक्त स्वच्छंद भावमयी वर्णन शैली का स्मरण दिलाता है। वे कहते हैं—

उपमा नैनन एक लही।
कबिजन कहत-कहत चलि आए सुधि करि करि काहू न कही आदि

(सूरदास)

**नाक, दाँत अधर ग्रीवा मुख**

नासिका का वर्णन कवि ने बिल्कुल ही नये ढंग से किया है, परम्परा की जिसमें कोई भी झलक नहीं है। सुजान की नाक जरा चढ़ी रहती है। नाक चढ़ी रहना मुहावरा है जिसका आशय है सदा ईषत् रोष में रहना जो प्रायः रूपवती स्त्रियों के स्वभाव का एक अंग होता है। इस स्वभाव के मूल में रूप का अभिमान तथा सब तरफ से लोक में उसी रूप के कारण प्राप्त प्रशंसा या प्रतिष्ठा कारणस्वरूप हुआ करते हैं। रूप के कारण ही जिसे सब तरफ आदर मिलता है औरों की अवहेलना करने का उसका स्वभाव हो जाता है। निष्ठुर सुजान की प्रकृति ऐसी ही थी जिसकी बड़ी सुंदर झलक नासिका वर्णनरत इस छंद में देखी जा सकती है—

अनखि चढ़े अनोखी चित्त चढ़ि उतरै न
मन मग मूँद जाको बेह सब ओर तें।
कोंवरी सुठौन कौन रंग भीनी हौं न जानौं,
लाडनि सु लसि हुलसनि मति चोर तें॥
बड़े मन-मतवारे नैनन के बीच परी,
खरिय निडर ऊँची रहै रूप जोर तें।
सहज बनी है घनआनंद नवेली नाक,
अनबनी नथ सों सुहाग की मरोर तें॥

नाक का छेद, नाक चढ़ने की मुद्रा एकदम (खरी) निडर और ऊँची नाक और नथ—इन सारी बातों का वर्णन ऊँची लम्बी इतराती हुई सुजान की सुंदर नाक का सौन्दर्य प्रत्यक्ष करा देते हैं। कवि ने नाक चढ़ी रहने का और उसकी निडरता का कारण भी बिल्कुल सटीक दे दिया है—**खरिय निडर ऊँची रहै रूप जोर तें।** इसी उठी हुई नाक का कवि ने प्रकारांतर से इस प्रकार वर्णन किया है—

नीकी नासापुट ही की उचनि अचम्भे भरी
मुरि क इचनि सों न क्यौं हूँ मन तें मुरै।

दाँतों के वर्णन में उनकी शुभ्रता और चमक ही विशेष कथित हुई है। उनकी कांति को मौक्तिकभवन ठहराया गया है तथा होंठों के वर्णन में अरुणता की चर्चा की गई है—

(क) सहज हँसौंही छबि फबति रँगीले मुख,
दसननि जोतिजाल मोती माल सी रुर।
(ख) बसन बसन आली मरिय रहे गुलाल
हसनि लसनि त्यौं कपूर सरस्यो भर।

अधर दाँता य वस्त्र हैं क्याकि व उन्ह आच्छादित किय रहते हैं। जिस प्रकार फाग खेलन वाली गोपी के आँचल म गुलाल भरा रहता है वसी ही वाली सुजान के अधरा म भी भरी हुई है। लाल अधरा की यह भावना कितनी भव्य है।

सुजान की ग्रीवा का गरबीली और मान के समय एक विशेष मुद्रा म मुड जान वाली बतलाया गया है—

सरस सुजान घनआनन्द भिजाव प्रान
गरबीली ग्रीवा जब आनि मान प ढर।

ग्रीवा की यह गरबीली मानयुक्त भगिमा चली हुई नाक वाली छवि को पूर्णता प्रदान करती है और सुजान के आभ्यतर स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करती है। पर इसस क्या ? सुजान की सराष मुद्रा भी घनआनन्द क पागल मन का सुख और सन्तोष ही प्रदान करती है। उनके प्रान उसकी ऐसी ही मुद्रा पर भीग भीग जात हैं। सुजान क रूप वर्णन के साथ-साथ अपने हृदय और मनोभावा का संस्पश देकर घनआनन्द ने इन रूप चित्रो को अधिक जीवित बना दिया है। और कवि ग्रीवा क वर्णन म कबु कपात आदि की मिसालें बैठाते पर घनआनन्द उसी चित्र को प्रस्तुत करने वाले कवि हैं जिसका सम्बन्ध परिपाटी निहित रसज्ञता म नही वरन् आत्मगत अनुभूति से होता था।

सम्पूर्ण मुख का वर्णन करते हुये कभी तो घनआनन्द ने सुजान को रूप की राशि ठहरा लिया है कभी उसके सौन्दर्य सुधा की अनुभूति कर चकोरा को उसके पीछे दौड़ा लिया है और कभी उसके सहास मुखमण्डल का सिधोरिया फल के समान कहा है। सम्पूर्ण मुख क साकेतिक अथवा व्यजनात्मक पद्धति पर प्रस्तुत य तीना छवियाँ उत्तरोत्तर एक स एक अनूठी हैं—

(क) तू अलबेली सरूप की रासि सुजान बिराजति सादे सुभायनि।
(ख) मुख देखे मोहन लग फिरै चकोर भौंर।
(ग) सब मुख भोर ही सिंदूरा की सी फल है।

मुख को रूप की राशि बतला कर स्वभाव के सीधेपन की चर्चा मुख क आकर्षण म चकोरा का पीछे-पीछे दौडता बतला कर रूप के चन्द्रवत होने का सकेत और सिंदूरी फल या सिधोरिया आम सा बतला कर लावण्य और रूप की अरुणता की जसी मुक्त व्यजना की गई है वह अन्त प्रेरित भावना के बल स ही इतने सजीव रूप म व्यक्त हो सकी है। मुह को सिधोरिया आम बतलाना एकदम नई और राग लिप्त (हृदयलपेटी) सूझ या कल्पना का परिचायक है।

उरोज, उदर, पीठ और कटि

सुजान के उन्नत उरोजो का विशद वणन न करते हुए केवल एक दो ही स्थलो पर उनका किंचित वणन किया है जिसमे उनकी उठान और दीप्ति पर थोडा प्रकाश डाला गया है विस्तार के साथ उपमानो की झडी नही लगाई गई है और न दुन्दुभियो को औंधा किया गया है और न पणकुटी के बीच शिवजी को ही बिठाया गया है वरन् केवल उस प्रभाव को व्यजित किया गया है जो सुषमायुक्त एव यौवन सूचक उरोजो द्वारा कवि के मन पर पडता है —

(क) अगनि पानिप-ओप खरी, निखरी नवजोवन की सुघराई ।
नननि बोरति रूप के भौंर अचम्भे भरी छतिया-उयराई ॥

(ख) घनआनँद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दलो ।
गति ढीली लचीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ बेलि फली ॥

उदर या पेट का वणन एक ही छन्द म किन्तु असाधारण खूबसूरती के साथ किया गया है । उदर का वणन मध्यकालीन हिन्दी काव्य म बहुत कम हुआ है और इतनी नव्य रीति और भावोन्मेष के साथ तो बिल्कुल ही नही । कमनीय कामिनी के उदर सौन्दय क प्रभाव की भी एसी सप्राण प्रतीति कही नही कराई गई है । उपमानो को ओछा ठहरा कर उदर सौन्दय का उत्कष दिखलाया गया है—

चलदल-पात की प्रभा को है निपात जातें,
यातें बाय बाबरो डराय कापिबो कर ।
थोरे थिर गुन मैं जिराज बीचि आभा ऐन
नन हेरें हेरनि हिये मैं भूख लें भर ॥
नेकौ सनमुख भएँ दीज सब सन पीठि,
नीठि हाथ लाग मन पायन कहूँ पर ॥
ताकें तो उदर घनआनन्द सुजान प्यारी
ओछी उपलान की गरुर ओर लौं गर ॥

इसी प्रकार सुजान की प्यारी पीठ की सुन्दरता का भी भाव सपृक्त वणन देखिये—

सोभा सुमेरु की सधितटी किधौं मान-मवास गढास की घाटी ।
क रसराज प्रवाह की मारग वेनी विहार सौं यौं दग दाटी ॥
काम कलाधर ओपि दई मनौ प्रीतम-प्यार-पढावन पाटी ।
जान की पीठि लखें घनआनद आवन आन तें होति उचाटी ॥

पीठ की हृदयाह्लादक उक्त वणन म प्रत्येक सादृश्य कवि चित्त की आद्र ता लिये हुये है इसी से उपमानो के विधान की पद्धति परम्परामुक्त होकर भी अपरम्परागत प्रतीत होती है । पेट और पीठ के ये चित्र नितान्त स्वच्छन्द हैं । पीठ के चित्रण म प्रत्येक अप्रस्तुत एक नई काति और गहरी शृगारी अथवत्ता लिये हुय है और इस

सबके ऊपर वह रीझ देखने योग्य है जिसे आकृष्ट करने मे सुजान के शरीर के ये अवयव समथ हैं। इन अवयवा का वणन या भी माहित्य म कम ही हुआ है।

कटि की सूक्ष्मता और सदिग्ध अस्तित्व के वणन म घनआनन्द ने भी रस लिया है और कटि वणन सम्बन्धिनी जो हास्योत्तेजक उक्तिया कवियो ने की हैं घनआनन्द ने उनम एक दो और जोड दी हैं। उसके वर्णन म कवि न उक्ति विधान अवश्य अपने ढग से किया है किन्तु कथ्य म कोई नवीनता नही है—

(क) रूप धरे धुनि लौं घनआनंद सूझति बूझ की दीठि सु तानौ।
लोयन लेत लगाय कै सग अनग अचम्भे का मूरति मानौ॥
है किधौं नाहिं लगी अलगी सी लखी न परै कवि क्यौंहू प्रमानौ।
तो कटि भेदहिं किंकिनि जानति तेरी सौं ए री सुजान हौं जानौं॥

(ख) अलप अनूप लटपटी सु लपेटी रूप
अलग लगी सी तामैं देती सुध बाँक है।
कोटिक निकाई मदुताई की अवधि सोधौं,
कसे क रची है जामैं विधि बुधि राँक है॥
दीठि नीठि आवै कोऊ कहि क्यौं बतावै, जहाँ
बात हू के बोझ हिय होत नमि साँक है।
चलि चित्त चारै मुरि मनहिं मरोरै सुठि
सुभग सुदेस अलबेली तेरी लाँक है॥

**पिडली मुखा ऐडी, तलवा (महावर और मेहदी)**

किसी भी रूपवती रमणी के घुटने के नीचे के भाग का वणन हिन्दी रीतिकार कवियो ने बहुत कम किया है। प्रसिद्ध कविया म तो पिंडली और मुखा का वणन सामान्यत उपलब्ध नही होता। ऐडी और तलवा का वणन अवश्य किया गया है। बिहारी की नायिका की ऐडी को महावरी समझ नायिका द्वारा उसके मीडे जाने का वणन और तान म तैरती हुई पद्माकर की नायिका के पावा के रग स त्रिवेणी की छटा के उपस्थित हो जाने के वणन प्रसिद्ध ही हैं। घनआनन्द जी ने सुजान की पिंडली और मुखा (ऐडी क उपर चारा ओर का घेरा) का वणन कर सौन्दर्यदर्शियो को नई दृष्टि प्रदान की है अछूते अगा की रमणीयता पर मन रमाने का माग बताया है। उन्होने कहा है कि साक्षात रति सी सुजान की सुन्दर पिंडलिया की गोराई को देख कर मन उन्हा म अनुरक्त हो जाता है, पिंडलिया की छवि पर ही पागल मन कुछ देर मुखा की शाभा देखकर ठिठक रहता है और इसी प्रकार क्रमश ऐडी, तलवे और महावर म लीन होता हुआ उसके परा पर ही लुब्ध होकर बेसुध हो जाता है—

रति-साचें ढकी अढवाई भरी पिंडुरीन गुराई पैसि पग।
छबि घूमि घुर न मुर मुरयान सौं लोभी लरो रस झूमि खग॥
घनआनन्द एडिनि आनि मिडै तरवानि तरै तें भर न डग।
मन मेरो महाउर चायनि ज्यै सुय पायनि लागि न हाथ लग॥

तलवा की लाली और पैरा की महदी की चर्चा भी कुछ छन्दो मे की गई है। यथा—

(क) मिहँदी लगि पायनि रग लहै।

(ख) राते तरवानि तरें चूरे चोप-चाड पूरे
पावड़े लौं प्रान रीझि है कनावड़े गिर।

(ग) और सिंगारनि की सब ही रही याहि बिचारति ह्वौ मति रागति।
पायनि तेरे रची मिहँदी लखि सौतनि के तखानि तें लागति॥

समस्त शरीर तथा आभूषण

एकाध स्थल पर कवि ने सुजान के समूचे शरीर का और उसके प्रमुख आभूषणा का भी वणन किया है। समस्त शरीर का वणन करते हुए कवि न उसम मादकता विकास और उल्लास दिखाने के लिए उसम बसत के अधिवास की कल्पना की है और भूषण भूषित तन की चर्चा करते हुए कवि ने उनके प्रभावा का विशेष विवरण दिया है। ये वणन भी सुजान की अग-अग की उत्फुल्लता और आभरण सज्जा उपस्थित कर उसके रूप की भावना को उत्कष प्रदान करते हैं—

(क) बैस की निकाई सोई रितु सुखदाई तामैं
तरुनाई उलह मदन मयमत है।
अग-अग रग भरे दल फल फूल राज,
सौरभ सुरस मधुराई को न अत है॥
मोहन मधुप क्यों न लटू है सुभाय भटू
प्रीति को तिलक भाल धरे भागवत है।
सोभित सुजान घनआनद सुहाग सींच्यौ,
तेरे तन बन सदा बसत बसत है॥

(ख) गोरे डँडा पहुँचानि बिलोकत रीझि ऐंयौ लपटाय गयौ है।
पन्नन की पहुँचीन लखें पुनि आभा तरगनि सग रयौ है॥
नीलमनीन हियल बनी दचि रूप सनी सु घनीन छयौ है।
चारु चुरीन चित घनआनद वित्त सुजान के पानि परयौ है॥

इस प्रकार घनआनन्द जी ने अपनी प्रेमिका सुजान के अगा का सौन्दय वर्णित किया है जिनम कवि का रीझा हुआ हृदय भी लिपटा मिलेगा। रूप सौन्दय की यह वणना किसी कल्पित सौन्दय की नही है अपितु उनकी अपनी प्राणप्रिया सुजान की ही है जिसे वे नित्य देखते थ और जिस पर वे नित्य निसार होते थे। रूप वणना की इसी व्यक्तिनिष्ठता के कारण उनके रूप चित्र अत्यत पवित्र और एक विशेष प्रकार की भगिमा स परिपूर्ण हैं। उनम एक प्रकार की स्वच्छदता है जो परम्परागत सौन्दय चित्रों को दूर फेंक देती है। इन चित्रा की ताजगी और सुष्ठुता के सामने काव्य परम्परा के क्रमागत सौन्दय चित्र थोथ और फीके प्रतीत होते हैं, वे प्रत्यक्ष ही बासी लगते हैं। य तो हुआ सुजान के अगा का, देह का सौन्दय वणन। अब हम सुजान की

सौंदय वर्णना के उस दूसरे पक्ष पर विचार करना चाहते हैं जो अपेक्षाकृत सूक्ष्म है यद्यपि है इन्ही अगो स सबद्ध ।

**सुजान के रूप तथा अगों के सूक्ष्मतर सौंदय का वणन**

सुजान के रूप एव अग प्रत्यग के सौदय वर्णन की तो बात हो चुकी किन्तु अभी तक कवि की उस दृष्टि सौन्दय वर्णना की ही चर्चा हुई है जिसका विषय सुजान के स्थूल अग मात्र रहे हैं। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि इन स्थूल अग प्रत्यग वणन म भी कवि की दृष्टि सूक्ष्म ही रही है। फलत वह स्थूल अवयवो के सौन्दय का उद्घाटन करते हुए उनकी सूक्ष्म विशेषताओ तक भी गया है और अगो की कांति, उज्ज्वलता, अरुणाई, सौन्दय की सहजता, सुकुमारता मधुरता उनम निहित तृप्ति तीक्ष्णता, उन्माद शथिल्य, सुरभि, गरूर, तारुण्य ताजगी या नवीनता रसस्वरूप होना आदि बातो तथा अगो की मनोहर चेष्टाओ और प्रभावी एव ममस्पर्शी क्रिया-कलापो के चित्रण द्वारा घनआनन्द ने अपने प्रणय भाव के आलबन सुजान को राशीभूत रूप, रस और गध की एक वास्तविक विभूति के रूप म प्रस्तुत किया है। सुजान का नमगिक सुषमा सपन्न यह जीवन रूप हिन्दी काव्य के पाठक कभी नही भूल सकते। सुजान के इस सूक्ष्म सौन्दय का चित्रण करन वाले छन्दो की सख्या परिमाण म स्थूल सौंदय का चित्रण करने वाले छदो की अपक्षा बहुत अधिक है। अनक बार य छन्द सुजान के स्वभाव और आतर प्रकृति का भी द्योतन करते पाये जाते हैं।

**सुजान का रूप मुख कांति और छवि**

सुजान के रूप म सबसे अनुपम बात यह है कि वह जितना ही अधिक देखा जाता है उतनी ही उसम नई नई शोभा दिखाई देती चली जाती है। यह शोभा परिमाण म इतनी अधिक हो जाती है कि उसकी नदी सी उफन पडती है—

**(क) रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।**

**(ख) अग-अग नूतन निकाई उझिलनि छाई,**
**भौन भरि चली सोभा नदी लौं उफनि है।**

**(ग) जब जब देखिय नई सी पुनि पेखिय यौं,**
**जानि परी जान प्यारी निकाई की निधि है।**

**(घ) रूप की उझिल आछे आनन प नई नई,**
**तसी तरुनई नेह ओपी अरुनई है।**

घनआनन्द न कभी सुजान को अनुपम रूप से परिपूण या रूप की खान बतला कर आश्चय व्यक्त किया है कि ऐसी सुन्दरता की दृष्टि कस हुई विधाता न ऐसा आश्चयजनक सृजन किस प्रकार किया ? इसीलिए उसके रूप को अनेक बार अवणनीय कह दिया गया है—

**रूप निकाई अनूप कहा कहौं अगनि जोति सुरगनि जागति।**

उस रूप का कवि ने अपनी विशिष्ट आलकारिक शैली म भी वर्णित किया है जिससे रूप का और भी असाधारण उत्कर्ष लक्षित होता है। एक स्थल पर कहा है

कि सुजान का रूप नदियों मे पाये जाने वाले भँवर के समान है जिसके चक्करदार आवत म पड कर नेत्र डूबने लगते हैं। ननन बोरति रूप के भौंर' कह कर रूप की असाधारण शक्ति द्योतित की गई है। कभी कहा गया है कि रूप की जगमगाहट से भी सुजान की तुलना म रति के पास रत्ती भर भी रूप नहीं है—

सहज उज्यारी रूप जगमगी जान प्यारी,
रति परतीक आभा है न रोम रीस की।

इसी प्रकार अन्याय उपमानो का भी निराहृत किया गया है—

चारु चामीकर चद चपाल चपक चोखी,
केसरि चटक कौन लेखें लेखियति है।
उपमा बिचारी न बिचारा जांहि जान प्यारी,
रूप की निकाई और अब रेखियति हैं॥

एक जगह रूप को दीवाली के अवसर पर जोशीला जुआरी कहा गया है—

रूप खिलार ढिंवारी किये नित जीवन छाकि न सूधे निहारै।
नैननि सैन छल चित सो बित-चाव भर्यौ निज दाव बिचारै॥
जोति ही को चसको घनआनद चेटक जान सयान बिसारै।
जीव बिचारो पर्यौ अति सोचनि हारि रह्यौ सुक्हा फिरि हारै॥

रूप सम्बन्धिनी यह कल्पना कितनी नई है। इसी प्रकार एक जगह रूप की राखी भी बाँधी गई है। रूप चित्रण के लिए ऐसी रीति निरपेक्ष और स्वच्छन्द कल्पनाएँ प्रस्तुत करना घनआनन्द सरीखे स्वच्छन्द मति कवियो का ही काम था—

पानिप मोती मिलाय गुही गुन-पाट पुही सु जु ही अभिलाखी।
नीके सुभाय के रग भरी छिति जोति खरी न पर कछु भाखी॥
चाह तो बाँधी दै प्रीति की गाँठि सु है घनआनन्द जोबन साखी।
ननन पानि बिराजति जान जू रावरे रूप-अनूप की राखी॥

यहा पर अभिराम, स्वभाव हित जाति, चाह, प्रीति आदि की भी चर्चा कर रूप के साथ साथ सुजान के आभ्यतर स्वरूप का भी बडी निपुणता स उद्घाटन किया गया है। सुजान का ऐसा सुन्दर रूप घनआनन्द ने नना तो नना तदुपरान्त आँसुओ के प्रवाह म भी अंकित कर रक्खा है। रूप मुग्ध घनआनन्द यह नहा समझ पाते कि सुजान के रूप मे यह विशेषता है जो वह अश्रु प्रवाह पर भी अंकित हो सका है या स्वत उनके चितेरे चित्त के सामर्थ्य की विलक्षणता है—

लिखि राख्यो चित्र यों प्रवाह रूपी ननिनि प,
लही न परति गति ऊलट अनेरे की।
रूप को चरित्र है अनदघन जान प्यारी,
अकि धौं बिचित्रताई मो चित चितेरे की॥

अपने इस रूप सौंदर्य के आतिशय्य के कारण ही सुजान जब तक गुमान भी किये रहती थी इस तथ्य की ओर भी घनआनन्द ने कुछ छन्दो म सकेत किया है—

कभी उसे 'रूप मतवाली' बतलाया है कभी 'रूप गुन ऐंठी' कह कर उसके इतराये रहने की बात कही है।

रूप की सुन्दरता के साथ-साथ मुख की कांति का वर्णन भी अनेक बार आया है। मुख की कांति का सम्बन्ध वर्ण दीप्ति से भी है और आंतरिक प्रकाश या चैतन्य से भी। सुजान की मुख कांति में दोनों का प्रकाश अंतर्निहित है। मुख कांति के वर्णन इस प्रकार हैं—

(क) सहज हँसौहीं छबि छवति रँगीले मुख
दसननि जोति जाल मोती माल सी दर।

(ख) नेकु हँसे सु करोरिक चंदनि चेरो कर दुति दंत अमोलनि।

(ग) माधुरी गहर उठ लहर लुनाई जहाँ
कहाँ लौं अनूप रूप पानिप बिचारिये।

(घ) आनन्द उज्यारी मुख सुख रंग रिधि है।

(ङ) हास बिलास भरे रस कन्द सुआनन त्यों चखहोत चकोर।

(च) मंडित अखंड घनआनन्द उजास लियें
तेरे तन दीपति दिवारी देखियति है।

(छ) मुख ओप अनूप बिराजि रही ससि कोरिक वारने को रति है।

(ज) झलक अति सुन्दर आनन गौर।

(झ) छबि को सदन, गोरो बदन रुचिर भाल
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं।
दसन दमकि फलि हियें मोती माल होति,
पिय सौं लडकि प्रेम पगी बतरानि मैं।
आनन्द की निधि जग मगति छबीली बाल,
अगनि अनग रंग ढुरि मुरि जानि मैं॥

मुख में कांति के उत्पादक कारण अनेक हैं—सहज सहास मुख मंडल, कांति मंडित दन्तावलि स्वयं मुख का प्रकाश या वर्ण (गोराई) आदि। मुख की कांति के अभिवर्धक कारण हैं—हास विलास बोल चाल आदि। मुख की कांति और शोभा के अन्य उपादान हैं—माधुर्य की उठती हुई लहर रूप और आंतर उल्लास आदि। घनआनन्द की प्रेयसी सुजान की छवि मौक्तिक दाम के समान उज्ज्वल है करोडों चन्द्रमाओं की छटा को फीका करने वाली है उसकी रूपाभा माधुर्य की ऊँची लहरें तरंगित करने वाली हैं वह अखंड आलोक से मंडित है तथा अनेक परिमाण में रस की सृष्टि करने वाली है। उसका उज्ज्वल मुख सुख और रंग की अनन्त सम्पदा (ऋद्धि) है छिटकी हुई केशराशि के बीच उसका उज्ज्वल और दीप्त मुखमंडल ऐसा प्रतीत होता है जैसे चिक से चन्द्रमा की बहन झाँक रही हो। आनन की ऐसी उज्ज्वल दीप्ति के समक्ष एक भी उपमा नहीं ठहरती—

(क) आनन्द उज्यारी-मुख सुख रंग रिधि है।

(ख) मानौं घनआनन्द सिंगार रस सों सँवारी
चिक में बिलोकति बहनि रजनीस की।
(ग) आनन की सुघराई कहा कहौं जसी बिराजति है जिहि औसर।
चन्द तो मद मलीन सरोरुह एकहु रग न दीजिय जो सर॥

छवि या मुख की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने उसकी सहजता या स्वाभाविकता, रंगीलेपन, हँसीलेपन, अनुपमता, निरतरता और अकथनीयता की विशेष चर्चा की है। देखिये—

(क) सहज सुछबि दलें दबि जाँहि सब बाम,
बिन ही सिंगार और बानिक बिराज बनि।
(ख) तेरे बिना ही बनाए का बानिक जील सची रति रूप मलापन।
को कबि को छबि को बरन रचि राखनि अग सिंगार कलापन॥
(ग) निसि द्यौस खरी उर माँझ अरी, छबि रग भरी मुरि चाहनि की।
(घ) सहज हँसौहीं छबि फबति रँगीले मुख।
(ङ) केलि की कला निधान सुन्दरि महा सुजान,
भात न समान छबि छाँह प छिपय सौति।
(च) तेरी निकाई निहारि छकें छबि हू को अनुपम रूप कहयों है।
(छ) वे घनआनन्द रीझि छए लकि तो छबि आन क्यों आँखिन छूजति।
(ज) कसें घनआनन्द सुजान प्यारी छबि कहौं
दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है।

अगदीप्ति

जसी शोभा और कांति सुजान के मुखमडल पर सतत छाई रहती है वैसी ही आभा उसके अगो मे भी सदा बनी रहती है। घनआनन्द ने उसके अगो की अरुण ज्योति का वर्णन किया है और कहा है कि उसमे सच्चा पानी है वे रगमय है उसके अगो के थोडा हिल जाने या बचन हो उठने पर उनसे अनग रग ढरे बिना नही रहता। यह जँगैट (अगदीप्ति) एडी से शिखा तक देखी जा सकती है। उसके अग रग की माधुरी वस्त्रो से छनी पडती है दर्पण से उसके अगो की दीप्ति की तुलना करना अपनी बुद्धि के कुण्ठित होने का परिचय देना है उसके अग अग मे कामकला की अभेद सम्पदा विलसित होती रहती है। अखण्ड प्रकाश से मडित सुजान के शरीर मे दीपावली की सी शोभा दिखाई देती है उसके हसते हुए अधरो मे गुलाल की सी लालिमा है और चमकते हुए दाँतो मे कपूर की सी शुभ्रता, उसके अगो की असाधारण वर्णच्छटा के कारण उसके अग अग से रूप रग और रस बरसा पडता है कान्ति की लहरें उठा करती हैं और ऐसा लगता है कि अब रूप धरती पर चू पडेगा। उसके अगो की कान्ति और वर्णच्छटा को देखकर लगता है जैसे उसके अगो की आभा ही द्रवित स्रवित हो ससार मे नाना रगो के रूप मे अवतरित हुई है। सुन्दर सलौने अगो की ऐसी आभा देख कर मन मुग्ध हो जाता है, उसकी ज्योति

जब भी जगती (गोचर होती) है नेत्र रस मे पग जाते हैं दर्शक आत्म-चेतना शून्य हो जाता है आदि आदि—

(क) अगनि पानिप ओप खरी।

(ख) अग अग बिराजति रगमई।

(ग) आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल,
अगनि अनग रग ढुरि मुरि जानि मैं।

(घ) ऐंडी तें सिखा लौं है अनूठिय अँगेट आछी
× × ×
बरसति अग रग माधुरी बसन छनि।

(ङ) आरसी जो सम दीज बूझ का अबूझ कोज।

(च) अग अग केलि कला सपति विलास।

(छ) मडित अखड घनआनन्द उजास लियें,
तेरे तन दीपति दिवारी देखियति हैं।

(ज) दसन बसन ओली भरिय रहै गुलाल
हँसनि लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ कर।
साँसनि सुगन्ध सोधे कोरिक समोय धरे
अग अग रूप रग रस बरस्यौ कर॥

(झ) अङ्ग अङ्ग आभा सग द्रवित स्रवित ह्वै क
रचि सचि लीनी साँज रगनि घनेरे की।

(ञ) सुन्दर सलोने लोने अगनि की दुति आगें,
मन मुरझानो मन्द मन को सो मल है।

(ट) जाकी जोति जाग रस बाग हो चकोर नैन।

(ठ) आछे अग हेरि फरि आपौ न निहारिय।

एसी अपूर्व जिसकी अगच्छटा थी उसके प्रेमी की रीत्य और चित्त की दशा विशेषत वियोग म क्या और कैसी रही होगी सोचन की चीज है। अगदीप्ति के इन समस्त वर्णनो स भी चमत्कारपूर्ण वर्णन वह है जिसकी चर्चा एक बार पहले भी की जा चुकी है और जिसके आत्यतिक सौन्दय क कारण जिसे फिर यहाँ उद्धृत करन का लोभ सवरण नही किया जा सकता। यह और कोई नही वही सुजान है जिसका घनआनन्द न बार-बार वर्णन किया है जिसकी शतशत छवियो को हमारे सामने रक्खा है पर यह वह छवि है जो भुलाये न भूलेगी। इसम भी अगदीप्ति की वर्णना ही प्रधान है। गौर रूप वाली असाधारण कान्तिशालिनी सुजान ने एक दिन बडे चोप से (चाव और उत्साह के साथ) चुप कर एक सावली साडी पहन ली थी। रगो की यह विपरीतता असाधारण विरोधाश्रित सौन्दय तथा विद्युच्छटा बन कर घनआनन्द के नेत्रो म समा गई थी। उस अद्भुत कान्तिपूर्ण छवि को देखकर मुग्ध भाव से घनआनन्द ने यह छन्द लिखा था—

स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहै अमावस अंक उज्यारी।
धूम के पुञ्ज में ज्वाल की मालती पं दग सीतलता सुखकारी॥
क छकि छायो सिगार निहारि सुजान तिया-तन-दीपति प्यारी।
कसी फबी घनआनन्द चोपनि सों पहिरी चुनि सावरी सारी॥

सौकुमार्य सलज्जता, यौवनोन्माद (तारुण्य दीप्ति), अरुणाई, सरसता और सुगन्धि सौन्दर्य के अन्य सूक्ष्मतर उपादानों में उक्त बातों का वर्णन कवि ने किया है। सुजान के सौकुमार्य का, उसके अगों के 'काँवरे' (कोमल) होने की बात दो-चार जगह आई है, उसकी लाड-दुलार भरी मूर्ति की मृदुता प्रशसित हुई है। उसके अगों की सुकुमारता का कथन एक जगह बहुत सुन्दर और सप्राण बन पड़ा है। सुजान की चोली में बेल बूटे पड़े हुए हैं या चुनट पड़ा हुई है। उसके अग इतने कोमल हैं कि ये बेल-बूटे और चुनटें भी उस पर उपट आती हैं। गौर करने की चीज है यह नाजुक-ख्याली जो फारसी शायरी की जोड-तोड पर रखी गई चीज भी कही जा सकती है उससे प्रभावित भावना और कल्पना भी मानी जा सकता है। जिसके अगों में ऐसी सुकुमारता हो वह छूने की नहीं देखने की ही चीज हो सकती है, छूने से तो वह सारा सौन्दर्य ही बिगड जायगा, सौकुमार्य ही नष्ट हो जायगा, सौंदर्य को दुख और आघात पहुंचेगा—

चातुर है रस-आतुर होहु न बात सयान की जात क्यों चूके।
ऐसी अठानिन ठानत हौ कित, धीर धरौ न, परौ ढिग ढूके॥
देखि जियौ न छियौ घनआनन्द कावरे अग सुजान-बधू के।
चोली-चुनावट चीन्हैं चुभैं चपि होत उजागर दाग उतू के॥

लज्जा यों तो मन का एक विकार है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम नेत्र हुआ करते हैं। यह लज्जा स्त्रियों में विशेष पाई जाती है बल्कि उनके लिए अनिवार्य कही जाती है और लज्जा से रहित नारी नारीत्व से रहित समझी जाती है। इसी धारणा के अनुसार भारत में लज्जा को स्त्री का एक भूषण, उनके व्यक्तित्व का एक आवश्यक गुण अथवा अग तक ठहरा दिया गया है। उसकी इस लज्जा या सकोच वृत्ति का प्रकाशन नेत्रों के ही माध्यम से हुआ करता है। इसीलिए उसके नेत्रों अथवा चितवन का वर्णन करते हुए घनआनन्द जी ने उसकी सलजता का भी चित्रण किया है। यों तो अनेक छदों में इस राज का निदर्शन हुआ है किन्तु मुख्य रूप से ये पक्तियाँ इस प्रकरण में द्रष्टव्य हैं—

(क) लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी
लसति ललित लाल-चख तिरछानि में।
(ख) लाज-लडी बडी सील गसीली सुभाय हँसीली चित चित चोप।
(ग) चचल बिसाल नैन लाज भीजिय चितौनि।
(घ) मोर कज खजन कुरग मान भग कर,
सोंचे घनआनन्द खुले सकोच सों मढे।

(ङ) रसहि पिवाय प्यासे प्राननि जिवाय राख,
लाज सो लपेटी लस उघरि हितौन को।

(च) सोभा बरसीली सुभ सील सा लसीली
सु रसीली हँसि हेरें हर बिरह तपति है।

(छ) बडी अखियानि मैं अजन रेख लजीली चितौनि हियो रस पाग।

इन पक्तिया म लज्जा का मम्बन्ध चितवन से स्थापित करके वर्णित किया गया है। चितवन लाज से मानो आवष्टित है या लज्जा से ही भीगी हुई है। ये कथन पर्याप्त मार्मिक हैं। लज्जा मे लपटी हुई सील से गसी हुई या लसी हुई अन्त करण के प्रेम को व्यजित करने वाली दृष्टि हृदय का सताप दूर करने वाली है सकोच से मढी हुई चितवन कसी हर्षोत्फुल्ल कर देने वाली है हृदय का आनन्द रस म पाग देने वाली है। ये लाज व्यजक उक्तिया कसी मनोरम हैं। एक पूरा का पूरा छन्द ही घनआनन्द ऐसा रच गये हैं जिसमे केवल लज्जा का ही चित्रण किया गया है —

घूघट काढ़ि जो लाज सकेलति लाजहि लाजति है बिन काजनि।
ननिनि बननि मैं तिहि ऐन सु होत कहा ऽब सजे पट साजनि।
सील की मूरति जान रची बिधि तोहि अचभे भरी छबि छाजनि।
देखत देखत दीसि पर नहि यौं बरस घनआनन्द लाजनि॥

घूघट काढ कर सुजान जिस लज्जा का प्रदशन करती है उसे देख कर तो स्वय लज्जा भी लज्जित हो जाय। प्रदशन म कृत्रिमता का भाव है कृत्रिम लज्जा ही सही सुजान उसके निदर्शन मे भी परम प्रवीण थी अभिनय आदि की कलाओ मे पारगत नतकी जो ठहरी। उसका लज्जा का अभिनय भी वास्तविक लज्जा से बढ कर ही होता था। पट और घूघट द्वारा व्यजित लज्जा तो कम थी उससे अधिक लज्जा तो उसके नेत्रो और वचना मे थी। यहा घनआनन्द ने बडी सुन्दरता से लज्जा की व्यक्ति वचना द्वारा भी करा दी है। एक जगह गति के अन्तभूत बना कर या गति के साथ जोड कर भी कवि ने सुजान की सलज्जता का चित्रण किया है —

गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ बेलि फली।

सुजान के यौवन का वणन करते हुए उसके यौवन के गरूर या अभिमान का उसकी गुरुता का चोप और चटक का यौवन के नशे से थके हुए या प्रमत्त होने का यौवन के मरोर का, यौवन के कारण शरीर और स्वभाव म उत्पन्न अलबेलपन का, तारुण्यदीप्ति अथवा यौवन के तज का कथन किया गया है। जसे—

(क) जोबन गरूर गरबाई सो भरे बिशाल
लोचन रसाल चितवनि वक छल है।

(ख) रूप-लाड जोबन-गरूर चोप चटक सों
अनखि अनौखी तात गाव ल मिहीं सुर।

(ग) रूप मतवारी घनआनन्द सुजान प्यारी,
घूमरे कटाछ घूम कर कौन प घिर ।

(घ) घनआनन्द जोबन मातीदसा छबि ताकत ही मति धाक धई ।

(ङ) जोबन रूप अनूप मरार सों अगहि अग लस गुन ऐंठी ।

(च) सरस सनेह सानी राजति खरौनी दसा,
तरुनाई तेज अरुनाई पेखियति है।

(छ) जोबन गहेली अलबेली अति ही नवेली
हेली ह्वै सुरति बेली आँचर टर टरी ।

(ज) रूप खिलार दिवारी किये निल जोबन छाकि न सूधे निहारै ।

सुजान के यौवन से छक या उन्मत्त रूप का चित्रण कुछ छन्दो मे अधिक खुले हुए रूप म भी देखा जा सकता है—

अगनि पानिप ओप खरी निखरी नव जोबन की सुघराई ।
ननिन बोरति रूप के भौंर अचम्भे भरी छतिया उघराई ।।
जान महा-गरुवे कुन में घनआनन्द हेरि रह्यौ थुथराई ।
पने कटाछनि ओज मनोज के बानन बीच बिघी मयुराई ।।

शयन या सम्भोग वणन क जो दो चार छन्द उपलब्ध हैं उनमे आलस्य, जमुहाई अँगडाई आदि के वणनो द्वारा भी सुजान क यौवनोन्माद की व्यजना की गई है ।

इस यौवनोन्माद से ही सम्बन्धित चीज है अरुणाइ जो अगो का सौन्दर्य और रूप की छटा का अभिवधन करती हुई गोचर होता है । अगो म जो लाली है वह जहाँ एक तरफ स्वास्थ्य और यौवन का प्रमाण ह वहीं अतर्दीप्ति की भी प्रति च्छाया है । सुजान क तारुण्य क कारण उसके अगो म अरुणाई दिखाई देन की बात तो ऊपर क ही एक उदाहरण म कथित हुई है—'तरुनाई तेज अरुनाई पेखियति है ।'

उसके मुसकराने के समय अधरो की और सम्पूण मुख की लाली का वणन किया गया है । एक अन्यत्र भी घनआनन्द न यही कहा है कि तारुण्य या यौवन की तीक्ष्णता या अतिशयता के कारण सुजान म लाली या अरुनाई का आधिक्य दिखाई देता है—"रूप की उज्जल आछ आनन प नई नई, तसी तरुनई तहें ओपी अरुनई है ।" उसके स्थान पर तो यह कथन बडी सूक्ष्मता लिय हुये है—हँसत समय लाली अधरो से मानो कपोलो पर आ जाती है—अधरानि तें आनि कपोलनि जाग । कहीं-कहीं अरुणाई का वणन नत्रो म भी किया गया है किन्तु वह सयोगकामना की पूर्ति और तृप्ति-जनित अरुणाई है—'अँखियानि मैं छाकनि की अरुणाई हियो अनुराग ल बोरति है ।' अधरो की लाली का वणन इस प्रकार हुआ है—

(क) लालो अधरान की रुचिर मुसक्यान-सग
मब मुख मोर हो सिंदूरा की सी फल है ।

(ख) दसन बसन ओली भरिय रहे गुलाल ।

सुजान के मुख को सुख कद, अग अग को रस की निधि या रस राशि और स्वय सुजान को रसीली कह कर कवि ने यह व्यजित किया है कि रूप की राशि और काति की प्रतिमा सुजान अपने अग वभव, रूप लावण्य और परिपूर्ण यौवन के कारण परम रसमय थी। उसकी प्राप्ति मानो सुख का कद ही प्राप्त हो जाना था राशीभूत सुख की वह सरस प्रतिमूर्ति थी।

उसके अग सुगधित थे, मुख और श्वासो से सुरभि की लहर उठा करती थी। घनआनन्द का सौदय चित्र समस्त अपेक्षित गुणा की निधि था। यहा यह कथन आवश्यक नही कि कामसूत्र कथित पद्मिनी चित्रिणी आदि ऊँची जाति की कामिनिया के अगा मे सहज सुवास का बखान किया गया है। घनआनन्द की सुजान के सौदय वणन मे सुगधि तत्व, कवि की भावना और अनुभूति स सबन्धित था, वात्स्यायन क कामसूत्र से नही। घनआनन्द ने कहा है कि सुन्दर सुगधिया उसक अगा क सग ही बसा करती थी, उसके अग निसगत महका करते थे उसकी सासें उसके मुख की सुबास (सुगधि) से सन कर निकला करती थी (या सनी रहा करती थी)। एक जगह उन्हाने कहा है कि जब वह सास लेती थी ता उसकी सासा क साथ ऐसी सुगधि फूट निकला करती थी माना करोडा सुगन्धियाँ उसकी सासो म ही सिमटी हुई हा। यह सुरभि सुजान के रूप सौदय को पूणता प्रदान कर रही है—

**(क) सुठि सोंधो सु अगनि सग बस।**

**(ख) लाडलसी लहक महकै अग।**

**(ग) मुख को सुबास स्वास निसरति सनि है।**

**(घ) सासनि सुगध सोंधे कोरिक समोय धरे।**

**स्वभाव**—सुजान के सौन्दय चित्रा म बार बार उसका आन्तर स्वरूप या सौदय भी झलकता मिला है जिसकी चर्चा भी हम यथावसर कर आये हैं। कुछ स्थाना पर उसके रूप गव या अभिमान, यौवन गरूर या गुमान आदि की झलक देखी गई है पर मुग्ध चित्त घनआनन्द ने कभी भी इसे दोष के रूप म नही ग्रहण किया है क्योकि प्रेम अन्धा होता है और स्वाथरत प्रेमी अन्धगति से प्रिय की ओर दौडता है वह दोष नहीं देखा करता, दोषा को देखन का सामथ्य भी उसम नही होती, दोष दिखाई भी देता है तो उसका मन उस दोष को दोष मानने को तयार नही होता। सुजान के गुमान और गरूर की चर्चा प्रसगवश ही घनआनन्द ने की है। उन्हाने कहा है कि रूपाधिक्य और यौवन गरूर के कारण वह जब गाती है ता भी ईषत् रोष की ही मुद्रा म वह रहा करती है, उसकी गदन भी एक विशेष गर्वीली मुद्रा म तनी रहती है—

**रूप-लाड जोवन-गरूर चोप चटकसों**
**अनखि अनोखी तान गावै ल मिहीं सुर।**

× × ×

सरस सुजान घनआनन्द भिजावैं प्रान,
गरबीली ग्रीवा जब आनि मात पै ढुरें।

यौवन और रूप के आधिक्य के कारण जरा वह तनी हुई या ऐंठी सी रहती है और एक प्रकार की तत्सवर्धिनी मस्ती भी उसके ऊपर छाई रहता है—

(क) जौवन रूप-अनूप-सरोर सों अगहि अग लस गुन ऐंठी।

(ख) रूप-गुन ऐंठी सु अमठी उर पठी बठी
लाडनि निरठी, मति बोलनि हरैं रही।

यौवन के ही गरूर या अभिमान के कारण उसके नेत्रों में भी एक प्रकार की वक्रता आ गई है—

जोबन गरूर गरुवाई सों भरे बिसाल
लोचन रसाल चितवनि बक छल है।

इस रूप गुमान और यौवन गरूर के साथ साथ एक प्रकार की मस्ती, उधर दूसरी तरफ सलज्जता और बार-बार उसकी हसौंही छवि का वर्णन कर उसकी स्मितियुक्तता या सहासता का जो सकेत किया गया है उससे लगता है कि सुजान प्रसन्नवदन रहने वाली स्मितिमती कमनीय रमणी थी जो समय-समय पर रूप और यौवन के गर्व और दर्प से तनी तन या ऐंठ भी जाया करती थी। घनआनन्द ने उसके स्वभाव को वक्र न कह कर सीधा ही बताया है। अपनी व्यथा के चित्रण में जरूर उसे कठोर निष्ठुर उपेक्षापूर्ण आदि कहा है पर वहा भी दोष कभी भी उसके मत्थे नही मढ़ा है। रूप चित्रण प्रधान छन्दों मे घनआनन्द ने बहुत स्पष्ट शब्दों में उसके स्वभाव के सीधेपन और अच्छेपन का कथन किया है—

(क) तू अलबेली सरूप की रासि सुजान बिराजति सादे सुभायनि।

(ख) नीके सुभाय के रग भरी हिल जोति खरी न परै कछु भाखी।

**गति सम्बन्धी अथवा क्रियागत सौंदर्य के चित्र चितवन, मुस्कान या हँसना, बोलना और चलना**

रूपवती सुजान का हर कार्य व्यापार रमणीय कहा गया है। उसकी वक्र भौंहों का हिलना, चपल होना, उसकी घुमावदार भौंहों का तन कर चमकना तथा देखना तो विशेष सुखद कहा गया है। अपनी चचल और सुन्दर आखों को किंचित टेढ़ा करके जब वह देखती है तब वह नाना प्रकार के भाव देती है। उसके रसाल लोचनों की वक्र चितवन देखने ही योग्य होती है। इस प्रकार उसके चितवन की कितनी ही विशेषताओं का कवि ने उद्घाटन किया है—उसके विशाल नेत्रों की चितवन लज्जा से भीनी रहती है आलस्य से युक्त भी कही गई है तथा उसमें पनापन या तीक्ष्णता भी वर्णित हुई है—

(क) लाजनि लपटी चितवनि भेद भाय भरी,
लसति ललित लोल-चख तिरछानि मैं।

(ख) लोचन रसाल चितवनि बक छल है।

(ग) चचल बिसाल नन लाज भीजिय चितौनि।
(घ) पने नन तेरे से न हेरे मैं अनेरे यहूं,
घाती बडे काती लिये छाती प रहैं चढ़े।
(ङ) घूमरे क्टाछि घूम कर कौन प घिर।
(च) सोभा-बरसीलो सुम सील सों लसीली,
सु रसीली हँसि हेरें हर विरह तपति है।
(छ) चल न चितौति बक भौंहनि चपल हौनि,
बोलनि रसाल मन मन्त्र हू कौं सिधि है।
(ज) लाग चौंघ चेटक अमेट ओपी भौंहैं तनि।
(झ) नन अन्यारे तिरोछी चितौनि में हेरि गिर रति प्रीतम को सर।
(ञ) ननिन सन छल चित सो बित चाव भर्‌यो निज दाव विचार।
(ट) लाज लडी बडी सील गसीली सुभाय हँसीली चित चित लोप।
(ठ) पने कटाछन ओज मनोज के बानन बीच बिंधी मुयराई।
(ड) मद जोवन रूप छ कीं अखियाँ अवलोकनि आरस रग रली।
(ढ) बडी अँखियान मैं अजन रेख लजीली चितौनि हियो रस पाग।
(ण) अरु बक बिसाल रँगीले रसाल बिलोचन में न क्टाछ कमी।

एक सम्पूण छ द म केवल चितवन का ही वणन किया गया है—

रसहि पिवाय प्यासे प्राननि जिवाय राख
लाज सो लपेटी लस उघारि हितौन की।
निपट नवेली नेह झेली लाड-अलबेली,
मोह ढरहरी भरी बिरह रितौन की॥
लोने कोने छव छबीली अखियानि के सु
रचकौ न चूक घात औसर चितौनि की।
एरी घनआन द बरसि मेरी जान तरी
हियो सुख सींचै गति तिरछी चितौन की॥

सुजान की चितवन का वणन करत हुए उसका तिरछापन (बक्ता) सलज्जता (लज्जा से लिपटी होना, लज्जा से भीजी हुई होना लाज लडी होना, लजीली चितवन) शीलयुक्तता (सील गसीला सील सो लसीली होना) पनापन या छुरे की सी तीक्ष्णता (घातकता अन्यारापन या अनियारापन नुकीला होना, कटाक्षपूण होना घात करने के अवसर को कभी न चूकना) नाना भाव भेन्गा की व्यजकता, हसीली होना प्रमत्तता (घूमरे क्टाछि) शोभा वणन का गुण प्रभाव या मार करने म काम देव के बाण स भी अधिक सामर्थ्यवान होना अपन दाव या घात म न चूकना आलस्य नशा या खुमारी का रग होना, प्रेम के रहस्य को जतलाना आदि बातो का वणन किया गया है।

सुजान की मुस्कान के वर्णन में कवि ने कहा है कि उसकी मृदु और मिठास भरी मुस्कान से रस निचुड़ा पड़ता है उसकी माधुर्य से परिपूर्ण मुस्कान की मिठास अमृत में भी नहीं है। हुलास से भरी उसकी मुस्कान पहले अधरों पर आती है पीछे कपोलों पर अपनी दीप्ति या जागृति दिखलाती है—

(क) रस निचुरत मीठी मदु मुसक्यानि मैं।

(ख) हुलास भरी मुसकानि लस अधरानि तें आनि कपोलनि जागै।

(ग) वह माधुरियैं सों भरि मुसक्यानि मिठास लहै कमीं बिचारो अमी।

सुजान के हँसने की शोभा (हसनि लसनि सा) का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

(क) हँसनि लसनि घनआनन्द जुन्हाई छाय।

(ख) नेकु हँसे सु करोरिक चन्दनि चेरो करै दुति-दन्त-अमोलनि।

(ग) मोहनी की खानि है सुभाय ही हँसनि जाकी,

लाडिली लसनि ताकी प्रानिनि तें प्यारियै।

(घ) जानि हियें घनआनन्द सों फुलि कलि फब सु चँबेली की चौसर।

(ङ) फन्द भी हँसनि घनआनन्द दृगनि गर।

(च) हँसनि लसनि त्यों कपूर सरस्यौ करै।

(छ) पुहुपावलि हास बिकासहिं पूजति।

कवि एक तो सुजान के हँसन से जो शुभ्रता प्रसरित होती है उसकी उपमा चन्द्रिका से करता है इतना ही नहीं उसके प्रफुल्ल वदन की हँसी पर मुग्ध हो कोटि कोटि चन्द्रमाओं की कान्तियों को फीका ठहरा देता है। ऐसा करने में सुजान के सौन्दर्य के इस सूक्ष्म अंश के प्रति भी उसकी असामान्य आसक्ति लक्षित होती है। उसकी हँसी को कभी चमेली की बिछी हुई चौसर कहा है कभी उसमें कपूर की सरसता अथवा सुगन्धि की भावना की है कभी पुष्प राशि को उसकी हँसी की उपासना करते दिखाया है। ये सभी सादृश्य एवं वर्णनायें नितान्त स्वच्छन्द पद्धति पर हैं और उसकी हँसी की शुभ्रता, मृदुता सुगन्धि और पवित्रता की अभिव्यक्ति करती पाई जाती हैं। सुजान की हँसी को सहज और स्वाभाविक बतलाते हुये उसकी मोहित करने या रिझा लेने की शक्ति का भी संकेत किया गया है यह कहते हुये कि उसकी हँसी आँखों के गले के लिये फन्दे के समान है या मोहनी की खान है जो अपने इन विशिष्ट गुणों के कारण घनआनन्द के प्राणों को बहुत प्यारी है।

सुजान के बोलन में मिठास (रसालता), प्यार, स्निग्धता प्रसन्नता अमृत गुण आदि बातों का वर्णन किया गया है—

(क) पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि मैं।

(ख) हँसि बोलनि मैं छबि फूलन की बरसा उर ऊपर जाति है ह्वै।

(ग) बोलनि रसाल मन मन्त्र हू कौं सिधि हू।

(घ) पाठ कियो करैं आठहू जाम, सु बोलनि सीखिबें कोकिला कूजति।

सुजान के बोलने के ढग को अच्छा और सुधायुक्त कहा गया है (आछी बोलनि और बोलनि सुधा समोई) वह सदा हँस कर बोलती है हँसी उसकी बातो म घुली मिली रहती है। वह जब बोलती है तब खिलखिला कर बोलती है जो चाँदनी क समान, हल्की धूप के समान हृदय पर हो उठन वाली फूलो की वर्षा के समान अत्यत प्रिय लगती है। उसका बोलना अपनी मिठास मे कामदेव के मन्त्र का बाण से कम नही। कोकिला के स्वर म जो माधुय है वह तो केवल यही सूचित करता है कि अभी वह बोलना सीख रही है मधुर बाल के प्रथम पाठ पढ रही है—यह पाठ वह सीख किससे रही है ? सुजान स। बोली के सौन्दय के ये सूक्ष्म और मनमोहक चित्र कितने अपरम्परागत और स्वच्छन्द हैं यह स्वय स्पष्ट है।

सुजान की चाल या गति की सुदरता का वणन कवि ने इस प्रकार किया है—

(क) अगनि अनग रग ढुरि मुरि जानि मैं।

(ख) गति ल चलनि लखें मति गति पगु होति।

(ग) गति रीझि चायनि सों पायन परस कीज
रस लोभी बिबस मराल जाल धावहीं।

उसका मुडना घूम कर, गति लेकर या एक विशेष ऐंठ और ठमक क साथ चलना मरालो का उसकी गति के अनुकरण क लिए पीछे-पीछे दौडना सुजान की गति की उत्तमता के सूचक हैं। सभोग प्रसग म उसकी सलज्ज और शिथिल गति (गति ढीनी लजीली) का वणन किया गया है। उसक मुड कर देखने या चाहने देख कर मुडन कटि पर एक विशेष प्रकार का बल देकर आगे बढ जाने आदि की जो छवि है वह घनआनन्द के चित्त को बतरह मुग्ध किये हुए है।

सुजान के नृत्य, गीत और अभिनय का सौन्दय

मुहम्मदशाह रगीले के दरबार की वेश्या म नत्य गीत और अभिनय की कलाओ का परिपूण मात्रा म होना नितान्त स्वाभाविक था। उसके सौन्दय के इन पक्षो का विस्तृत वणन तो कवि न नही किया है पर कई जगह इनकी चर्चा अवश्य की है—

(क) तू अलबेली सरूप की रासि सुजान बिराजनि साडे सुभायनि।
ऐ परि नाच क साँच छकी जु लटू भयौ लाग्यौ फिर धुव पायनि॥

(ख) रूप-साड जोबन-गरूर चोप घटक सों
अनलि अनोखी तान गाय स मिहीं सुर।

(ग) कान है तान की रूप दिखावनि जान जब कछु राग अलापन।
नाचहि भाय के भेद बतावत ह घनआनद भौंह चलापन॥

(घ) नाच की घटक तास अगनि मटक रग,
साडिली सटक-राग सोमन लो फिरै।

अभिन निकाई निरखत ही रिझाई मति,
गति भूली डोलै सुधि सोधौं न लहौं हिरै ॥

(८) नाच लट्टू ह्वै लग्यो फिरै पायनि चायनि चाहि लड़ी लियें डोलनि ।
त्यौं सुर साँच सवाद सन मन मूठियै लागति बोन की बोलनि ॥

सुजान के नृत्य का प्रभाव चित्रित कर उसके नृत्य कौशल की व्यजना की गई है। नृत्य करते हुए सुजान भौंहो को चला चला कर नाना प्रकार के भाव भेदों का सूचन करती है या नाना प्रकार के प्रणय भावो का निवेदन करती है। नृत्य द्वारा भावों की सवेदना निश्चय ही कला की ऊची स्थिति मानी जायगी जो सुजान मे विद्यमान थी। उसके नृत्य की चकाचौंध कर देने वाली लटक मटक का भी उल्लेख कवि ने किया है। वह महीन स्वर मे गाती थी उसकी तान अनोखी होती थी अलाप लेते समय ही कानो को पता चल जाता था कि उसकी तान कसी हृदय वेधक होगी। उसके स्वरो के रसास्वाद मे मग्न मन को वीन (या वीणा) के स्वर झूठे या ओछे प्रतीत होते थे। गायिका सुजान के स्वर सान चढ़े हुए बाणो के समान तीक्ष्ण प्रभाव वाले थे, घनआनन्द के प्राण उससे बेतरह बिंध जाया करते थे—प्रान सुजान के गान बिंधे घट लोटैं परे लगि तान की चोटैं। नृत्य-गान कुशल सुजान का अभिनय सौन्दर्य तो बुद्धि को ही हर लेने वाला था। मुहम्मदशाह रँगीले को नाच-गान के साथ नाटक का भी बडा शौक था इस ऐतिहासिक सत्य का अत साक्ष्य सुजान की 'अभिनै निकाई' के कथन में पाया जा सकता है। इस तरह सुजान रूप रग गुण आदि मे ही नही अपने पेशे से सबधित कलाओ मे भी पारगत थी। उसकी यह कला निष्णातता सरस हृदय घनआनन्द को मुग्ध और विजडित कर देने के लिए बहुत हो गई थी। उसके रूप के स्वर्ण को जैसे सुगन्धि प्राप्त हो गई थी।

### कुछ विशेष चित्र

सुजान के सौन्दर्य के कुछ और भी स्फुट चित्र हैं जो यत्र-तत्र मिलते हैं। उदाहरण के लिए, उसके कपोलो पर उसके लटो की क्रीडा (लट लोल कपोल कलोल कर) या उसका हिंडोले पर झूलना—

राग अनुराग भाग सुभग सुहाग भीजी,
रीझनि छबीली झूल सरस हिंडोरना।

इसी प्रकार उसकी सभोग तृप्त छवियो या सुरतात सौन्दर्य के चित्र भी पर्याप्त अच्छे बन पडे हैं। सुजान सभोग सुख से तृप्त हो शयन के पश्चात उठी है, प्रात काल का समय है रात्रि के रति चिन्ह उसके अगो पर लक्षित हो रहे हैं, मुख पर और ही काति है, अग-अग मे काम की दीप्ति है, वह लज्जित भी हो रही है तथा जम्हाई और अगडाई भी ले रही है। पूरे बोल भी उसके मुह से नही निकल रह हैं—

रस आरस भोय उठी कछु सोय लगी लस पीक-पगी पलकै।
घनआनन्द ओप बढ़ी मुख और सु फलि फबीं सुथरी अलकै॥

अँगराति जम्हाति लजाति लखें अंग-अंग अनंग दिपै झलकैं।
अधरानि मैं आधिय बात धरै लडकानि की आनि परै छलकैं॥

एक दूसरा चित्र है जिसमे केलि-कला विधान, महासुन्दर सुजान सुरति के रंग रस से उल्लसित दिखाई गई है। उसकी मस्ती का चित्र देखिये—

पिय अंग संग घनआनन्द उमंग हिय,
सुरति-तरंग रस बिवस उर मिलौनि।
झूलनि अलक आधी खुलनि पलक स्रम,
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि॥

एक तीसरा छन्द है जिसमे रात्रि के सभोग रस मे जगी हुई आलस्यपूर्ण रीति से अगो को ऐंठती हुई तृप्ति से अरुण नेत्रो वाली सुजान का चित्र प्रस्तुत किया गया है—

रस रंनि जगी प्रिय प्रेम-पगी अरसनि सो अगनि मोरति है।
× × ×
अँखियानि मैं छाकनि की अरुनाई हियो अनुराग स बोरति है।

रति शिथिल दशा का एक और विचित्र उदाहरण लीजिये—

सुख-स्वेद कनी मुखचन्द बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली।
मद जोबन, रूप छकी अँखियाँ अवलोकनि आरस रंग रली॥
घनआनन्द ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दली।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ बेल फली॥

इन चित्रो मे तृप्ति का सौन्दय है तुष्ट शारीरिक वासनाजनित प्रसन्नता है, उन्मद यौवन की आकाक्षाओ की पूर्ति का बिम्ब है। इन छवियो मे पूरा सयम है और पूरा सौन्दर्य भी। सुजान का यह तुष्ट और प्रफुल्लित सौन्दय क्या है मानो मनोरथो से फलित वल्लरी हो।

एक और दुर्लभ चित्र है सुजान का जो हिन्दी काव्य साहित्य मे दुलभ कहा जा सकता है। यह है उसके शराब पीकर मस्त हाने का। हिन्दी काव्य म मदिरा पीकर छकी हुई स्त्री का वणन नही मिलेगा—वह या तो वेश्या हो सकती है या बाजारू औरत या फिर फारसी शायरी और रंग म भीगी हुई कोई मरणी। सुजान राज नर्तकी थी मदिरापान उसका दैनंदिन कम रहा होगा। उसका आसव पान से छका हुआ और उन्मत्त रूप भी चित्रित किया गया है। देखिये—

दृग छाकत हैं छबि ताकत हो मगननी जबै मधुपान छकै।
घनआनन्द मोजि हँसै सुलसै झुकि झूमति घूमति चौंकि चकै॥
पल खोलि ढक लगि जात जकै न सम्हारी सकै बलक डरु बक।
अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीझि इकौसी है लाज थक॥

सुजान के रूप सौन्दय की इस ब्यौरेवार चर्चा या विवचना के अनन्तर यही कहना शेष रह जाता है कि घनआनन्द ने सुजान के रूप के या सौन्दय के जो चित्र

उतारे हैं वे सामान्यत समग्रता लिये हुये हैं केवल एक अग को शेष अगो से पृथक कर देखने दिखाने की प्रवृत्ति उनम नहीं। उपयुक्त विवेचन म सुविधा और सौन्दर्य चित्रण को सम्पूर्ण रूप म उपस्थित करने की दृष्टि से ही अगो तथा सौन्दर्य के अन्याय उपादानो पर पृथक पृथक विचार किया गया है। अपने समस्त या सश्लिष्ट रूप मे ये छविया अत्यन्त प्रभावी और मोहक हैं जिनकी बानगी के तौर पर दो-तीन उदाहरण और प्रस्तुत कर प्रस्तुत प्रसग को समाप्त किया जाता है—

(क) झलक अति सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि ह्वै।
हँसि बोलनि मैं छवि फूलन की बरषा उर ऊपर जाति है ह्वै॥
लट लाल कपाल कलोल कर कलकठ बनी जल जावलि द्वै।
अग अग तरग उठ दुति की परिहै मनौ रूप अबै धर च्वै॥

(ख) रति साँव दरी अछवाई भरी पिडुरीन गुराइयै पेखि पग।
छबि घूमि धुर न मुर मुखान सों लोभी खरो रस झूमि लगै॥
घनआनन्द एँडिनि आनि मिड तरवानि तरे तें भर न डगै।
मन मेरो महाउर चायनि च्व तुव पायनि लागि न साथ लग॥

(ग) पानिप-पूरी खरी निखरी, रस रासि निकाई की नीवैंहि रोपै।
लाज-लडी बडो सील-गसीली सुभाय हँसोली चित चित लोपै॥
अजन-अजित थी घनआनन्द मजु महा उपमाति हू ओपै।
तेरी सौं एरी सुजान तो आखनि देखि ये आँखि न आवति मोप॥

(घ) वह माधुरियै सौं भरी मुसक्यानि, मिठास लहै क्यौं बिचारो अमी।
अरु बक बिसाल रँगीले रसाल बिलोचन मैं न कटाछ कमी॥
घनआनन्द जान अनूपम रूप तें राति नई जिय मांझ रमी।
न सुनी कबहूँ सु लखी, चित चोरेई लेति लुनाइय की लछमी॥

**सुजान के रूप का प्रभाव वणन प्रभावाभिव्यजक पद्धति पर रूप वणन**

रूप और सौन्दय अपनी साथकता ही खो देता है, यदि वह किसी को प्रभावित ही न करे, किसी के ससर्ग म न आय किसी को उसका रस और लाभ ही न मिले। वह गाँव मे फूले हुए उस गुलाब की तरह ही समझा जायगा जिसके आब का वहाँ आदर करने वाला ही कोई नही। उसका फूलना न फूलने के बराबर है। सुजान के रूप के उत्कष की व्यजना म उसके प्रभाव का निन्शन करन वाले अनकानक छद घनआनन्द न लिख डाले हैं। अनेक बार ये प्रभाव दिखाने वाले छन्द रूप सौन्दर्य की ऐसी गहरी व्यजना कर जाते हैं जसी साक्षात रूप चित्रण करने वाले छन्द नही कर पात। ब्रज भाषा के कवियों ने रूप चित्रण की इस पद्धति को, जिसे प्रभावाभिव्यजक रूप चित्रण की शैली कह सकते हैं बहुत अपनाया था। रूप वर्णन का यह ढग नितात स्वाभाविक भी है। रूप कसा है इसका पता तो वही द सकता है जिस पर उसका प्रभाव पडा यदि प्रभाव का कथन कर दिया गया तो रूप स्वत अभियजित हो उठता है।

घनआनन्द ने सुजान के प सौदय का बहुसरयक छ दो म बड़े विशद रूप मे प्रभाव वर्णित किया है। यह प्रभाव नैन मन, बुद्धि, प्रान, चित्त, मति आदि पर दिखला कर घनआनन्द ने यही सूचित किया है कि वह इतनी रूप सौन्दय शालिनी थी कि उनका समूचा अस्तित्व, समग्र अतर्बाह्य उससे बेतरह प्रभावित था। बहि सत्ता की अपेक्षा उनकी अत सत्ता उससे विशेष प्रभावित थी। रूप का यह प्रभाव कुछ बाहरी प्रभाव या हल्का फुलका असर मात्र बनकर नहा रह गया था उनकी सम्पूर्ण चेतना को झकझोर दन वाली शक्ति के रूप म था। इस प्रभाव का चित्रण इतनी अधिकता और विस्तार के साथ एक पर एक चले आने वाले नाना छन्दो मे किया गया है कि यह उनके काव्य के अन्तगत अध्ययन या विवेचन का एक स्वतन्त्र प्रसग ही हो गया है। सुजान के रूप सौन्दय का प्रभाव रूप सौन्दय लिप्सा या लोभ फिर प्रेम और रीझ के रूप म परिणित हो जाता है। अपनी उसी ललक, रीझ या आसक्ति का घनआनन्द ने शत शत रूपा मे चित्रण किया है। जसा पहले कह चुके हैं सुजान के रूप सौन्दय एव उससे सम्बन्धित सौन्दय के अन्यान्य पूव विवेचित उपादानो का प्रभाव सौन्न्य वणन के साथ साथ भी होता चला है और पृथक से स्वतन्त्र रूप मे। साथ साथ वर्णित प्रभावा की कुछ बानगी उन अवतरणो मे भी देखी जा सकती है जो रूप सौन्दय वणन के सदभ मे दिये गये हैं अन्य प्रकार की प्रभावा भिव्यक्तियो की चर्चा सम्प्रति अभिप्रेत है। घनआनन्द की वाह्य सत्ता का सर्वोत्कृष्ट और चेतन उपकरण उनके नत्र हैं तथा उनकी अत सत्ता का जीवततम रूप उनका मन है। ये दानो क्रमश उनकी वाह्य एव अत सत्ता के प्रतिनिधि कहे जा सकते है। यहाँ पर हम इन्ही दो पर पडे सौन्दय प्रभावो के आकलन द्वारा घनआनन्द पर उनकी प्रेयसी के असाधारण रूप सौन्दय का प्रभाव दिखलान की चेष्टा करेंगे।

यद्यपि सुजान के रूप का प्रभाव अधिकाश छन्दा म नेत्रो और मन पर साथ ही साथ पडा दिखाया गया है जो स्वाभाविक भी है और सगत भी क्योंकि रूप नेत्र पर अलग असर डाले और मन पर अलग यह तो सम्भव नही नेत्रो तथा मन पर प्रभाव तथा दोनो की रीझ परस्पर सबद्ध व्यापार है फिर भी प्रभाव निदशन की सुविधा के लिए इन दोनो पर पडे प्रभाव का हम अलग अलग ही अध्ययन कर रहे हैं और जसा पहले कह चुके हैं नेत्र घनआनन्द की वाह्य सत्ता पर पडे प्रभाव का प्रतिनिधित्व करते हैं मन उनकी अत सत्ता पर पडे प्रभाव का।

**नेत्रों अथवा वाह्य सत्ता पर सुजान के रूप का प्रभाव सुजान के रूप को देख कर नेत्रों की दशा—रीझ या आसक्ति**

नेत्रो अथवा वाह्य सत्ता पर सुजान के रूप का प्रभाव दिखलाने वाले छन्दो की सख्या बहुत बडी है।[1] अपन नेत्रो पर सुजान के रूप का प्रभाव दिखाते हुए

[1] सुजानहित छन्द स० १ २, ४१ ११२ १२७ ११७ १२० १३२, १३३, १४२ १५३, १७१ १७५ १७६ १८५ १६७, १६६ २००, २०१, २०४, २५३, २११, ४३४, ८६, ६७

घनआनन्द जी कहते हैं कि जब से सुजान को इन नेत्रों ने देखा है दृष्टि थक गई है, (प्रेम शिथिल हो गई हैं) पलकों के कपाट सदा खुले रहते हैं और पुतलियां स्थिर हो गई हैं। मेरी आखें सुजान के रूप द्वारा चारों तरफ से घेरी जाकर उसके रूप की चोरी ही गई है तथा रूप से तृप्त और शिथिलांग हो वहीं पड़ी रहती हैं। ये आखें जितना ही उसे देखती हैं उतनी ही इनकी तृषा और भी बढती जाती है, ये अघाती नही, सब समय उसी ओर दौडती हैं मे बावली रीझ के हाथो अपने आप को हार जो बैठी हैं। सुजान के रूप की ही कुछ ऐसी विशेषता है कि देखने वाले नेत्र उसी के साथ ही रहते हैं दृष्टि इधर-उधर नहीं जाने पाती रूप मानो दृष्टि को दुह लेते हों। उसके नृत्य की चटकीली मुद्राओं और मटक-लटक के संग ही ये नेत्र फिरा करते हैं, मेरे पास नही रहते, उधर ही लगे रहते हैं। इन नेत्रों में प्रेमिका सुजान के मुख की सुषमा को निहारने की जसी लालसा भरी या छाई हुई है। उसका वर्णन नही किया जा सकता। सुजान के रूप को पीकर छके हुए ये नेत्र अब ढीठ हो गये हैं सकोच बिल्कुल नही करते, ये लोभी बडी व्याकुलता के साथ तेरे रूप के प्यासे होकर अश्रु बरसाया करते हैं। ये नेत्र मन से कहा करते हैं कि हे मन! हमारे ही कारण तुम प्यारे सुजान के मन्दिर बने हुए हो और हमी को उनका रूप नही दिखलाते, उनके रूप को अपने अन्दर प्रतिष्ठित करके तुम्हें इतना अहकार हो गया है—रूप की ललक और रीझ का यह भाव चित्र बहुत ही जीवंत और मार्मिक है। रीतिबद्ध कवि नेत्रों की तृष्णा का ऐसा क्या इससे अधिक अच्छा चित्र भी प्रस्तुत नही कर सके हैं।

> मन कहै सुनि रे मन! कान दै क्यौं इतनो गुन मेटि दयौ है।
> सुन्दर प्यारे सुजान को मन्दिर बावरे तू हमही तें भयौ है।
> लोभी तिन्हैं तनकौ न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयौ है।
> कीजियै जू घनआनन्द आय के पायें परौं यह न्याय नवौ है॥

रीझ की अतिशयता दिखलाने वाली ऐसी कितनी ही स्वच्छन्द उक्तियाँ, भावनाएँ और कल्पनाएँ घनआनन्द में मिलेंगी। घनआनन्द और भी लिखते हैं कि सुजान के नृत्य गान हास्यादिका के सौन्दर्य को देख कर नेत्रों में काम का रंग छा जाता है। इन नेत्रों को प्रिय दर्शन का इतना अधिक चाव और उत्साह है कि रात दिन उनकी एक ही लालसा रहती है, चकोर के समान वे भी केवल अपने चन्द्रमा को ही देखना चाहते हैं। जब से उस रूप को देखा है इन नेत्रों ने और कुछ न देखने की हड़ताल कर दी है (अथवा ये टकटकी बाँध कर केवल उसे ही देखती रहती हैं)। सुजान के रूप पर रीझ कर इन नेत्रों ने घनआनन्द को बीच रास्ते में ही लौंडी (दासी) बना लिया है। सुजान ही लहके महक-पूर्ण रूप लता के प्रति लग कर (आसक्त होकर) यह दृष्टि झकार खाती फिरती है तथा उसके हास विलास-पूर्ण रस-कंद मुख को देख कर चकोर हो जाती है। उसका हँसना आँखों के गले में फंदे के समान पड़ा हुआ है। उसकी आँखों को देख कर ये आँखें मेरे पास नहीं आती। उनके आने का ढंग भरी

आँखों मे बस गया है । हे माधुय की निधि और प्राणो का जीवित रखने वाली सुजान ! तेरा रूप रस चख कर ये आँखें मधुमक्खी के समान हा गई हैं । ये लाभिन आँखें लाख लाख अभिलाषाओ स इस प्रकार भरी हुई हैं कि उनसे ही फुरसत नही पाती । इनकी रीझ का क्या वणन किया जाय—नत्र जो कुछ देखत हैं उसे कह नही सकते, वे केवल रूप के स्वाद स तर होकर (भीग कर) ही रह जाते हैं, क्योकि बुद्धि हीन विधाता ने उन्ह बोलन की शक्ति से वचित कर रक्खा है, इन आँखो की सुजान से नई प्रीति है, ये अपना प्रण नित्य पूरा करती है, और किसी को चाहती नही केवल उन्ह ही देखती रहती हैं अपने आपको सहष हार जाती हैं और इस हार मे ही अपनी जीत मानती हैं क्योकि प्रेम की यही रीति है—नेत्रा के प्रभाव का यह कसा सुदर विशद युक्तियुक्त एव प्रभावशाली चित्रण है, रीतिबद्धता से दूर और आत्मानुभूति से सपृक्त—

> जो कछु निहार नन, कसें सो बखान बन,
> बिना देखी कहें तौ कहा तिन्हें प्रतीति है।
> रूप के सवाद मोन बापुरे अबोल कोन,
> बिधि बुधि हीने की अनसो यह रीति है ।
> सुख दुख साखी मिलें बिछुरें अनदघन,
> जान प्रान प्यारे सों नवेलो इन्हें प्रीति है ।
> औरहि न चाहैं पन पूरो नित ल निबाहैं,
> हार हँसि आयौ, जोति मान नेह नीति है ॥

सुजान के कटाक्षा की चोट आँखो म लगती है । उस देखने से अखड लोभ जाग्रत होता है । उसके चित्र को मैंने अपने नेत्रो की अश्रुधारा पर अकित कर रक्खा है । ये आँखें नाना प्रकार से उन पर अनुरक्त होकर उनके रग मे रग कर अभिलाषाओ से भर कर रस की मूर्ति श्याम का देख कर रस की राशि हो गई हैं । उसकी ज्योति के जगते ही ये नेत्र रस मे पग कर चकोर हो गये हैं । उस महारस का साक्षात्कार करके ये नेत्र अधीर हो गये हैं, शिथिल पड गये हैं और उसी का रूप रस पीने के लिए लालायित रहते हैं ।

इस प्रकार अत्यत विशद रूप से घनआनन्द ने अपनी सुजान की रूप सुषमा का प्रभाव नेत्रो पर दिखला कर उसके सौन्दर्य की अतिशयता शत शत रूपा मे ध्वनित की है । प्रभाव के सभी चित्र दे सकना यहाँ सम्भव नही है इसी से कवल कुछ ही यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

> (क) रावरे रूप की रीति अनूप नयो नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै ।
> त्यौ इन आँखिन बानि अनोखी अघानि कहूँ नहीं आनि तिहारियै ।
> × + ×
> रोकी रहै न दहै घनआनन्द बावरी रीझ के हाथनि हारियै ॥

(ख) रावरी रूप की रीति नई यह जोहन रावत ल गहि गोहन।
जान न देत कहूँ कबहूँ तिन लेते है हो करि दीठि को दोहन ॥
(ग) घनआनद जोबन-माती दसा छवि ताक्त ही मति छाक छई।
× × ×
वह रूप की रासि लखी तब तें सखी आँखिन के हटतार भई ॥
(घ) जान के रूप लुभाय क नननि बेचि करी अधबीच ही लौंडी।
(ङ) कद सी हँसनि घनआनद दसनि गरें।
(च) चाहत ही रीझी लालसानि भीजि सुख सीझी,
अग-अग रग-सग भाव भरि भ्वै गई।
रनिद्यौंस जागें ऐसी लगीं जु कहू न लाग,
पन अनुराग पाग चचलता च्वै गई ॥
हित की कनौडी लौंडी भई ये अनदघन,
फिर क्यों पिछौंडी नेह-मग डग द्वै गई।
माधुरी विधान प्रान-प्यारी जान प्यारी तेरो
रूस रस चाखे आँख मधुमाखी है गई ॥
(छ) इत भायनि भावरे भौंर भौंर, उत चायनि चाहि चकोर चके।
निसिबासर फूलनि भूलनि मैं अति, रूप की बात न ब्यौरि सकें।
घनआनद घू घट ओट भए, तब बावरे लौं चहु ओर तक।
पिय के मुख कौतुक देखि सखी, निज नन विसेषि सुजान छक ॥

घनआनद न सुजान के रूप का प्रभाव नेत्रो के साथ-साथ बाह्य सत्ता के कुछ अन्य उपकरणो पर भी दिखाया है जस शरीर पर उसके रोम रोम पर, वाणी पर और पैरो पर। उन्होने कहा है कि सुजान के रूप का देख कर शरीर महाव्याकुल हो जाता है, रोम रोम पीडा स भर उठता है, रोम रोम मे मीनकेत जाग्रत हो उठता है, रोम रोम आनन्द की वर्षा स भीग उठता है, राम रोम मे उसकी छवि समा जाती है वाणी उसके सौन्दय का वणन नही कर पाती क्योकि लालसाओ से वह भीगी रहती है और परो म जसे प्रीति की बडी पड जाती है।[1]

य सारे प्रभाव चित्र घनआनन्द की प्रेमिका के रूप चित्रो म रग भरते हैं और उन्हे पूणता प्रदान करते हैं इनसे 'जहाँ रिझावनहार रूप' का सौन्दर्योत्कर्ष लक्षित होता है वहीं 'रिझवार नेत्रो' की सहृदयता का भी पता चलता है। ये चित्र एक से एक मार्मिक हैं और घनआनन्द के हृदय पक्ष को सामन लाने वाले हैं। चित्र क्या हैं मानो घनआनन्द के आसक्तिशील हृदय को सम्पूण बिंब ग्रहण करने वाले विशाल दपण हैं। इन छन्दो म घनआनन्द की रूपासक्ति शतशत रसो म स्पदित हो रही है। ध्यान एक बार रूप स हट कर रूपरसिक और उसके रूपलोभी नत्रो पर केंद्रित हो

---

१ देखिये सुजानहित—छन्द २०४ १६८, १६७, २११, २००, २०१

जाता है। जो हो, रूप और रूपरसिक इन चित्रो मे एकमेक हो रहे है, रूप का सौन्दय इस एकमेकता का कारण है जिसकी ओर निहार कर घनआनन्द ने और वस्तुओ की ओर देखना तक छोड दिया था।

**मन अथवा अन्त सत्ता पर सुजान के रूप का प्रभाव सुजान के रूप को देख कर मन की दशा—रीझ या आसक्ति**

अब यह देखिए कि सुजान रूप घनआनन्द की अत सत्ता पर क्या कहर ढाता है। उनका मन प्राण, जीव, चित्त, कलेजा, हृदय सभी कुछ सुजान पर बेतरह मुग्ध है, सुजान पर सौ जान से निसार है। मन की यह रीझ भी शतशत रूपो म व्यक्त होकर सुजान के सौन्दय की अतिशयिक उत्तमता की घोषणा कर रही है और घनआनन्द के मनोगत भावो का भी उद्घोष कर रही है।[1]

कवि का मन सुजान के रूप पर रीझ कर अत्यन्त दीन हो गया है उसकी उँगलिया एडिया और परो के तले ही पडा रहना चाहता ह। उसकी रीझ सुजान की निकाई पर बिक गई है और मति उसके यौवन से मतवाले नेत्रो को देख कर बावली हो गई है। बार बार उसका मन सुजान की रमणीय पिंडलियो, मुखो, एडियो और महावर की रमणीयता पर मुग्ध हो चुआ पडता है। अपने जीव को घनआनन्द ने सुजान पर निछावर कर रक्खा है और अपनी रीझ के ही हाथो बिक गये हैं। घनआनन्द ने अतर का धय लज्जा सयम सब कुछ छोड दिया है और बुद्धि को भी रीझ के आधीन बना दिया है—ऐसा सवव्यापी प्रभाव सुजान क रूप रूपी सेनापति ने कवि की अन्त सत्ता पर डाल रक्खा है।

> **रूप-चमूप सज्यौ दल देखि भज्यौ तजि देसहि धीर-मवासी।**
> **नन मिलें उर क पुर पठत लाज लुटी न छुटी तिनका सी॥**
> **प्रेम दुहाई फिरी घनआनन्द बाँधि लिए कुल-नेम गढ़ासी।**
> **रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्व करि दासी॥**

सुजान के सौन्दय के प्रभाव की आत्यतिकता दिखाने के लिए कवि ने सुजान के नेत्रों को कातिल कहा है जो काती (छुरी) लेकर छाती पर चढ रहते हैं और सदा उसके प्राणो से खेला करते हैं। य मन भी ऐसे हैं जो सुजान के स्वभाव माधुय म पक कर अय रसो को फीका समझ बठे हैं। सुजान की प्यारी छवि कही कसे जा सकती है जब मति ही थक गई है। सुजान की सुदर नासिका की ऊचाई मन स मुडती नही और मान की मुद्रा म सुजान की गर्वीली ग्रीवा की शोभा प्राणो को भिगो भिगो देती है। जब से घनआन" स सुजान को देखा है किसी और को न

---

१ देखिये सुजानहित—छद १६ ३४, ३६, ४१ ४८ ५२ ६३, ६७, ८८, १०१, १०६ ११२ ११४, ११५ १२७ १३२ १३३ १३४ १५०, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६ १६८ १७५ १७६ १८१ १८५, १८६ २०८ २०५, २१६, २३०, २३६ ३५३ ३७५ ४०५, ४२३

देखने की शपथ ग्रहण कर रखी है और उनके 'मन सिंघासन' पर उसी का ध्यान 'विराजमान' रहता है। जिन अंगो ने सुजान आभूषण उतार दिए है कवि का मन उन्ही अंगो से जाकर चिपट गया है और उसकी आलस्यशिथिल किन्तु रसदायिनी दशा को देख कर कवि की मति उसी से कस या बँध गई है। उसका मति मोहित (जड) हो जाती है और सूझ बूझ गायब हो जाती है। उसकी अनखीली (रोषपूर्ण) मुद्रा भी घनआनन्द के प्राणो मे सीधे बैठ जाती है। चित्त ? चित्त की तो बुरी दशा है उसका एक चित्र कवि के ही शब्दों मे देखिये—

गोरे डँडा पहुँचानि बिलोकत रीझि रँग्यौ लपटाय गयौ है।
पनन की पहुँचीन लाखें पुनि आभा तरगनि सग रयौ है।
नीलमनीन हियल बनी रुचि-रूप-सनौ सु घनीन छयौ है।
चारु चुरीन चितै घनआनन्द चित्त सुजान के पानि भयौ है॥

सुजान के अभिनय सौन्दर्य पर कवि की मति बिक गई है, उसकी गति देख कर सुधि बिसर गई है और प्राण उसके लाल-लाल तलवो के नीचे अपनी बेहद रीझ के कारण कृतज्ञ भाव से गिर पडते हैं। कवि का मन रूप लोभी होकर सुजान के रूप का मंदिर हो गया है और बडे अभिमान से फिरा करता है। मन सुजान के नृत्य पर रीझ कर उसके परो पर डोलता रहता है और चाव (रुचि) उसकी लडीली डोलनि' (अनुराग सिक्त झूमती हुई मुद्रा) पर अनुरक्त है तथा मन को उसके स्वरो का माधुर्य ही सच्चा लगता है उसके सामने बीन की झंकार भी झूठी प्रतीत होती है। सुजान के रसीले और उन्मादकारी रूप के आसव को पीकर मन छक जाता है (तृप्त हो जाता है), सारी सुधि (चेतना) विस्मृत हो जाती है और किसी नियम या मर्यादा का पालन नही हो पाता, रीझ मे भीगते ही बनता है और लोक-लज्जा छोड कर प्राणो को निछावर करते ही बनता है। तुम्हें देख कर लाज समाज का भय या दबाव नही रह जाता, हँस कर मेरी ओर देखते हुए जब तुमने प्रेम से भरी बातें कही यह हृदय तुम पर मुग्ध हो गया, तभी से तुम्हारी रीझ मे मैं ऐसा पाग गया हूँ कि कुछ सोचना विचारना हो अब नही रह गया है, रह गया है बस एक ही काम—तुम्हे देखना और तुम्हारा ध्यान करना। पीठ देकर बैठी हुई न बोलती हुई मानवती सुजान भी रस की बसीठ सी जान पडती है और घनआनन्द के मन को विचलित कर देती है। उस यौवनोन्मत्त सुजान को देख कर मति छक जाती है, वह सलोनी प्राणो मे बस जाती है और चित्त पर उसके देखने की मुद्रा अंकित हो जाती है—

घनआनन्द जोबन-माती दसा छबि ताकत ही मति छाक छई।
बसि प्रान सलोनो सुजान रही चित पै हित हेरनि छाप दई॥

सुजान के ऐसे अंगो को देख कर जिनसे माधुर्य की लहर उठती है अपनापन भी जाता रहता है और स्वयं रीझ भी रीझ से भीग जाती है मन उस पर कुछ उपयुक्त वस्तु निछावर करने की दृष्टि से अपने आपको रक अनुभव करता है।

सुजान की एक तिरछी चितवन भी कवि को अनन्त सुख देने के लिए पर्याप्त है—वह उसके प्यासे प्राणो को रस पिला कर जीवित कर देती है सारा विरह (अप्राप्ति जन्म व्यथा) दूर कर देती है और रस की वर्षा द्वारा हृदय को सुरठ से सीच देती है। उसका हँसकर देखना और बोलना प्राणदान की सामर्थ्य रखता है, मन सब तरफ से खिच कर उसी की तरफ जा लगता है। घनआनन्द ने उसके रस और रूप को शोध कर अपने हृदय की कजरौनी को भर रक्खा है। सुजान का हास विलासपूर्ण मुख, अग-सुगधि उसकी नाक सिकोडनी हुई मुद्रा आदि को देख कर रीझ घनआनन्द को *मथे डाल रही है। रूप गुन ऐंठी सुजान उनके उर म पठ कर बठ गयी है अपनी बोला* द्वारा उसने उनकी मति का हरण कर लिया है, भाली बाता द्वारा उनके प्राणो को छका दिया है और वही उनके हृदय म अडी हुई है। उसकी आँखो के इशारा ने इनके चित्त को छल लिया है और इनका जीव बेचारा साच रहा है कि सब कुछ तो मैं हार गया हूँ अब दाँव पर क्या लगा दू ? उसकी लज्जा और शीलयुक्त बडी-बडी हँसीली आखें कवि के चित्त को आधीन कर लती हैं। रूप मतवाली सुजान अपनी आसव मन्दिर वाणी घनआनन्द क कानो को पिला कर उसकी चेतना पी लेती हैं। सुजान के कटाक्ष क्या नही करते—कलेज म पीर जगा दते हैं, जीव को अधीर बना देते हैं मति चक्कर खाने लगती है लेकिन फिर भी वे घनआनन्द को बहुत अच्छे लगते हैं। यह रूप का ही प्रभाव है उसकी सुन्दरता की ही रीझ है जो कवि को उसके चरणो पर डाल देती है और वह अशेष भाव से आत्म-समर्पण करता हुआ कहता है—

> सीस लाय, दृग छवाय, हिये पै बसाय राखौं,
> इते मान मान आवँ प्राननि मैं लै धरौं।
> हेरि हेरि चूमि चूमि सोभा छकि घूमि घूमि,
> परसि कपोलन सौं मजन कियौ करौं ॥
> केलि-कला-कदिर विलास निधि मदिर ये,
> इनहीं के बल हौं मनोज सिन्धु कौं तरौं।
> यातें घनआनन्द सुजान प्यारी रीझि भीजि,
> उमगि उमगि बेर बेर तेरे पाँ परौं ॥

इतना आदर इतना मान, इतनी रीझ, इतनी सेवा इतनी प्रणति कवि म क्यो दिखाई देती है ? सुजान क रूप-अतिशय क कारण उसके चरणा के बल पर या उनकी कृपा के बल पर य मनोज सिंधु का पार कर जान का दम भरते हैं, 'केलि कला-कदिर, विलास निधि मदिर' आदि पद उनक प्रेम की पार्थिवता क ही द्योतक हैं किसी को इस बात मे लेश मात्र भी सन्देह की गुजाइश नही रहनी चाहिए कि घनआनन्द की रीझ लौकिक थी कोई भक्त भी अपने भगवान क प्रति ऐसा निष्ठा और उत्सर्गपूर्ण निवेदन क्या करेगा ! सुजान के सर्वाधिक रूप लावण्य पर रीझ कर, उसके रूप म फाग का रगत देख कर सुजान को अपना मन ही फगुवा के

रूप म भेंट कर देते हैं। (गालियां खाने या पीने की लालसा फिर भी बनी ही रहती है।) वे कहते हैं कि सुजान के सूक्ष्म और अगाध रूप सौंदय को वे ही देख और समझ सकते हैं जिन्हें चाह (प्रेम) की मीठी पीर उठा करती है। सुजान के मिलने का महा-सुख अगा म समाया हुआ है। व ही उसके साक्षी है, कह कर उसे नही बताया जा सकता चित्त तो रूप की तरगो पर अनुरक्त होकर भी उन्ही के प्रवाह में बह जाता है। सुजान का रसीला रूप क्या था मानो जादू था, उसे देखकर हृदय म भाव इस प्रकार उमड आते हैं कि कुछ कहते नही बनता मति सोचती ही रह जाती है कि जो कुछ सामने देखा सच था या भ्रम था। अनुपम रूप वाली लुनाई की लछमी हमारे चित्त को चुराय लेती है। सुजान के अनुपम रूप की आभा के जलाशय म विहार करने के लिय जाकर मन किस प्रकार डूब गया, देखिये—

पानिप अनूप रूप जल कों निहारि मन,
गयौ हो विहार करिबे कें चाय हरि क।
पर्‌यौ जाय रगनि की तरल तरगनि में,
अति ही अपार ताहि कसें सक तरि क॥
धोर-तीर सूझत कहूँ न घनआनन्द यों,
बिबस बिचारी थाको बीच ही हहरि क।
लेस न सम्हार गहि केसनि मगन भयौ,
बूडिबे तें बच्यो को सिवार कों पकरि क॥

रूप के जलाशय का यह रूपक असाधारण है जो कवि के अनुरागी मन की दशा को भली भाँति व्यजित कर रहा है। घनआनन्द जी कहते हैं कि हर एक अग तो लावण्य से परिपूर्ण है, मन किस किस अग म अनुरक्त हो, उसकी बातें ही बडी मम भेदिनी हैं जो मार-मार जिलाती हैं।

इस प्रकार नाना छदा म घनआनन्द ने अपने रूप रसिक सौंदर्यासक्त मन की दशा का, सुजान के उस प्रभाव का चित्रण किया है जो उनक मन, रीझ, मति जीव प्राण, सूझ-बूझ (अक्ल) सुधि (होश या चेतना), चित्त, हृदय (हिय, उर), चाव, (चाह इच्छा, रुचि) अपनापन (आत्म भाव), कलेजे अर्थात् उनकी सम्पूर्ण अन्त सत्ता को व्याप्त किये हुये है। इन प्रभाव वणनाओ के कुछ उदाहरण देखिये—

(क) अँगुरीन लौं जाय भुलाय तहाँ फिरि आय लुभाय रहै तरवा।
चपि चायनि चूर है एडिनि छव चपि धाय छक छबि छाय छवा॥
घनआनन्द यौं रस रीझनि भीजि कहूँ बिसराम बिलोक्यौ नवा।
अलबेली सुजान के पायनि-पानि पर्‌यौ न टर्‌यौ मन मेरो भवा॥
(ख) छोरि-छोरि डारे जे जे भूषन विदूषन से,
तहाँ-तहाँ लगि लोभी मन गयौ गसि है।
आरस रसीली घनआनन्द सुजान प्यारी
ढीली दसा ह्‌वै सौं मेरी मति सीनी कसि है।

(ग) नाच लट्ू ह्वै लग्यौ फिर पायनि चायनि चाहि लडीलिय डोलनि।
त्यौं गुर साँच सवाद सनें मन झूठियै लागति बीन की बोलनि॥

(घ) भावते के रस रूपहि सोधि लैं, नीकें भरयौं उर क कजरौटो।

इस तरह घनआनन्द ने नाना विधि रूपो मे अपनी रीझ और रूपासक्त मनोदशा का चित्रण किया है। आलबन अपने सार्वनिक रूप सौन्दय की अधिकता के कारण आश्रय के मनोन्शा म उतर आया है। आश्रय की रूप लिप्सा परम रूपासक्ति मोह और मधुर प्रणय भाव म परिणित हो जाती है। आगे हम उसी प्रेम परिणित मनोदशा के चित्र देखेंगे। रूप के मनोगत प्रभाव को शत शत रूपो मे व्यक्त कर घनआनन्द ने अपनी निजी सौन्दय चेतना और रूप लिप्सा का ही परिचय दिया है। मन को उस सौन्दय की राशि पर तरह तरह से लुटा लुटा कर, रिझा रिझा कर, बेच बेचकर अपने अनोखे रिझवार होने का पूरा परिचय दिया है। सबसे बडी विशेषता तो यह है कि रूप का प्रभाव कवि ने शत शत रूपा मे शत शत विधियो स व्यक्त किया है। अपनी बात को कहने क न जाने कितने सीधे-म्डे ढग घनआनन्द को मालूम थे। हर ढग उनका अपना था और हर अभियक्ति परम्परायुक्त उनकी अपनी आन्तरिकता की सहृदयता से ओत प्रोत।

**कृष्ण**

घनआनन्द का प्रेम जिस सुजान के प्रति था उसका वणन उन्होने पूरे विस्तार और भावोन्मेष के साथ किया है। यहाँ तक कि कृष्ण और राधा तक के रूप-सौन्दय वणन मे उन्होने उतनी लीनता का परिचय नही दिया है। सुजान के रूप-सौन्दय वणन की चर्चा हम सविस्तार कर चुके हैं। राधा और कृष्ण क वणन म राधा की अपेक्षा कृष्ण के रूप-सौन्दय का चित्रण अधिक है।

कृष्ण का रूप वणन करते हुए घनआनन्द ने उनकी अङ्ग कान्ति वेश-सज्जा, रूपाकृति और गति का वणन किया है। उनकी अङ्ग कान्ति पर सावरे छल की रूप छटा पर करोडा कामदेवा का निछावर किया है। वेश सज्जा का वणन करते हुए कवि लिखता है कि कृष्ण न जुही की माला से अपना शृगार कर रक्खा है तथा पत्तो की छनरी सिर पर धारण कर रक्खी है, पीली पिछौरी और फटा अलग शोभा दे रहे हैं तथा मुरली ध्वनि मुग्ध करने वाली है– इस वश मे पुष्पित कदव वृक्ष के तले क्रीडा करते हुए वे विशेष शोभा पा रह है। सोनजुही के फूलो की इदीवर की पखुरिया सहित माला गूथी गई है ऐसी माला का धारण किय हुए कृष्ण के रूप की जो शोभा है वह कही नही जाती, पीली पिछौरी का छोर सिर पर उलट कर वे रख हुए हैं तथा भाल म केसर का तिलक दिय हुए मुरली पर गौरी धुन बजाते हुए वे वन से वापस आ रहे हैं। उनकी यह बनी हुई वेश-सज्जा और शोभा देखने योग्य है—

इन्दीवर-दलनि मिलाय सोनजुही गुही
सुही माल हाल रूप गुन न पर गन।

पीरियै पिछौरी छोर सीस पर उलटि राख
केसर विचित्र अग भाव रग सों सन ॥

लाल पाग बाधे हुए कधे पर ललित लकुट रक्खे हुए, चित्त को निश्चय ही बेध देने वाने नेत्रो के काम शर साधे हुए यौवन की झलक से भरपूर अङ्ग काति वाले, मन को उलझा लेने मे समर्थ कुटिल अलक जाल वाले, विशाल हृदयस्थल पर गुजमाल धारण करने वाले नख से शिख तक रस के आलय, श्यामकाय नन्द के लाडले यमुना किनारे घूम रहे हैं। सुदर मोर चन्द्रिका के साथ सावरे के सिर पर पचरगी पाग कसी अच्छी शोभा दे रही है दाडिम कुसुम के रग के वस्त्रो से उनके लावण्यमयी अङ्गो की काति फूटी पड रही है उनके वक्षदेश पर शोभित मोतियो की माला को गङ्गा की धारा समझ कर व्रज-वनिताओ का मन उसी मे डुबकियाँ लेता रहता है—ऐसे कृष्ण आनन्द से भरे हुए खडे होकर मुरली के मधुर स्वर बजा रहे हैं तथा नाना प्रकार की राग रागिनियो के तरग उठा रहे हैं—

लाल पाग बाँधे, धरे ललित लकुट काँधे
मन-सर साधें सो करत चित छाय को।
जोवन झलक अग रग तकि रुक, छूटी,
कुटिल-अलक-जाल जिय अरुझाय को ॥
गरे गुज माल उर राजत बिसाल नख
सिख लौं रसाल अति लोनो स्याम काय को।
करत अधीर वीर जमुना के तीर तीर,
टोना भरयौ डोलत ढुटौना नन्द राय को ॥

वेश सज्जा-युक्त इन छवि चित्रो मे सचमुच ही कृष्ण की बाँकी छवि अङ्कित की गई है, ये चित्र सुदर और चित्रात्मक हैं, इनमे गत्यात्मकता भी है। इनकी वेश-सज्जा मे प्राकृतिक उपकरणो का जो उपयोग किया गया है वह कवि की स्वच्छन्द वृत्ति का द्योतक है इन वर्णनो मे वेश वर्णन की अभिनव भावना और रूप-कल्पना, परम्परागत रूप वेश चित्रण से पृथक स्वच्छन्द वर्णन शैली के दर्शन होते हैं।

रूपाकृति का भी कवि ने स्वतन्त्र रूप से या किसी गोपिका के कथन के माध्यम से वर्णन किया है। एक गोपिका कहती है कि—हे सखी! कृष्ण का मुख सुन्दर है सरल है, कमनीय और रगीला है तथा उनके तन पर जो यौवन की आभा है वह कहते नही बनती, उनके नेत्रो मे जो चपलता है, प्रेम की जो दीप्ति है तथा जो सुदर भौंहें हैं वे नाना प्रकार के भावो को व्यक्त करने वाली हैं उनकी सुदर नासिका अधरो की सहज लालिमा और दाँतो की सहास आभा हृदय को हर लेती है। हे आली! नख से शिख तक उनके अङ्ग अङ्ग से छवि छलका करती है तथा आनन्द और उमग की तरगें हिलोरें लेती रहती हैं। एक अन्य गोपिका कहती है—नई उम्र है और अङ्ग अङ्ग मे अलबेली काति है उनसे काम का रग उमडता चलता है सहज छबीले दाँतों मे पान का लाल रग शोभा दे रहा है और अधरो से अमृत

की तरगें सी उठी पड रही हैं। हँसकर जब वे कानो को छूने वाली अपनी बडी-बडी आंखो से देखते हैं तो लगता है कि किसी ने धनुप की डोर को कान तक खीच कर बाण मार दिया हो, उनकी ऐसी चितवन से ही काम भावना चूर चूर हो जाती है और पुनीत अनुराग का भाव छलक उठता है। उनकी काली घुघराली अलका के गोल गोल छल्ले तथा उस पर से बाँसुरी की मीठी तान प्राणो को छल लेती है। *अधरो की लाली, यौवन का गरूर, चितवन की वकता अङ्गो का सलोनापन और* काति के साथ दोनो भुजाओ पर पीत पट ओढे हुये सिहपौर पर श्रीकृष्ण खडे हैं, *सारी गली या राह के देखने वाले शिथिल पड गये हैं और उनकी रूप शोभा की* रौर मची हुई है। ये सभी रूप चित्र अत्यत वयक्तिक पद्धति पर उरहे गये हैं। कृष्ण के रूप सौदय की एक दम निजी भावना ही घनआनन्द के काव्य मे मिलेगी। जसा बाँकपन उनकी प्रेम व्यजना म है वसा ही बाँकपन उनके रूप चित्रो मे भी है। यहाँ तक कि कृष्ण का भी परपरा प्राप्त रूप चित्र घनआनन्द के काय मे आकर घन आनन्दी विशेषता से सपृक्त हो गया है। सौदय के साथ साथ प्रभाव और प्रीति के उद्रेक का ममस्पर्शी वणन मिलेगा। जहाँ किसी मुद्रा विशेष का चित्र अकित हुआ है भले ही वह सक्षिप्त हा किन्तु प्रभाव की शक्ति उसम पूरी मिलेगी। स्थिति विशेष को प्रस्तुत करने वाले चित्र तो और प्रभावशाली हैं। ये रूप वणन नितान्त भाव भीने हैं इनमे कवि का हृदय लिपटा हुआ है। बस यही रहस्य है इन रूप चित्रो की विशिष्टता का जिसके कारण ये परम्परा प्राप्त रूप चित्रो से पृथक कहे जायेंगे।

कुछ रूप चित्र गत्यात्मक हैं। एक चित्र तो हम देख ही चुके हैं जिसम *यमुना के तट पर टोना करने वाले नन्द के ढुटौना का वणन हुआ है।* इसी प्रकार के कुछ चित्र और भी हैं कृष्ण का मुख छवि का सदन है मोद से मण्डित है उनका *वेश चटकीला है और चाल मटकीली है मुरली अधरो पर रखे हुए वे बडी लटक* के साथ चलते हैं अपनी आंखो को विशेष ढगो में ढालते हुए या मटकाते हुए और *कुछ मुस्कराते हुए बहुत ही प्रेम की मिठास से भरी बातें करते हैं* ऐसे कृष्ण के लिए गोपिकाओ की ललक अनन्त है। एक गोपिका कहती है कि छबि से छबीला बना हुआ *आज बडे रँगीले ढग से अचानक ही मेरी गली म आ गया तथा मुस्कराता हुआ* मेरी ओर देख कर आखें मटका कर प्रेम से लपेटी हुई कोई बडी अनूठी तान गा गया। ये चित्र पर्याप्त गत्यात्मक हैं नवीन और अपरपरागत शली पर तो हैं ही, भावना से ओत प्रोत भी हैं। उसमे कवि की निजी प्रेम भावना का वैशिष्टय है। कृष्ण के स्वरूप के अतिरिक्त सौदय का भी जगह-जगह उदघाटन मिलेगा तथा घनआनन्द के रूप वणनो म चित्रात्मकता भी अच्छी पाई जायेगी। कृष्ण की छवि की सुदरता का वणन कवि के मतानुसार तो कर सकना ही असम्भव है—जो लुनाई उनम है उसमे समुद्र की लहरो का सा रूप का ज्वार है आभा की ऐसी उफान है जो अकथ है, जनक सौदय मे ध्वनि और सगीत जसी सूक्ष्मता है। इस प्रकार नई-नई पद्धतियो

से कवि ने कृष्ण के रूप सौन्दर्य का साक्षात्कार कराना चाहा है।[1] कृष्ण के रूप वर्णन में कवि ने किसी एक अवयव को लेकर उसका पृथक वर्णन नहीं किया है, किन्हीं अंग समुदायों को लेकर उसकी झाँकी प्रस्तुत की है तथा उनके मनोगत प्रभाव का निदर्शन किया है। छवि चित्रण एवं मनोगत प्रभाव चित्रण साथ-साथ होता चला है।

**कृष्ण के रूप का प्रभाव**

प्रभाव का वर्णन तो उन छन्दों में भी मिलेगा जिनमें साक्षात् रूप-सौन्दर्य वर्णित हुआ है किन्तु अन्यान्य भी बहुत से छन्द हैं जिनमें प्रभाव का विशदता से कथन किया गया है। कृष्ण के रूप-तरंगों के जाल में तथा उनकी गुणावली के फंदे में पड़ कर गोपिका की आँखें उसका हृदय उसकी गति मति सब कुछ तल्लीनता की स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं, शरीर और अन्तःकरण की सारी शक्तियाँ उनके रूप के खिंचाव के कारण उन्हीं के पीछे लग जाती हैं, हृदय की समस्त अभिलाषाएँ उस सौन्दर्य की भाँवरें भरने लगती हैं। कृष्ण का 'हँसना-बतराना हृदय में अड़ जाता है, उनकी मुद्राएँ, गति आदि हृदय से टलती नहीं, चितवन भूलती नहीं और सुधि बेसुध कर देती है। जिसके हृदय में साँवरे की रसमयी छवि बसी है उसे दूसरों की बातें क्योंकर अच्छी लगेंगी। कृष्ण जिस गोपिका की गली से अपनी अलबेली वेश भूषा, चाल-ढाल, हँसी मुस्कान के साथ निकलते हैं उसी का धैर्य मन प्राण सब कुछ हर ले जाते हैं—'**नेकु हौ मैं मेरी कछु मोप न रहन पायो, औचक ही आय मट लूट सी बितै गयो।**' छवि से छबीले कृष्ण सबेरे-सबेरे ही अचानक किसी की गली में बड़े रँगीले ढंग से जा पहुँचते हैं बस फिर क्या है उनकी चटक-मटक और लटक देख उसका तो मन ही बिक जाता है और जब कृष्ण कोई प्रेम से लपेटी तान गा उठते हैं तब तो उसकी दशा अकथ हो जाती है— **तब तें रही हौं घूमि झूमि जकि बावरी है, सुर की तरंगनि मैं रस बरसाय गौ।** प्रभाव का वर्णन करते हुए घनआनन्द ने बताया है कि कन्हाई के आनन पर जितनी ही आनन्द की ओप चढ़ती जाती है उतनी ही गोपिका की चाट भी—

> **ज्यों ज्यों उत आनन प आनँद सु ओप और,**
> **त्यों-त्यों इत चाहनि मैं चाह बरसति है।**

उनकी तानों से वे लुब्ध हो जाती हैं और उनके प्राण छले जाते हैं, उनके वक्षदेश पर पड़ी मोती की माला को देख गोपिकाओं के मन उस शोभा की गंगा में निमग्नामग्न होने लगते हैं— **मजन करत तहाँ मन बनितान के, निहारि मोती-मालहि बिचार धारा गंग की।**' सुन्दर वेश वाले कृष्ण उनके चित्त में छा जाते हैं उनझा लेते हैं उन्हें और यमुना के तट पर घूमते हुए उन पर जादू सा डाल देते हैं। व्रज-मोहन के रूप से छक कर गोपियों के मन और नेत्र महा मतवाले हो जाते हैं वे

---

१ सुजानहित छन्द १८४, ३८८, ४०७, प्र० ३, १२, १३, १४, १५, २२, २३, ४८

पपीहे के समान आनन्दघन के प्रेम से रात दिन भीगे रहते हैं। आँखें उनके अनूप रूप से ठग सी जाती हैं उनकी उलझन और कोई नही जान सकता, उनके रूप को अघा कर पीति हुई भी ये अतृप्त रहती हैं। गोपिका कहती है—हे कृष्ण ! तेरी 'जोहन' हमारे पीछे पड गई है जिसके कारण अजीब विषम रूप से हमारे हृदय मे भाव उठते हैं। तुम्हारी आँखो के विष भरे कोण देखने पर हमे सुधा से सीच देते हैं किन्तु वे ऐसे अनियारे (नोकदार) हैं कि प्राणो तक धँस जाते हैं। तेरी आँखो और चितवन में जो परिपूर्ण कान्ति है उसके कारण हमारी आखो म चकाचौंध सी छा जाती है, तेरे नेत्रो की उज्ज्वलता मोतियो की आभा से भी अधिक है। तेरी ऐसी वक्र चितवन हमारा सारा धैर्य और चातुर्य गायब कर देती है। कृष्ण के शोभा समूह को देख कर हमारा हृदय शीतल हो जाता है, भाव उमड पडते है दृष्टि उधर ही बनी रहती है चित्त का चैन समाप्त हो जाता है प्यास सतत बनी रहती है आदि आदि। इसी प्रकार उनकी मोहनी का वर्णन करते हुए वंशी के प्रभाव का भी कवि ने व्यापक रूप से वर्णन किया है।[1] इसी प्रकार के प्रभाव व्यंजक अनेकानेक चित्र कवि ने प्रस्तुत किये हैं जिनम रूप प्रभाव व्यापक रूप से कथित हुआ है।[2] कहीं-कहीं कवि ने अपने आप पर भी कृष्ण की छवि का प्रभाव बतलाते हुए कहा है कि हम तो घनश्याम की छवि के पपीहे बने हुए हैं।

**राधा**

राधा की चर्चा घनआनन्द ने अपने प्रेम काव्य के सदर्भ मे भी की है और भक्ति के आलम्बन रूप मे भी। जिन रचनाओ म राधा आराध्या के रूप मे अंकित हुई है वहा उनके रूप का चित्रण विशेष नही मिलता, बस दो चार इसी प्रकार की उक्तियाँ मिलेंगी—

**राधा अतुल रूप गुन भरी। ब्रजवनिता कदब मजरी।** (प्रियाप्रसाद)

शेष उनकी महात्म्य की वर्णना और अपनी भक्ति भावना का निवेदन मिलेगा। प्रेम से सम्बन्धित छन्दो म उनके रूप चित्रण की कोई विशेष चेष्टा नही दिखाई देती। हाँ, राधा क रूप प्रभाव द्वारा उनका रूप सौन्दय अवश्य चार छ छन्दो म व्यंजित किया गया है।[3] राधा के सौन्दर्य की व्यजना करते हुए कही तो कवि ने उसके यौवन समृद्धि को वसन्त के सादृश्य द्वारा प्रत्यक्ष कराया है, कही उसके मुँह म कृष्ण द्वारा लगाये गये गुलाल की अद्वितीय शोभा की ओर इंगित किया है और कहीं उसके रूप की वास्तविक सुवर्णता अथवा उत्तमता का कथन किया है—राधा का

---

१ सुजानहित छन्द ४० ४३२ ४४६ ४५६ ४७१, ४६५ प्र० १२, १६, १७ ३०, ३८ ३६ ५८, ६३, ६०, छन्दाष्टक ८० से ८७

२ सुजानहित छन्द ८१, ८२ १६७ ४७२, ४७३ ४७४, प्र० ७४, ८, १२, १३, १५ २३ ४०, ४१, ५३ ६७ ६८

३ सुजानहित छन्द ४३३, २५४, ४१२, प्र० ४१, १६, २४, ६२, ६६

यौवन विलास बसत है जिसमे अग-अग की कांति की विभाव है, वनमाला'१७५ ७प
यौवन विलास की सेवा करते हैं तथा उसे देख स्वय कामदेव अधीर हो जाता है, जिसके स्वरो म कोकिला की मूक-माधुरी है तथा सांसा म सौरभित समीर बसा हुआ है जिसके प्रस्वेद मकरन्दवत हैं तथा प्रेमी के मनोरथ रूपी भ्रमर जिस पर मँडराते हैं ऐसी राधा यमुना के तट पर वृन्दावन में अपनी बसत के समान यौवन सुषमा के साथ शोभा दे रही है। इस सौन्दर्याकन की नवीनता देखने योग्य है, कविता रुपक का भार ऐसे सहज ढग से वहन कर रही है तथा रूप-सौन्दर्य का भी सूक्ष्म और सुकुमार चित्र नय और ताजे ढग से प्रस्तुत किया गया है। राधा के गोरे मुँह मे कृष्ण ने गुलाल लगा दिया है—उज्ज्वल मुखश्री मे गुलाल की लाली ने जिस अभूतपूर्व सुषमा की सृष्टि कर दी है वह कही नही जाती। ऐसे अनूप रूप की निकाई क्या कही जाय। हे राधा! लाल ने तेरे मुँह मे गुलाल लगाकर सौता के हृदय में होली-सी लगा दी है। रूप के साथ-साथ यहाँ सुन्दर भावना और मनोहर कल्पना तथा रुप का प्रभाव भी वर्णित किया गया है। एक छन्द मे कवि कहता है कि नेत्रों ने तोल कर परख लिया है कि राधा का रूप ही असली सोना है। रत्ती के बाँट से तोलने पर वह पूणत खरी उतरी है। 'रत्ती' का अथ रती और कामदेव की स्त्री हुआ, प्रथम अथ यह है कि राधिका का रुप बावन तोला पाव रत्ती ठीक है, दूसरा अर्थ यह कि रति से भी उसका रूप बढ कर है, नयो ने इस तथ्य का निश्चय कर लिया है। यहाँ पर रूप की उत्तमता कथित हुई है।

इसके पश्चात् कृष्ण की ही उक्तियो द्वारा उनके हृदय पर राधा के रुप का प्रभाव कथित हुआ है जिसमे उसके रूप की प्रियता और सतापहारिणी क्षमता का वणन हुआ है। कृष्ण कहते हैं कि हे राधे! तेरे लावण्यपूण अग प्रत्यग से अररा कर बरसता हुआ प्रेम का जो रग है। वह मुझे बहुत प्रिय लगता है। हे गोरी! ये तेरे रसीले नेत्र हैं या श्याम मेघ जो विरह सन्तापों की दावाग्नि को पी जाते हैं। एक छन्द म कवि ने कृष्ण को राधा के रूपासव से छका हुआ बतलाया है। एक अन्य छन्द मे राधा के नृत्य सौन्दर्य तथा उसके रूप रस मे कृष्ण के भीगने का अपूव वर्णन किया है—

> गति लेत प्यारी न्यारी न्यारियै लहक जामें
> लोन अंग रगनि लग निकाइयै झरी।
> मुसकानि आभा फल छाकत छबीलो छैल,
> सोल भीज चाहनि रसीली बरुनी ररी।
> मुरली बजाय क नचाव रिझवार प्यारो,
> सुरति लगौहीं ढटि भौंह भेद सों भरी।
> ढोरक प ललिता ललित आँगुरीरि ढोर
> छायौ घनआनन्द घटक चोल है परी।

एक बार कृष्ण क हृदय पर पडने वाले तीक्ष्ण प्रभाव का कथन करती हुई एक सखी कहती है—अरे राधे! तूने जब कृष्ण को देखा तो क्या टोना कर दिया।

तूने इस तरह उन्हें देखा कि उनका हृदय बेतरह विद्ध हो गया। वे तो पिचकारी ज्यों की त्यों लिये रह गये तेरे रूप का ऐसा धक्का उन्हें लगा कि वे शिथिल पड़ गये। तुझे तो विधाता ने ही बनाया है भला अब तेरी बराबरी कौन कर सकता है। तेरी हँसी की कौंध ने उन्हें भिगो दिया और कपोलों पर गुलाल मसल कर तो तूने उन्हें अपने हाथों में ले लिया। इस तरह राधा की चितवन के कारण कृष्ण की बेतरह आहत स्थिति का वर्णन किया गया है—

पिचका लियेंई रहे रह्यौ रंग तोहि देखें,
रूप की धसक लागें थके हैं धसरि कै।
कौंधि घनआनन्द की भिजयौ हसनि ही मैं,
हाथ कियौ लालहि गुलालहि मसरि कै॥

प्रभावाभिव्यंजक पद्धति पर राधा के रूप प्रभाव के एकाध चित्र और देखिये—

(क) राधा नवयौवन विलास को बसंत जहाँ
अंग अंग रंगनि बिलास ही की भीर है।
प्यारो वनमाली घनआनन्द सुजान सेव,
जाहि देखि काम के हियें मैं नाहिं धीर है।

(ख) दोऊ अदभुत देखौ रसिक सुजान क्यों न,
लेहिं देहिं स्वाद-सुख आनन्द अछेह कौ।
मोहिं नीको लागत री राधे तेरे लोने इन,
अंग अंग अररान रंग मेह नेह कौ॥

राधिका के सौन्दर्य का एक गत्यात्मक चित्र देखिये जिसमें उमंग के साथ राधा तो कृष्ण के पास तक जाकर उन्हें गुलाल की मूठ मार आती है और गर्व सहित अपनी सखियों में आकर मिल जाती है उधर कृष्ण हैं जो निष्प्रभ हो बस खड़े ही रह जाते हैं। यह और कुछ नहीं राधिका के रूप का असाधारण सौन्दर्य और जादू ही है जो कृष्ण सरीखे रसिक को विस्मय विमुग्ध और हतचेत कर देता है। इस चित्र में करोड़ों दामिनियों की आभा को फीका कर देने वाली आभा का वर्णन हुआ है। ऐसी राधिका की चाल और चितवन की मुद्रा भी कवि ने असाधारण कौशल से चित्रित की है—

गोरी बाल थोरी बैस लाल पै गुलाल मूठि,
तानि कै चपल चली आनन्द उठान सौं।
वायें पानि घूँघट की गहनि चहनि-ओट,
चोटनि करति अति तीखे नैन-बान सौं॥
कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि पाय
दाय जीति आय झुंड मिली है सयान सौं।
मीड़िबे के लेखें कर मीड़ियोई हाथ लग्यौ
सो न लगी हाथ रह्यौ सकुचि सकान सौं॥

उद्दीपन वणन एव बाह्य-दृश्य चित्रण

घनआनन्द ने स्वतन्त्र रूप म तो नहीं किन्तु उद्दीपन रूप म अवश्य प्राकृतिक सामग्री का उपयोग किया है, इनके सहारे उन्होंने अपनी विरह व्यथा व्यक्त की है। विधिवत वर्षा वसन्तादि को लेकर रूपक तो नही खडे किये गये हैं परन्तु वेदना की विवृत्ति के लिये किसी भी प्राकृतिक उपकरण अथवा ऋतु को लेकर वे अपने भावो को व्यक्त करते रहे हैं। यह जरूर है कि ये प्राकृतिक उपादान उन्हें सुख पहुचाने के बदले वेदनाओ का ही उपहार देते रहे हैं। इन्हे प्रकृति ने क्या, पीडा दी यह तो हम विरह निवेदन के सन्दर्भ म देखेंगे, किन्तु किन किन प्राकृतिक उपकरणो ने विरही घनआनन्द अथवा विरहिणी गोपिकाओ को पीडित किया यह देखना चाहिये। लहकती हुई पुरवया भटके हुए बादल, चमकती हुई बिजली, वर्षा के प्रसूनो की सुगन्धि, चतुर्दिक घिरी हुई घटायें, कलापियो की कूक, शीतल समीर, बिजली की कौंध, टूटती हुई उल्कायें, प्यासे चातक, उन्मत्त मयूर, गरजते हुए बलाहक, हँसती हुई बिजली, चन्द्रमा रहित अन्ध आकाश आदि का वर्णन कर कवि ने इनके द्वारा विरह की उद्दीप्ति दिखलाई है। अभिव्यजना के आचाय घनआनन्द ने अपने वियोग का अतिशय दिखलाने के लिए एक छन्द मे अपनी व्यथा को हा प्रकृति मे भर दिया है और कहा है कि चपला में जो दाह है पपीहा के स्वरो मे जा वेदना है, जिधर तिधर भटकते हुए पवन म जा अस्थिरता है और मेघो म जो वपण शक्ति है वह सब प्रकृति को विरही स ही प्राप्त हुय हैं। वर्षा ऋतु वेदना को कम धार नहीं देती। एक छन्द मे वर्षा क उपकरणो को एक एक कर सम्बोधित किया गया है, धैय और शक्ति के साथ उनका मुकाबला किया गया है और उन्हे यह ललकार दी गई है कि जब तक विनोद बरसाने वाले हमार प्रिय नही आते तब तक तुम जितना दुख दना चाहते हा द लो, उनक आन पर यदि दुख द सका ता मैं तुम्हें समझू। 'बिकल बिषाद भरे ताही को तरक तकि' और 'कारी कूर कोकिला कहाँ को बर काढ़ति री' वाले छन्दो म प्रकृति का अनूठे ढग से विरह काव्य म नियोजन हुआ है। वसन्त ऋतु का कवि ने विरह वणन अथवा विरह निवेदन म उपयोग नही किया है, केवल इतना कहा गया है कि वह प्राणघातक कुसुमशरा स सयुक्त हो विरहियो का शिकार करता फिरता है और कामदव का परम सहचर बना हुआ अपनी पूरी सेना के साथ उन्ह त्रास देता फिरता है। विरहोद्दीपक उपकरण के रूप मे घनआनन्द ने सावन की सुहावनी बूदा सुगन्धिया चन्दन गुलाल-अबीर-सगीत, दीपावली निशा, *दिशा, चन्द्रमा, चाँदनी पुष्पित कमल सुरभित समीर, चातक आदि को लेकर एक* से एक सुन्दर छन्द लिखे है जिनमे प्रकृति द्वारा विरही अथवा विरहिन की मनोव्यथा को अङ्कित किया गया है।[1]

---

1 सुजानहित छन्द ७६, ८४, १५७ ३२७, २२६, २६६ ३३८, २६३, ४५ ३४६, २७८, २६८ ३८६, ३६१, ८४, १६८, १८२, ५३, २७०, ३३८, २०७

अपनी भक्ति-परक रचनाओ मे व्रज के प्रति अनुराग से भर कर घनआनन्द ने जहाँ तहाँ व्रज भूमि अथवा वहाँ के ग्राम जीवन अथवा ग्राम्य दृश्यो का वणन किया है। ये वर्णन एक ओर जहाँ भक्ति प्रेरित हैं वहा उस स्थान के व्यक्तिगत परिचय, स्थान, मोह एव अनुभव का भी आधार लिये हुये है। इस सन्दभ म व्रज भूमि के प्राकृतिक वातावरण के जो स्वच्छन्द चित्र घनआनन्द ने अङ्कित किये हैं वे अपने माधुय के कारण देखन योग्य हैं। उनमे वास्तविक प्राकृतिक छवि क चित्रण का जहाँ तहाँ प्रयास मिलेगा—

> **बरहे हरे भरे सर जित तित। हित फुहार की झमक रहति नित॥**
> **चुहीं सुहीं सुख गुहीं खिली हैं। लता ललित तरु उमगि मिली है॥**
> **गिरि गोधन हरियारो रहै। चौमासो नित बासो गहै॥**
> **झूमे रहत गिरि सिखर बादर। बोलत मोर पाँति भरि आदर॥**
>
> (व्रजस्वरूप)

व्रज क खरिक, खोरि, गाधन, खेत और क्यारिया, गारस दहल (कुड) धाय, न्यार (भुस) आदि तथा व्रजवासियो क परिवार देख कर मन और आखो को अपार सुख मिलता है। कवि कहता ह कि व्रज की सपदा और सहज माधुरी कहत नही बनती। व्रज क वन और नाल सदा हर भरे रहत है जो ग्वालो और गाया के लिए सदा सुखदायी हैं। कदम्ब, पसह ताल, रसाल आदि की छाया म मोहन विहार करते हैं और प्रेम स बठत है तथा कभी कभी वे सघन वय कन्दराओ म भी साखाओ के सग प्रवेश करत है। इस प्रकार का वणन व्रजप्रसाद म आया है। 'व्रजस्वरूप' मे भी घनआनन्द न व्रज ग्राम का एव वहा का प्रकृति का अल्प किन्तु मनाहर वणन किया है। वे लिखते है कि वहाँ के ऊँचे-ऊच प्रकाशयुक्त चापाल और ललित चौहट देखते ही बनत है, चारो आर शुभ और सुन्दर वृक्षावलि है, निकट ही साँवले सरोवर हैं जो मानो व्रजमाहन की छवि देखन के अमल दपण ह। घाट या पनघट और खारियाँ (गलिया) नाना प्रकार के रिझा लन वाले दृश्य उपस्थित करती हैं। व्रज म सतत् आनन्द की वर्षा होती रहती है इसलिये वहा बारहो महीन चौमासा बना रहता है किसान की खेती निर्बाध गति स चलती रहती है। घुमड घुमड कर मेघ जल-वृष्टि करते हैं जिसम भीगत हुए व्रजवासिया की शोभा दखन योग्य होता है। नदी तालाब नाले भरे हुए है चारो तरफ प्रकृति हरी भरी गोचर होती है। इस प्रकार कुछ स्वच्छन्द पद्धति पर घनआनन्द न व्रज की प्रकृति का वणन किया है। किसान की चर्चा अपवाद रूप स ही घनआनन्द के काव्य म मिलती है अन्यथा वेचारे कृपक की चिन्ता किस रीति कवि को थी। स्वच्छन्द दृष्टि रखने के कारण ही घनआनन्द उसका वणन कर सके हैं।

# ५
## घनआनन्द की प्रेम-व्यंजना

घनआनन्द की समस्त काव्यराशि में दो प्रकार की भावनाएँ देखी जा सकती हैं—प्रेम और भक्ति। प्रेम अपनी प्रेमिका सुजान के प्रति, भक्ति अपने आराध्य श्रीकृष्ण के प्रति। रस शास्त्र की भाषा में हम चाहें तो कह सकते हैं कि घनआनन्द की प्रेम भावना के दो आलंबन थे—एक सुजान और दूसरे श्रीकृष्ण। एक लौकिक आलम्बन था, दूसरा अलौकिक। घनआनन्द मूलतः लौकिक प्रेम-पात्र के रसिक थे इसी से हृदगत प्रेम की जो लहर उनकी कविता में है वह अन्यत्र दुर्लभ है। अपनी लौकिक प्रेयसी, मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार की नर्तकी, सुजान नामी वेश्या के प्रति घनआनन्द ने जो प्रणय निवेदन किया है वह हिन्दी-काव्य की स्थायी संपदा है। वैसा-आत्म निवेदन, वैसी प्रेम पीडा, वैसी विरहानुभूति, वैसी आत्माभिव्यंजना वाला काव्य मध्य युग में लिखा ही नहीं गया। इतना ही नहीं समूचे हिन्दी काव्य के सहस्राधिक वर्षों के इतिहास में भी ऐसी प्रेम छाया का चितेरा दूसरा न मिलेगा। आत्म-पीडा का ही दूसरा नाम घनआनन्द का काव्य है। विरह निवेदन या प्रेम-व्यंजना की व्यक्तिनिष्ठ शैली हिन्दी में बहुत कुछ आधुनिक युग की देन है, पुरातन काल में कविजन आत्म व्यथा या उल्लास को गोपी-कृष्ण आदि अन्य माध्यमों से मुखर करते रहे हैं परन्तु लौकिक प्रेम भावना की नितांत आत्मगत पद्धति पर प्रकाशन घनआनन्द का ही काम था। हिन्दी काव्य परम्परा में कदाचित पहली ही बार इतने भावोन्मेष के साथ किसी कवि ने अपने निजी लौकिक हर्ष-विषाद का विशेषतः विषाद का चित्रण इतनी व्यक्तिनिष्ठ शैली में किया था। घनआनन्द के महत्व को चिरकाल तक अक्षुण्ण रखने के लिये उनका एक यही गुण पर्याप्त है। घनआनन्द का लौकिक प्रेम और उनकी सुजान के प्रति रीझ मिलन अथवा संयोग में परिणित न हो सकी। वह चिर वियोग की गाथा हो गई इसीलिये घनआनन्द सुजान के नाम की रट लगाते ही रहे और अंत तक उनकी यह टेक निभती ही चली गई। कहते हैं कि जब अहमदशाह अब्दाली का सं० १८१७

मे मथुरा पर दूसरा आक्रमण हुआ जिसमे घनआनन्द के साथ और कितने ही सत पुरुष मारे गये तो मृत्यु से पूर्व घनआनन्द ने अपने रक्त से जो कवित्त लिखा था उसमे भी वे सुजान का नाम लेना न भूल सके थे—

बहुत दिनान की अवधि आसपास परे,
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान को।
कहि-कहि आवन छबीले मनभावन को,
गहि गहि राखति ही दै दै सनमान को॥
झूठी बतियान के पत्यान तें उदास ह्वै कै,
अब ना घिरत घनआनन्द निदान को।
अधर लगे हैं आनि करि कै पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो लै सुजान को॥

पर घनआनन्द का यह लौकिक प्रेम दीर्घ काल के अनन्तर कुछ बाह्य प्रभावों (निम्बार्क सम्प्रदाय मे दीक्षित होने आदि) के कारण और कुछ आलम्बन की निष्ठुरता वियोग की अनन्तता आदि के कारण कृष्ण प्रेम मे परिणित हो गया। लौकिक से अलौकिक हो गया। कृष्ण भक्ति को अपना कर भी घनआनन्द की भावना मे प्रेम की मधुर वृत्ति ही प्रधान रही श्रद्धा भाव-समन्वित पूज्य भावना कम। इसी से घनआनन्द की भक्ति कान्ता भाव की भक्ति या मधुरा भक्ति कही जायगी। इस प्रेम लक्षणा भक्ति के अनुधावन से उनके भक्ति काव्य मे भी सुजान के प्रेम की झलक मिलती या आती रही। उनका सुजान शब्द कृष्णवाची भी है। इस प्रकार उनके सुजान प्रेम के काव्य मे कृष्ण प्रेम की भावना और कृष्ण प्रेम-परक काव्य मे सुजान प्रेम की प्रतीति होती चलती है। फिर भी इसमे सन्देह नही कि वर्ण्य विषय की दृष्टि से उनके काव्य के दो स्पष्ट विभाग हो जाते हैं—एक सुजान प्रेम का (लौकिक प्रेम का) काव्य दूसरे कृष्ण भक्ति की कविता (अलौकिक प्रेम का काव्य)।

सुजान प्रेम का काव्य कृष्ण प्रेम के काव्य से परिमाण मे बहुत कम है। उनके समस्त काव्य साहित्य का चतुर्थांश या उससे भी कुछ कम अश सुजान प्रेम से सबधित है, शेष तीन चौथाई अश कृष्ण प्रेम और कृष्ण भक्ति की भावना से ओत प्रोत है। 'सुजानहित' मूलत उसके सुजान प्रेम का स्मारक है यद्यपि इसका भी एक अश कृष्ण प्रेम से सबद्ध है। शेष ग्रन्थो मे कृष्ण के प्रति प्रेम और भक्ति का भाव ही अनुस्यूत मिलेगा। मात्रा मे कृष्ण परक काव्य के आधिक्य के कारण अनेक हैं—एक तो यो भी उस युग के काव्य मे प्रेम भावना के प्रकाशन के साधन रूप मे गोपी-कृष्ण की प्रेम क्रीडाओ या लीलाओ या गोकुल और ब्रज मे उनके मधुर प्रेममय जीवन को ही ग्रहण किया जाता था दूसरे दीर्घकाल तक वे ब्रज मे रहे फलस्वरूप मध्य युग का कवि और

फिर ब्रजवासी होकर अन्य किस व्यक्ति को अपनी प्रेम प्रधान कविता का केन्द्र बना सकता था। तीसरा कारण उनका निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित होना है जिसमें कृष्ण ही एक-मात्र उपास्य, भजनीय, सेव्य और पूज्य माने गये हैं तथा किसी दूसरे की सेवा-अर्चना व्यर्थ ठहराई गई है—'नान्यागीत कृष्ण पदारविन्दात्'।

**घनआनन्द की प्रेम सम्बन्धिनी दृष्टि**

घनआनन्द जी के प्रेम सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझने के लिए उनका प्रेम-काव्य ही देखना पड़ेगा और काव्य के ही आधार पर उनकी प्रेम विषयक मान्यताओं का निर्धारण किया जा सकता है। प्रासंगिक रूप से उन्होंने कुछ छन्द ऐसे अवश्य लिख दिये हैं जिनमें उनकी प्रेम विषयक धारणा बहुत ही स्पष्ट रूप से कथित हुई है, पर विधिवत् प्रेम तत्व का व्याख्यान विवेचन कवि ने किसी भी कृति में नहीं किया है जिस प्रकार रसखान ने अपनी प्रेम-वाटिका में किया है। घनआनन्द की 'प्रेम पद्धति' नामक रचना इस दृष्टि से धोखे में डालने वाली है। उसका नाम देख कर पाठक सोच सकता है कि उसमें प्रेम तत्व का विवेचन होगा पर उसमें 'प्रेम तत्व' की चर्चा अथवा उसका प्रतिपादन नहीं मिलेगा।

प्रेम सम्बन्धी कतिपय सैद्धान्तिक कथन घनआनन्द के 'सुजानहित' नामक सुजान प्रेम के काव्य में अनायास आ गये हैं। प्रेम की ही विशद विवृत्ति जिस कृति के ५०७ कवित्तों में आद्योपान्त हुई हो उसमें छ-आठ प्रेम-सम्बन्धी तात्विक कथनों का आ जाना कोई अनहोनी बात नहीं। प्रेम तत्व का निरूपण करने वाले ऐसे छन्दों में घनआनन्द ने इस प्रकार की बातें कही हैं—संसार में जो प्रेम है उसका मूल उत्स नेही हरि और राधा में देखा जा सकता है। संसार में सच्चा स्नेही दुर्लभ है, यदि सच्चा स्नेही हो भी तो उसका जीवन भीषण संकटों से आपन्न हुआ करता है। स्नेह का मार्ग अत्यन्त सीधा होता है उसमें चातुर्य का लेश भी अपेक्षित नहीं। प्रेम में वासना का तिरोभाव हो चुका रहता है और निष्ठा या अनन्यता आ चुकी रहती है, इसमें सर्वात्म भाव से आत्म-समर्पण करना पड़ता है। इसी कारण प्रेम का मार्ग कठिन भी है। लोगों से अहं भाव छोड़ते नहीं बनता सर्वात्म भाव से समर्पण करते नहीं बनता और छल आदि विद्यमान रहता है किन्तु प्रेम में कपट के लिए गुंजाइश नहीं। इसमें बहुत वेदना सहनी पड़ती है। प्रेमी की चाह (प्रीति) रहनि और गति आदि सभी कुछ अटपटी होती है, व्यथा ही उसका जीवन होता है और संयोग भी उसे अधीर करता है। प्रेम रहित व्यक्ति का संसर्ग नहीं करना चाहिए क्योंकि वह संसर्ग के योग्य नहीं होता वह दोष ही देखता है गुण नहीं। उसका हृदय मलिन होता है परन्तु प्रेमी ऐसे लोगों की परवाह नहीं किया करता, वह तो अपनी टेक पर डटा रहता है—'टरै नहीं टेक एक यही घनआनन्द जौं, निरके अनेक सीस खीसनि परै'

धुन । प्रेम का पथ बहुत ऊँचा होता है ज्ञान पथ से भी ऊँचा और अतिशय महत्वपूण ।[1]

**प्रेम का महत्व**

घनआनन्द प्रेम को ससार का और जीवन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व मानते हैं। इसके बिना उनकी दृष्टि मे जीवन व्यर्थ है। इसी से ससार सार्थक है और इसी के बिना अर्थहीन, जैसा कि कबीर ने कहा है—

जसे खाल लोहार की साँस लेत बिनु प्रान ।

प्रेम के बिना मनुष्य मनुष्य नही, उसका हृदय मलिन होता है और मलिन बातो या कामो मे ही वह निरन्तर लगा रहता है। अच्छाई को वह देख नही सकता—

नेह रस हीन दीन अन्तर मलीन लीन
दोष ही मैं रहै गहै कौन भाँति वे गुन ।

ऐसे लोगो से दूर ही रहना चाहिये क्योकि ये सद् सद् विवेक से शून्य होते हैं—

मही बुध सम गन हस-ग्राग भेद न जानै ।
कोकिल-काक न ज्ञान कंचमनि एक प्रमानै ॥
चवन-ढाक समान, राँग-रूपो सम तोल ।
बिन बिवेक गुन-दोष, मूढ कवि क्यौरि न बोल ॥
प्रेम नेम हित चतुरई जे न बिचारत नेकु मन ।
सपने हूँ न बिलबिय, छिन तिन ढिग अनन्दघन ॥

इस प्रेम का महत्व इसी एक बात से प्रत्यक्ष है कि ससार मे जो बहुत सारा प्रेम उमडता और उफनता गोचर हो रहा है वह हरि राधा के अलौकिक प्रेम का ही लौकिक प्रकाश है। उन्ही के अविकल प्रेम का एक कण है जो किसी प्रकार इस सृष्टि में आ गिरा और जिसके कारण इस ससार मे प्रेम का ज्वार आ गया है—

प्रेम को पयोदधि अपार हेरि कै बिचार
बापुरो हहरि वार ही तें फिरि आयौ है ।
ताकी कोऊ तरल तरग सग छूटयो कन
पूरि लोक लोकनि उमडि उफनायौ है ।
सोई घनआनन्द सुजान लागि हेत होत
ऐसें मथि मन प सरूप ठहरायौ है ।

---

१ सुजानहित छन्द ११६, ४१४, २६७, २६६, २१५, ८०, २८५

ताहि एक रस है विवस अवगाहैं दोऊ
नेही हरि राधा जिन्हैं हेरें सर-सायो है।

वहाँ तो ( कदाचित उस लोक मे ) प्रेम का अपार पारावार लहराता हुआ गरज रहा है जिसके विचार मात्र से ही बेचारा हृदय द्वार तक जाकर लौट आता है। उसी की तरल तरगो से पूरा हुआ प्रेम का एक कण इस सृष्टि मे जा गिरा है जिसमे लोक-लोक पूर्ण हो उठे हैं उमड और उफन उठे हैं। वही प्रेम कण है जो प्रेम का महोदधि होकर लोक-लोको को आप्लावित किये हुये है। इस लोक म जितना भी प्रेम गोचर हो रहा है उसी अनन्त प्रेम के कनूके का प्रसार समझना चाहिये। सुजान के प्रति घनआनन्द मे जो इतना उत्कट अनुराग रहा है यह भी अतत उसी प्रेम का ही प्रसार है। यही थोडी सी रहस्यवाद की झलक है हल्की सी सूफी भावना का बिब है लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम से सबद्ध जो कर दिया गया है फिर भी थोडा सा अन्तर है। वे लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेमकी ओर जाने की बात नहीं कहते, लौकिक प्रेम का अलौकिक प्रेम के प्रकाश रूप में ही देखने और समझने की बात कहते हैं। घनआनन्द आगे चलकर जो सुजान प्रेमी से कृष्ण प्रेमी हो गये उसे सूफी प्रभाव मानने की भूल नहीं करनी चाहिये। वह तो परिस्थितियो का फेर था, प्रेम वषम्य की पहली कृपा थी व्रज और वन्दावन के कृष्ण भक्तिमय वातावरण का प्रसाद था और निम्बार्क सप्रदायानुयायी वैष्णव भक्तों की अनुकम्पा थी। प्रेम का बीज नहीं वृक्ष था, उसका काया-कल्प हो गया वह भक्ति का महीरुह बन गया।

घनआनन्द की दृष्टि म प्रेम का पथ महामान्य ज्ञान पथ से भी ऊँचा है। इसमें प्रेमी और प्रिय देखने को ही दो हुआ करते हैं पर वस्तुत एक ही होते हैं। राधा जिस प्रकार कृष्ण को रटते रटत कृष्णरूप हो गई थी। पियमयता प्रेमी को प्रिय के रूप मे ही परिणित कर देती है। प्रेम अपने आप मे एक शुद्ध और निमल वृत्ति है, इस वृत्ति का धारणकर्ता होने पर वासनायें विलुप्त हो जाती हैं अत करण ऐसी रस वष्टि से आप्लावित हो उठता है—

चदहि चकोर करै, सोऊ ससि देह धर
मनसा हू रर एक देखिबे कौं रहै द्वै।
ज्ञान हू ते आगें जाकी पदवी परम ऊची
रस उपजाव तामैं भोगी भोग जात ग्वै।

प्रम का माग सीधा भी कठिन भी

प्रेम का माग अत्यन्त सीधा है सीधा इस दृष्टि से है कि उसम ज्ञान और कम मार्गों के समान भीषण बौद्धिक श्रम और खटराग नहीं वह हृदय का निश्छल

व्यापार है, सर्वात्म भाव से प्रिय का आत्म समर्पण कर दो प्रिय तुम्हारा हो जायगा। इसमें अनन्यता पहली शर्त है छल छन्द के लिए प्रेम पथ नहीं है निर्विकार भाव से पूरी निष्ठा के साथ अशेष रूप में बिना कुछ चाहे हुए अपने आपको अपने सर्वस्व को अर्पित कर देने का ही नाम प्रेम है। इतनी बातों में यदि कहीं भी कोई कोताही हुई या कमी आई तो प्रेमी की तयारी में खोट मान ली जायगी। इसी लिये यह मार्ग निश्छल प्राणियों के लिए ही है जो कपटी लोग हैं वे इस मार्ग पर नहीं चल सकते। सूर की गोपियों ने भी उद्धव से बातें करते हुए यहां कहा था कि यह सीधा मार्ग है—राज पथ इसे निर्गुण के काटों से क्यों रूंध रहे हो।[1] तुलसीदास ने भी इस प्रशस्त पथ को राज डगर[2] ही कह कर पुकारा था बस यही बात प्रणयी घनआनन्द भी अपने विशिष्ट ढंग से कह रहे हैं—

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलै तजि आपुन पौ झझकें कपटी जे निसाँक नहीं।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ इत एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ लला मन लेहु प देहु छटाँक नहीं।

परन्तु घनआनन्द इस मार्ग की कठिनाइयों से अनवगत नहीं उनकी वेदन परक रचनाओं को पढ़ कर तो यही लगता है कि यह आद्यंत यातनाओं का ही मार्ग है और पीड़ा या व्यथा का ही दूसरा नाम प्रेम है। सच तो यह है कि घनआनन्द से अधिक कौन इस मार्ग की यातनाओं को जान सकता है वे भुक्त भोगी थे, प्रेम की पीड़ा उन्होंने जितनी झेली थी संसार में उतनी बहुत कम प्रेमियों ने झेली होगी उनका तो समूचा प्रणय काव्य ही यातनाओं की अनंत गाथा है उसमे कवि के हृदय की एक एक टीस कसक और आह का लेखा जोखा है। इस वेदना का उन्होंने काव्य में तो अद्वितीय निदर्शन किया है पर सिद्धान्त कथन करते हुए केवल संकेत किया है परन्तु उनका संकेत बहुत ही बलिष्ट है आप उसे पढ़ कर इस बात का अनुभव किये बिना न रहेंगे कि यह पथ महा आग्नेय है और स्वच्छन्द कर्त्ताओं ने भी इसी आशय की बातें कही हैं। घनआनन्द जी कहते हैं—हे संसारी लोगो! तुम्हें अपना समझ कर एक तत्व की बात बताये देते हैं। मेरे कहे का बुरा मत मानना और विश्वास न पड़े तो किसी से पूछ भी लेना कि जो कुछ मैंने कहा है वह सही है या गलत।

बुरो जिन मानो जो न जानो कहूँ सीखि लेहु
रसना के छाले पर प्यारे नेह—नाव छ्वै।

---

१ काहे को रोकत मारग सूधो।
सुनहु पथिक निर्गुण कटक तें राज पथ क्यों रूंधो॥ (सूरदास)

२ प्रेम पथ नीको लागत माहिं लगत राज डगरो सो॥ (तुलसीदास)

यह बात प्रेम के सिद्धात ग्रथ, रस ग्रथ या नाय ग्रथ पढने वाले न कभी लिख सक्ते हैं न इतनी तडप के साथ कह ही सकते हैं—हे प्यारे ! इस माग मे आना हो इस पथ का पथिक बनना हो तो जरा सँभल कर आना, नेह का नाम मात्र लेने से रसना मे छाले पड जाया करते हैं। भला ऐसी उक्ति घनआनद के सिवाय और कौन लिख सकता है ! इस माग मे बहुत वेदना सहनी पडती है। कैसा और कितनी यह कही नही जा सक्ती इतना कुछ इस माग की वेदना की निवृत्ति कर जाने के बाद भी घनआनन्द ने जब बार-बार 'नेति नेति' कहा है तब और कोई क्या उसका बखान या निदशन कर सकता है ! फिर भी मोटे तौर से उसकी हलकी सी प्रतीत कराने के लिए प्रेमी का एक चित्र दिया जा रहा है, देखिये वह कसे रहता है ! उसकी रहनि से ही आप अनुमान कर लीजिये प्रेम माग की अनत और अकथ्य भीषणता का—

उठि न सकत ससकत तन-बान बिंधे
इतेहू पै विषम बिषाद जुर लू बर ।
पूरे पन-पूरे हेत-खेत तें हटैं न कहूँ,
प्रीति बोझ बापुरे भए हैं दबि कूबरे ।
सकट समूह मैं बिचारे घिरे घुटैं सदा
जानी न परत जान ! कसें प्रान ऊबरे ।
नेही दुखियानि की यहै गति अनदघन,
चिंता मुरझानि सहैं याय रहैं दूबरे ।

प्रम पथ की इन्हीं कठिनाइयों के कारण यह माग वसे रायज (चलता) तो बहुत है पर सच्चे प्रेमी बहुत ही कम मिलते हैं। सच तो यह है कि सच्चा स्नेही ससार में दुलभ है यदि सच्चा स्नेही मिले भी तो विधाता उसके जीवन को कष्टमय बनाये बिना नहीं रहता। इस कष्ट का मूल कारण वियोग है, प्रेम मे वियोग अनिवाय है और यह वियोग ही जीवन को विषाक्त कर देता है। वियोग की वेदना सयोग में भी पीछा नहीं छोडती और अधीर करती रहती है जो इस मार्ग का पथिक हो उसे विरह की अनन्त ज्वालामयी यातनायें सहने के लिए तयार रहना चाहिये—

इक तौ जग माझ सनेही कहाँ पै कहूँ जो मिलाप की बास खिलै ।
तिहि देखि सक न बडो विधि कूर वियोग समाजहि साजि पिलै ॥
घनआनद प्यारे सुजान सनो न मिलो तो कहो मन काहि मिलै ।
अमिले रहिबो ल मिले तें कहा यह पीर मिलाप मैं धीर गिलै ॥

## प्रेम पथ की सफलतता

जो इतने कष्टो को झेल सकता है वही इस पथ को पार कर सकता है। जो इस

पथ पर आना चाहता है वह दो चार बातें गिरह बाँध ले—उसे सब कुछ अर्पण करना होगा, कुछ भी पाने की इच्छा न रखनी होगी परम दुर्गति के लिए तैयार रहना होगा, धीरज प्रेम और निष्ठा में कभी न आने देनी होगी अनन्यता रखनी होगी, निष्कपट रहना होगा क्योंकि 'तहाँ साँचे चलें तजि आपुनपौ झिझकें कपटी जे निसाँक नहीं'। इस मार्ग में पथिक को सर्वथा आत्मसमर्पण करना होगा, अपना सब कुछ भूल जाना होगा। इसमें जो बेसुध हो जाता है सब कुछ भूल जाता है वही चलता है जो सब कुछ की याद रखता चलता है वह थक कर बैठ जाता है। अपनी अमोघ विरोधाभासात्मक शैली में घनआनन्द ने असाधारण सुन्दरता से इस तथ्य का प्रतिपादन किया है—

> 'जान घनआनन्द अनोखो यह प्रेम पंथ,
> भूले ते चलत, रहैं सुधि के थकित है।'[1]

प्रेम में सब कुछ भूल जाना होगा, चेतना विलुप्त कर देनी होगी तभी कुछ पाया जा सकता है, पर पाने की आशा भी न की जाय यही प्रेम का उच्चतम आदर्श है जैसा कि तुलसीदास ने भी लिखा है -

> चातक तुलसी के मते स्वाँतिहु पियै न पानि।
> प्रेम तृषा बाढ़ति भली घटे घटेगी कानि॥ (तुलसीदास)

इसी कारण कालान्तर में प्रेम मार्ग के अनन्य पथिक घनआनन्द की वृत्ति भी हम ऐसी ही पाते हैं वे प्रिय का हित चाहते हैं अपना नहीं, उन्हें कष्ट मिले यह उन्हें मंजूर है पर प्रिय को मिले यह उन्हें असह्य है।

## (ख) प्रेम-व्यंजना

मुख्यतः 'सुजानहित' और कुछ प्रकीर्णकों में ही घनआनन्द की लौकिक प्रेम भावना की अभिव्यक्ति हुई है। सुजान उसके प्रेम का आधार है जिस पर सारी भावनायें केन्द्रित हैं वह कमी थी और कवि उस पर किस कदर रीझा हुआ था कवि पर उसके रूप का कैसा गहरा और जोरदार असर था यह हम देख चुके हैं। अब हम उस प्रेम भावना की ही विस्तारपूर्वक चर्चा करना चाहते हैं जो घनआनन्द के काव्य का प्रधान वर्ण्य है।

घनआनन्द के प्रेम का आरम्भ किस प्रकार हुआ इसका वृत्त नहीं मिलता। अनुमान के आधार पर यही कहा जा सकता है कि जब सुजान को पहली बार

---

१ यही बात बिहारी ने भी अपने ढंग से कही है—

> गिरि से ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार।
> सोइ सदा पसु नरन को प्रेम पयोधि पगार॥ (बिहारी)

मुहम्मदशाह रँगीले के मीर मुंशी घनआनन्द ने 'रँगीले शाह' के दरबार मे देखा होगा तभी से उनके चित्त मे प्रेम का बीज वपन हुआ होगा। निश्चय ही यह बीज दिनों दिन जोर पकड़ता गया होगा—दोनो पक्ष मे यह समान रहा हो ऐसा नहीं कहा जा सकता, पर घनआनन्द के पक्ष मे निश्चय ही रीझ का भाव दिन दिन दृढतर होता गया होगा। घनआनन्द सभा मे तो नही किंतु अलग से उससे व्यक्तिगत भेंट अवश्य करते रहे होगे। यह भेंट सभव है बहुत बार हुई हो। सुजान वेश्या ने थोडा-बहुत प्रेम भी जतलाया होगा, बातें ता बहुत बार की होगी यह निश्चत है, देखने का तथा समझाने का मौका भी बहुत बार मिला होगा। कितनी ही बार कितनी ही दृष्टियों से उसे देखा होगा और नजदीक आने का मौका मिला होगा पर यह सब वैसा ही था जैसा कि बहेलिये पक्षियों के लिये किया करते हैं। यह सब चारे और लासे से अधिक न रहा होगा। एक सहृदय हृदय सुजान की बेवफाई का शिकार हो गया। घनआनन्द का सारा काव्य इसी शिकार होने और बलि चढ जाने की कहानी है। ऐसी कहानी जो आँसुओं से लिखी गई है और भावो की भाषा मे गाई गई है। हिन्दी के कवियो के इतिहास मे प्रेम की वेदिका पर इतनी बड़ी बलि कभी नही चढ़ी। जो लोग यह कह कर घनआनन्द के प्रेम की भर्त्सना करते हैं कि वह एक मुसलमान रमणी और वेश्या पर मुग्ध थे वे प्रेम की उस आतरिक पीडा का आनन्द नहीं पा सकते, उस मधुर प्रेम रस के स्वाद से आजीवन अवगत नही हो सकते जो अभूतपूर्व परिणाम मे घनआनन्द के काव्य के संचित है। प्रेम भावना की यह नितात निजी और स्वानुभूत अभिव्यक्ति धनआनन्द के काव्य की सर्वोपरि विशेषता है। आगे चल कर यह लौकिक वासना और आसक्ति ही घनआनन्द के भौतिक पराभव का कारण हुई। सुख के दिनो की मगनी सुजान बेवफा निकली उसका प्रेम दिखावा था, छल था धोखा था। वह चार दिनो की ही बात थी। हो सकता है सुजान के मन में भी घनआनन्द के लिए कुछ स्थान रहा हो परन्तु इसके विशेष प्रमाण नही मिलते। जो थोडे प्रमाण मिलते हैं उनकी चर्चा जीवनवृत्त के प्रकरण मे की जा चुकी है। घनआनन्द ने इन सब बातों की सैकडो छदो मे शिकायत लिखी है पर जो कष्ट उन्हें भोगने पडे उसके लिए उन्होंने सुजान को कभी दोष नही दिया है। सारा दोष अपने मुकद्दर के सिर मढ दिया है। घनआनन्द की वफादारी यदि सुमेरु के बराबर थी तो सुजान की तिल के बराबर भी नही। घनआनन्द वियोग मे भी सब कुछ हारने को तयार थे वह सयोग में भी नाक चढाये ही रहा करती थी। घनआनन्द ने चाहे कितनी ही बार उसके सारे सुभाय और आछी हँसनि की चर्चा की हो पर जिन शत शत छदो मे उन्होंने उसके निष्ठुर आचरण की चर्चा की है वह पुकार-पुकार कर सुजान की बेवफाई की गाथा कह रहे हैं। रँगीले शाह द्वारा राज्य से निष्कासित होने पर घनआनन्द ने सुजान के पास जाकर साथ देने को कहा पर वह नतकी

इन्कार कर गई—सहानुभूति के दो शब्द भी न बोली। आगे का प्रमवृत्त स्पष्ट ही है। घनआनन्द का जीवन सुजान की स्मृतियो की समाधि बन गया। उनका विरह अनन्त हो गया। वे सुजान को कभी न भूल सके। भक्ति उनके लिए एक विवशता थी और अच्छी विवशता थी—कृष्ण और ब्रज तथा गोकुल आदि का निवास स्मरण ध्यान, सत्सग उनके जीवन मे कुछ नवचेतना रस और ताजगी ही ले आया होगा। प्रेम इस उखडे हुए पौधे को ब्रज और वृन्दावन के हरियाले वृक्ष के रूप में देख कर हमे अतिशय प्रसन्नता होती है।

## ● सयोग पक्ष

घनआनन्द के काव्य मे सयोग पक्ष का चित्रण बहुत कम है, परन्तु जो कुछ है उसे देखने से प्रतीत होता है कि कवि को सुजान के साथ शारीरिक सामीप्य स्थापित करने का सुयोग प्राप्त हुआ था। अत्यधिक अवसर इस प्रकार के लब्ध न हुए हो परन्तु ऐसे अनेक प्रसग उनके अल्पकालीन सयोगावस्था मे प्राप्त हुये थे जिनका उन्होने पूर्ण लाभ उठाया था। कदाचित यही कारण है कि उस सुख की बडी मादक स्मृतियाँ और सभोग स्थिति के अनेक मर्मस्पर्शी चित्र वे प्रस्तुत कर सके हैं।

लगभग ५०० छन्दो के सुजान प्रेम विषयक विशद काव्यराशि मे केवल बीस तीस छन्द ही सयोग वर्णन से सम्बन्ध रखते हैं। सुजान के रूप सौन्दर्य और उस पर घनआनन्द की रीझ का वर्णन करने वाले छन्दो की सख्या अवश्य बडी है। शताधिक छन्दो मे सुजान के रूप का आकर्षण वर्णित हुआ है जिसकी चर्चा हम अभी विस्तार से कर आये हैं।

सयोगावस्था का वर्णन करते हुए कवि ने पूर्व सभोग सभोग और पर ससभोग स्थितियो का चित्रण किया है। सर्वप्रथम सयोग वर्णन के प्रसग मे आसन्न योग के सुख का उल्लास देखिये जिसमे रोम रोम मे उमग है, रोम रोम आनद से सचित हो रहा है, दौड दौड कर सगुन मना रहा है तथा अगअग से उल्लास फूटा पड रहा है—

> ललित उमग बेली आलबाल अतर ते
> आनद के घन सींची रोम रोम ह्वै चढी।
>
> आगम उमाह चाह छायो सु उछाह रग
> अग अग फूलनि दुकूलनि पर कढी।
>
> बोलत बधाई दौरि दौरि क छबीले दग
> बसा सुभ सगुनौती नोकें इन है पढी।
>
> कचुकी तरकि मिले सरकि उरज भुज
> फरकि सुजान चोप चुहल महा बढी।

समाग-पूर्व स्थिति के चित्रण में पहले तो कवि ने अपने सामीप्य लाभ और संसर्ग की लालसा का वर्णन किया है अपने हृदय के अंतस्तम के अभिलाषों को व्यक्त किया है। कामात्त पुरुष कितना दीन हो जाता है स्थूल अंग भोग की लालसा से प्रमत्त हो क्या कुछ करने को प्रस्तुत नहीं हो जाता यह देखना हो तो घनआनन्द के इस छन्द को देखिये जिसमें वे कहते हैं—

> उर आवत है अपने कर ह्वै बर बेनी बिसाल सों नीके कसौं।
> अति दीन ह्वै दीन नीचिय दीठि कियें अनखौहैं सुभाव के त्रास त्रसौं।
> घनआनन्द यों बहु भांतिनि हीं सुखदान सुजान समीप बसौं।
> हित-पायनि च्वै चित चाहत न नित पायन ऊपर सीस घसौं।

अर्थात वे परम दीन होकर, हाथ जोड़कर आँखें नीची करके उसके आज्ञानुवर्ती अनुचर बन जाने को तैयार हैं क्योंकि उनकी यह परम लालसा है कि वे सुखदायिनी सुजान के समीप रहने का अवसर प्राप्त करें। इस शारीरिक सामीप्य लाभ के लिए वे नत मस्तक हो उसके पैरों पर अपना सिर रगड़ने के लिए भी तैयार हैं। स्थूल वासना प्रेरित मनोदशा का यह चित्र कितना जीवंत है। अनेक बार उन्होंने सुजान के परों पर अपना सिर रख देने का भाव लालसा या रीझ या प्रीति की अतिशयता दिखलाने के लिए प्रस्तुत किया है। इससे उनकी शारीरिक तृषा और क्षुधा के साथ साथ अशेष रूप से मानसिक आत्मसमर्पण का भी पता चलता है। यह सब घनआनन्द निःसंकोच रूप से लिख गये हैं क्योंकि सुजान के प्रति उनके हृदय में जो भी भाव थे उसे वे छिपाना नहीं चाहते थे। सुजान के शारीरिक अंगों के प्रति, रूप के प्रति, सौन्दर्य-वर्द्धक अन्याय उपकरणों के प्रति स्वभाव तथा नृत्यागनादिक गुणों के प्रति कवि के जो भाव थे उसकी जो अशेष रीझ थी उसकी चर्चा हम पूर्ववर्ती प्रकरण में कर आये हैं। यहाँ उस सम्बन्ध में इतना ही कहना शेष है कि उसके अंग-अंग से बरसते हुए रूप रस, रस, और गुण के प्रति वे अपना क्या कुछ निछावर करने को तैयार नहीं थे। अपनी सबसे मूल्यवान संपदा मन को उन्होंने उसके प्रति निछावर कर दिया था, बदले में वह प्रेम तो क्या चार गालियाँ भी दे देती तो घनआनन्द खुश हो जाते। इस सीमा तक पहुँची हुई रीझ का चित्रण दूसरा कौन कवि कर सकता था। रीतिबद्ध कवि तो इस अनूठे प्रेम पथ पर जा भी नहीं सकता था। प्रणय में वासना और वासनाजनित यह दैन्य अपनी समूची यथार्थता के साथ घनआनन्द के काव्य में अवतरित हुआ है। इस भाव में कोई सदाचारी हीनता देख तो देख सकता है पर साथ ही साथ कवि की अपने प्रति, अपने प्रेम के प्रति अपने प्रिय के प्रति ईमानदारी और वफादारी भी देखने लायक है। इस प्रकार के रूप और रीझ अथवा आवर्षण के भावों का निदर्शन एवं दो छन्द यहाँ हम आशय के भावों का प्रतिनिधित्व कराने के उद्देश्य से दिया जा रहा है—

दसन बसन ओली भरिय रहै गुलाल,
हसनि-लसनि त्यों कपूर सरस्यो कर।
सांसनि सुगंध सौंधे कोरिक समोय धरे
अंग अंग रूप रंग रस बरस्यो कर।
जान प्यारी ! तो तन अनदघन हित नित
अमित सुहाग राग फाग दरस्यो करै।
इते पै नवेली लाज अरस्यौ कर जु, प्यारो
मन फगुवा है, गारी हू कौं तरस्यो कर।

जब सुजान ही काम और यौवन से उन्मत्त नजर आ रही हो तब तो प्रमी की अतदशा का कहना ही क्या ?

मृदु मूरति लाड-दुलार भरी अंग अंग विराजति रंग मई।
घनआनन्द जोबन माती दसा छबि छाक्त ही मति छाक छई॥
बसि प्रान सलोनी सुजान रहो चित प हित हेरनि छाप दई।
वह रूप की रासि लखी तब तें सखी आँखिन कैं हटतार भई॥

उसके यौवन के नशे से छकी हुई मति, प्रेम भरी चितवन की छाप से अंकित चित और टकटकी बाँधे हुए नेत्र कवि की मनोदशा भली भाँति व्यक्त कर रहे हैं। उसकी हुलास या आतरिक हर्ष से भरी मुस्कान को अधरो और कपोलो पर खेलता देखकर अजन अजित बडी बडी आँखा की लचीली चितवन और सौभाग्य दीप्तभाल को देखकर घनआनन्द उसके अनुराग को पहचान लेते हैं। अब ऐसी सुजान को समीप देखकर अग-अग की लताक और पिपासा का चित्र देखिये। कामोद्रेक के सूचक स्वेद बिंदुओ को उसके मुख पर छलका हुआ देख कर प्राणो की ईर्ष्या, सामीप्य लाभ की तृषा मोह मदिरा मे छक कर उस बीजना झलने और चुबन करने की आरोक ललक ऐंद्रिकता लिये हुए है। इसके बाद चिबुक को पकड कर नक्टय स्थापन की कामना और केलि की इच्छा से दाँव तामने की बात भी की गई है। यह तो हुआ पुरुष पक्ष का चित्र। उधर कामिनी पक्ष म भी प्रतिक्रिया इतनी प्रखर न होते हुए भी पर्याप्त अनुकूल है जो स्त्रियाचित भी है और स्वाभाविक भी। वह सलज्ज भाव स देख रही है (वर्जन नहीं कर रही) अपनी चितवत से अपना प्रेम जाहिर कर रही है और अपनी हँसी की वर्षा द्वारा घनआनन्द को सीच दे रही है। उसकी य मुद्रायें खुले आमत्रण से कम नहीं—

रति सुख स्वेद-ओप्यौ आनन बिलोकि प्यारो,
प्राननि सिहाय मोह-मादिक महा छक।

पीतपट-छोर ल स ढोरत समीर धीर,
चुबन को चायनि सुभाय रहि ना सक ।
परसि सरस बिधि रुचिर चिबुक त्योंही
कपति करनि केलि-चाव दावें ही तक ।
लाजनि ससौहीं चितवनि चाहि जान प्यारी,
सींचति अनदघन हांसी सौं भरी नक ।

इस प्रकार कवि न सुजान मा देख कर कामोद्दीप्त शरीर की तृषा और क्षुधा के उत्तरोत्तर बढ़ने और लालसाओं क उद्दाम होन का जीवत चित्र प्रस्तुत किया है ।

साक्षात सभोग के वणनों में कवि ने एक छद में सुजान के माधुय पूण और प्रसन्न मुखमडल चचल और विशाल नेत्रों की लाज भीनी चितवन तथा काम की तरगों में बह कर रस के वश में होकर आलिगन करन और ललक मिटा चुकने के बाद शिथिल पड जाने का साकेतिक चित्रण किया है । दूसरी जगह पयक पर शयन करने और सुरति रस लूटने का अकथित कथन हुआ है आभरणादि के उतारने अगा के सम्हालने और ठौर-ठौर रखने तथा नई-नई अभिलाषाओं के जागत होन, रस मे भर कर झूमने एक दूसरे को भला भाति ग्रहण करने और चूमने का कथन हुआ है—अन्य बातें अकथित रह कर भी कथित सी हो गई हैं । एक तीसरा चित्र है जिसमें फागुन की रात्रि में यौवन के रग मे भरे हुए काम की तरगों मे बहत हुए अगों मे अग मिला कर व साते हुए प्रेमियो का चित्रण हुआ है । नीचे ये तीनो चित्र प्रस्तुत हैं—

(क) केलि की कला निधान सुंदरि महासुजान
आन न समान छबि छाह पै छिपैय सौनि ।
माधुरी मुदित मुख उदित सुसील भाल
चचल बिसाल नन लाज भीजियै चितौनि ।
पिय-अग-सग घनआनन्द उमग हिय,
सुरति तरग रस बिबस उर मिलौनि ।
झलनि अलक आधो खुलनि पलक स्वम
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि ।

(ख) पौढ़ घनआनन्द सुजान प्यारी परजक
धरे धन अक तऊ मन रक गति है ।
भूषन उतारि अग अगहि सम्हारि नाना
रुचि के बिचार सों समोय सीझी मति है ।
ठौर ठौर लै ल राखैं और और अभिलाखैं,
बनत न माख तेई जान दसा अति है ।

मोद मद छाके घूमें रोझि मोझि रस झूमें,
गहैं चाहि रहैं चूमें अहा कहा रति है।

(ग) भरि जोबन रग अनग उमगनि अगाहि अग समोय रह।
उर फागुन दाव को चाव रच्यो सु मच्यो खुल खेलि जु गोय रहे॥
घनआनन्द चोपहि चोपनि ल उर चोचद नेकु न सोय रहे।
द्रग रावरे छल खिलार महा कहा नीके गुलाल में भोय रहे॥

इसक पश्चात कुछ चित्र पर सभाग दशा क हैं जी रीतिबद्ध कवियो की शब्दावली मे सुरतात' स्थितियो के चित्र कह जायेंगे। इसमे होली की निशा के सभोग सुख क अनतर अपने वस्त्रो का ठीक करती हुई होली क रगा और रात के चिन्हो को पोछती और मिटाती हुई प्रसन्नवदन प्रमिका का चित्र है, रात्रि को रति क्रीडा से श्रमशिथिल सुजान की सोती हुई अवस्था का चित्र है जा बहुत ही प्रभावशाली और चित्रात्मक है—

मद उनमाद स्वाद मदन के मतवारे,
केलि क अवार लौं सवारि सब सोए हैं।
मुजनि उसीसो धारि अतर निवारि, जानु
जघनि सुधारि तन मन ज्यों समोए हैं।
सपने सुरति पाग महा चोष अनुराग
सोए हू सुजान आग ऐसे भाव मोए हैं।
छूटे बार टूटे हार आनन अपार सोभा,
भरे रस-सार घनआनन्द अहोए हैं।

पर सभोग दशा क अन्य चित्र इस प्रकार हैं—प्रमिका अतिशय रस से उत्पन्न आलस्य मे भीगी हुई है अभी अभी सोकर उठी है मुख पर प्रसन्नता और तृप्ति की आभा है, अलकें बिखरी हुई हैं, वह अंगडाइया और जमुहाई ले रही है। नेत्रो म उसके लज्जा का भाव है अग अग स अनग दीप्ति उठ रही है। जो कुछ बालती है आधा अधरों से स्फुट होता है आधा अस्फुट ही रहता है। उधर चेहरे पर एक मस्ती भी झलक रही है। सभोग तृप्त प्रणयिनी का यह चित्र कितना सजीव और परिपूर्ण है जसे कही आने वाली हर बात कह दी गई हो—

रस आरस भोय उठी कछु सोय लगी लस पीक पगी पलक।
घनआनन्द ओप बढ़ी मुख और सुफलि फबी सुथरी अलक।
अगराति जम्हाति लजाति लखें अग अग अनग दिपै झलक।
अधरानि में आधिय बात धरै लडकानि की आनि परै छलक।

रति रंग में अनुरक्त प्रीति में पगे हुए, रात्रि के जगे हुए नेत्रों की नाना भावमयी दशा देखिये—

रतिरंग राते प्रीति पागे रैन जागे नैन,
लागेई आनत घूमि घूमि छबि के छके।
सहज बिलोल परे केलि की कलोलनि में
कबहू उमगि रहें कबहू जके थके।
नीकी पलकनि पीक लीक झलकनि सोहैं
रस बलकनि उनमदि न कहूँ सके।
सुखद सुजान घनआनँद पोखन प्रान,
अचिरज खानि उघरें हूँ लाज सों ढके।

ये नेत्र नींद की बाढ़ से झेंपे जाते हैं— काम क्रीड़ा में ये कभी उमगित होते हैं और कभी शिथिल और जड़ हो जाते हैं—पलकों पर पीक की लीक झलक रही है और नेत्रों में उन्माद या खुमारी भरी हुई है। सुजान के ये सुखद नेत्र घनआनँद के प्राणों का पोषण करते हैं। आश्चर्य की खान हैं ये नेत्र जो खुले होकर भी लज्जा से ढके हुए हैं। रात्रि को सभोग सुख में बिता कर रात भर जगी रहने वाली सुजान के जो चित्र हैं उनमें परंपरागत चित्रों से कोई विशेषता नहीं है—कम से कम कथ्य वही है कथन पद्धति में जरूर कवि की थोड़ी छाप है। फलस्वरूप पिष्टपेषित वर्ण्य के होते हुए भी वर्णन अधिक चित्रात्मक बन पड़े हैं—

(क) रस रैनि जगी प्रिय प्रेम-पगी अरसानि सों अंगनि मोरति है।
मुख ओप अनूप बिराजि रही ससिकोटिक वारने, को रति है।।
अँखियनि में छाकनि की जढ़ताई हियो अनुराग लै बोरति है।
घनआनँद प्यारी सुजान लखें हरि डीठि हितू तिन तोरति है।।

(ख) सुख-स्वेद कनी मुखचंद बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली।
मद जोबन, रूप छकी अखियाँ अवलोकनि आरस रंग रली।।
घनआनँद ओपित उच्च उरोजनि चोज मनोज के ओज दली।
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ बेलिफली।।

(ग) कन स्वेद भयो सु बिराजत यों उडुगो नभ तारनि संग भयो।
मद लाली चढ़ अति ओप बढ़ मुख चंद तें प्रात पतंग भयो।।
भयो आदिहि कंज कुमोदनि के, रति अंत बहे भ्रम भंग भयो।
घनआनँद ओज मनोज उमंगनि अंगनि अद्भुत रंग भयो।।

रात्रि कामक्रीड़ा में व्यतीत कर प्रेम में पगी हुई सुजान जब प्रात अँगड़ाई

लेती है उस समय उसके मुख की अनुपम कांति देखने योग्य होती है—उस छवि के सामने करोडो चद्रमा और रति निछावर किये जा सकते हैं, उसकी आँखो म सभोग जन्य तृप्ति की जो अरुणिमा है उसे देख कर हृदय उसके अनुराग मे डूब जाता है। सभोग-सुख से उत्पन्न स्वेद के कण उसक मुख पर छवि दे रहे हैं, उधर बिथुरी केश राशि का छटा भी अकथनीय हो रही है उसका यौवनोन्मत्त स्वरूप रूप तृप्त नेत्र, आलस्यपूर्ण अवलोकन और दीप्तिपूर्ण उत्पन्न उरोजो की मनोजदलित शोभा भी कही नही जा सकती—ऐसी रसीली सुजान के अगो की शिथिल गति और लजीली शोभा को देख कर लगता है जैसे मनोरथों की वल्लरी फलयुक्त हो उठी हो—यह उक्ति कितनी साथक है—सुजान मनोरथ बेलि फली। इसी प्रकार और भी कुछ चित्र हैं।

कुछ छदो मे सभोग के मादक सुख की याद की गई है। ये छद सुरतात स्थिति चित्रण वाले छदों से भिन्न हैं। इनमे कही तो स्मति के साथ साथ अतृप्ति का वणन है कहीं सुजान के प्रति घनआनन्द ने अपनी अनत तृषा का वणन किया है कही सभोग की सुखद स्मति के साथ साथ अनुराग की वृद्धि का होना कथित हुआ है और कही भुक्त भागी की भाँति यह कहा गया है कि सुजान के ससग-सुख से बडा सुख दूसरा नही—

(क) अधरासव पानि कै छाक छके कर चापि कपोल-सवाद पगे।
घनआनन्द भीजि रहे रिझवार लगे सब अग अनग दगे ॥
करि खडन मडन मडन है निरखे तें अखडित लोभ लगे।
सुखदान सुजान समान महा सु कहा कहौं, आरसी भाग जगे ॥

(ख) मूरति सिंगार की उजारी छबि आछी भाँति
दीठि लालसा के लोयननि लै ल आजिहौं।
रति रसना-सवाद-पाँवडे पुनीतकारी,
पाय चूमि चूमि क कपोलन सों माँजिहौं।
जान प्रान प्यारे अग-अग रुचि रगनि मैं
बोरि सब अगनि अनग दुख भाजिहौं।
कब घनआनद ढरौंहीं बानि देखें सुख,
सुधा-हेत मन घट-बरकनि राजिहौं ।

(ग) मीत सुजान मिले को महासुख अगनि मोय समोय रह्यो है।
स्वाद जग रस रग-पगे अति जानत वेई न जात कह्यो है।
ह्व उर एक भए घुरि क घनआनन्द सुद्ध समीप लह्यो है।
रूप अनूप तरगनि चाहि तऊ चितचाह प्रवाह बह्यो है ॥

(घ) ह्व निसवादिल आत रसौ मन तेरे सुभाव मिठासहि पाग।
आन द जान कहौं तुव आनन लागि न आन मों लोयन लाग ॥

घन में सैन करैं सब ओर तें भावते भाग जो तो मिलि जागैं।
रग रच सु ठि स ग सचै घनआनन्द अगन क्यों सुख स्यागैं।।

इन स्मृतिपरक छदों मे अधरासव पान से छकने, अपने हाथों से प्रेयसी के अगों को चांपने, कपोलों के स्वाद म पगने रीझ से भीगने अगो म अनग ज्वाला के जगने और सुजान के प्रति अखड लोभ के जगने आदि का वणन करते हुए उसकी महासुखदायिनी क्षमता का कथन किया गया है और इस सुख की उपलब्धि म अपने भाग्य के जगने की भी बात कही गई है। दूसरे छद मे शृगार मूर्त्ति सुजान की छवि और अगों के प्रति जो आसक्ति कथित हुई है उसमें उच्चकोटि के भक्ति काव्यों मे प्राप्त स्वच्छता, पवित्रता और भावोमेष के दशन होते हैं—घनआनन्द शृगार की मूर्ति सुजान की उज्जवल छवि से अपने नेत्रो को नहीं वरन् अपनी दशनोत्कठा के नेत्रों को आंजना चाहते हैं इसी प्रकार अपनी कामास्वादिनी वृत्तियो को पुनीत या कृतार्थ करने वाली सुजान के चरणो को चूम चूम कर वे उसे अपने कपोलो से मार्जित करते रहने की कामना व्यक्त करते हैं (थोडी सी तृप्ति पाकर शब्दो में इतनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं ! क्या यह कवि की निमल और अनन्त रीझ का द्योतक नहीं ?) वे सुजान के अग-अग की कांति और लावण्य म अपने ममग्न अगों को डुबा कर अपने अनग दु ख को भजित कर देना चाहते हैं तथा उसके कृपा पूण प्रेमामृत से अपने सतप्त मन की दरारो को भर देने की अभिलाषा रखते हैं। सुजान की प्राप्ति के महा सुख से उनके अग भीग उठे हैं उनके रस रग पगे अग ही उस सुख का जानते हैं, कवि को ऐसा शद्ध सामीप्य लब्ध हुआ कि कुछ काल के लिए द्वैत भाव जाता रहा—द्वैत डर एक मए छुरी क घन आनन्द कुछ समीप लह्यो है रूप की अनुपम तरगों को देख कर चित्त प्रेम प्रवाह म बहा जाता है ऐसे एसे सुख सयोग में मिले हैं फिर भला उनकी स्मृति क्योकर भुलाई जा सकती है। सुजान के स्वभाव की मिठास में पग कर ससार के अन्य रस या स्वाद फीके लगने लगते हैं घनआनन्द सौगध खाकर कहते हैं कि हे सुजान ! तेरे आनन पर अनुरक्त होकर ये नेन किसी और की ओर देखते भी नहीं, यदि कभी तुम्हारे साथ मिल कर रात्रि व्यतीत करने का अवसर मिल जाय तो उसे ही अपना सबसे बडा सौभाग्य समझते हैं तुम्हारे साथ रग रचने और सुभग ससग स्थापित करने का सुख और सौभाग्य मेरे भुक्त भागी अग भला क्योंकर छोड सकते हैं ? यहाँ शुद्ध आमुष्मिक या ऐंद्रिक तृषा है पर कितने निश्छल रूप म व्यक्त की गई है।

वीभत्सता और कुरुचि का कहीं लेश भी नहीं और मन का भाव इन्द्रियों की हर वासना पूरे पूरे तौर स कह दी गई है। सुजान के सयोग वणन म भी सभोग की स्थूल क्रियाओं का वणन विशेष नहीं किया गया है ध्यान अधिकतर कवि की मानसिक दशा के निदशन पर केन्द्रित मिलता है। सयोग वणन म वासना और ऐन्द्रिकता का भाव पूरा पूरा है बहुत सारा रीझ और आकषण उसी से सम्बधित है पूरा का पूरा

प्रेम व्यापार लौकिक है सारी रीझ इन्द्रियों की ही है, इन्द्रियों के ही प्रति है, पर गदी कामुकता और छिछोरापन यही नही। ऐन्द्रिक रीझ और वासना एकनिष्ठ हो परिष्कृत और पवित्र हो गई है। कवि की सच्ची प्रीति लगन और निष्ठा ने उसमें दीप्ति और पुनीतता पदा कर दी है। यहाँ यह नही कहा जा रहा है कि घनआनन्द दवी प्रेम के पुजारी थे। उनका मूल रूप लौकिक प्रेमी का है पर बोधा जैसी कामुकता उनमे कही नही। ऐसे भीषण और असयत कथन वे कहीं नही करते पाये जाते—

यों बुरि केलि कर जग में नर धन्य वहै धनि है वह नारी।

घनआनन्द की प्रम वणन भाव अनुरुद्ध अकुठ है उनके गति से फूटे हैं पर उसमें एक आन्तरिक सयम है एक सस्कार है जो कवि के निजी जीवन और व्यक्तित्व की चीज है जो आगे चल कर उनके कृष्ण भाव और भक्तिपरक रचनाओ मे और भी परिशुद्ध और उज्जवल रूप मे गोचर होती है।

सयोग मे वियोग

सयाग की यह स्मृति उनके वियोगपूर्ण जीवन भर जागत रही। सयोग की अल्पकालीन अवधि के गिने चने सखद प्रसगो की स्मृति के आलोक मे वे जीवन भर सुजान का रूप देखते रहे उसके अगा के सौंदय पर निसार होते रहे और उन्हीं थोडे से सभोग के अवसरो की याद कर विसूरते रहे। उनके जीवन मे सयोग अस्थायी तत्व था स्थायी तत्व तो वियोग ही था जिससे कभी वियोग नहीं होता था—सयोग म भी नही। इसी से सयाग का पूरा मजा वे न ले पाते थे वियोग उनके पीछे पडा रहता था। उन्हें बार बार ऐसी बात कहनी पडी है कि—

यह कसो सँजोग न जान पर जु वियोग न क्योंहू बिछोहत है।

सभोग की परम सुखद और चेतना शून्य स्थिति के बीच भी वियोग की लहर जाग उठती थी और सभोग का सारा मजा किरकिरा हो उठता था। निम्नलिखित चरण में यही मनस्थिति व्यजित हुई है—

पौढे घनआनन्द सुजान प्यारी परजक,
घरे धन अक तऊ मन एक गति है।

और यही भाव प्रकारातर से अधोलिखित छन्द म भी व्यक्त हुआ है जिसके कारण सयोग सुख से तृप्त हो सोते हुए भी उन्हें नीद नही आती—

सोए हैं अगनि अग ममोए सु भोए अनग के रग निसयौं करि।
केलि कला रस आरस आसव पान छके घनआनन्द यौं करि॥

पै मनसा मधि रागत पागत लागत अकनि जागत ज्यौं करि ।
ऐसे सुजान बिलास निधान हो सोए अगे कहि क्योंरिय वयों करि ॥

सयोग मे भी वियोग बना रहता है उसकी खटक लगी रहती है यह बात बार-बार कही गई है। कवि कहता है कि यह प्रेम अनोखा है, यह लगन अनोखी है कि मन सदा अधीर रहता है हृदय मे सदा धडक लगी रहती है मिलने पर भी मिलने का सा मजा नही आता। प्रिय क पास बठे रहने पर भी ऐसी धडक (या खडक) लगी रहती है कि वियोग का खटका सदा बना रहता है, प्रिय को देखते-देखते बीच मे से वियोग का भय औचक लगता है यह एसा वियोग का भय है जो सयोग म भी नहीं छूटता। देखने मे भी न देखने का (माव का भय) बना रहता है और मिलने में भी न मिलने के भाव का पोषण होता है (पृथक्ता की आशका ग्रस्त किये रहती है)। प्रेम की यह अनोखी लगन है (चटपटी या आतुरता है) कि बिछुडने पर मिलने की आकाक्षा होती है और मिलने पर वियुक्ति का भय मारे डालता है—

(क) हिलग अनोखी क्योंहू धीर न धरत मन
परि-पूरे हिय मैं धरक जागिये रहै।
मिले हू मिले को सुख पाय न पलक एकौ,
निपट विकल अकुलानि लागिय रहै।

(ख) ढिग बठहू पठि रहै उर मैं धरकै खरकै दुख दोहतु है।
वग आगे तें बरी कहू न टर जग-जोहनि अतर जोहतु हैं॥
घनआनद मीत सुजान मिलें बसि बीच तऊ मति मोहतु है।
यह कसो सजोग न बूझि परै जु वियोग न क्योंहू बिछोहतु है॥

(ग) देखें अनदेखनि प्रतीति पेखियति प्यारे
नीठ न परत जानि डीठि किधौं छल है।

× × × ×

कहा कहौं आनन्द के घन जानराय हौ जू
मिले हू तिहारे आनमिले को कुसल है।

(घ) मोहन अनूप रूप सुदर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह की।
अनोखी हिलग दैया! बिछुर तौ मिल्यौ चाहै,
मिलेहू मैं मार जार खरा बिछोह की।

(ड) बिछुरे कित सयोग मिलेहू नहीं तिं, छिदो छतिया अकुलानि धुरी।

● स्वप्न सयोग

सयोग कभी-कभी स्वप्न म भी हो जाया करता है पर उस स्वप्न सयोग की

बिसात ही क्या ! वह सुख यो आता है और त्यो चला जाता है, स्वप्न की सपदा इधर आई उधर गई। स्वप्न मे भी सुख जब अपनी चरमावस्था पर पहुँचने को होता है तभी नींद टूट जाती है जिसके करण दु ख चौगुना हो जाता है—

> जोरि क कोरिक प्राननि भाव ते सग लियें अखियानि मैं आवत ।
> भीजे कटा छन सो घनआनन्द छाय महा रस कों बरसावत ॥
> ओट भएं फिरि या जिय की गति जानत जीवनि ह्वै जु जनावत ।
> मीत सुजान अनूठिय रीति जिवाय क मारत मारि जिवावत ॥

स्वप्न में भी प्रिय से सुखपूवक या निश्चिततापूवक निर्बाध मिलन नहीं हो पाता। नीद यदि न भी टूटे तो भी घेरने वाली दूसरी बाधायें सदा विद्यमान रहती हैं—मनोरथो की भीड कभी आधार घेर लेती है और कभी आँसू ही आगे दौड पडते हैं। सयोग स्वप्न मे भी दूभर हो उठता है दूभर क्या असभव हो जाता है—

> (क) कयहूँ जौ दई गति सों सपनो सो लाखों तो मनोरथ भीर भर ।
> मिलहू न मिलाप मिल तब को उर की गति क्यों करि ब्योरि गर ॥

> (ख) साधनि हो मरिय भरिय अहराधनि बाधनि के गन छावत ।
> देख कहा ? सपनेहू न देखत नन यों रन दिना झर आवत ॥
> जो कहूँ जान लाख घनआनन्द तो तन नेकु न औसर पावत ।
> कौन बियोग भरे असुवा जु सयोग मै आगई देखन धावत ॥

सयोग मे भी वियोग इतनी पीडा पहुचाता है तब वियोग तो वियोग ही है। प्रश्न यह हो सकता है कि सयोग मे वियोग की व्याप्ति क्यों होती है ? उसका मूल कारण प्रीति का आतिशय्य ही समझना चाहिए। जो वस्तु हमे बहुत प्रिय होती है ससार मे वह प्राय दुलभ भी हुआ करती है यदि सुलभ भी हुई तो अल्प काल के ही लिये। घनआनन्द के प्रीति की अतिशयता उन्हें सदा चिंतातुर किये रहती थी कि कहीं मिली हुई प्रिया बिछुड न जाय। सुजान उनकी अपनी हो भी न सकी थी इसलिए यह चिंता और भी प्रबल होकर मारे जारे डालती थी। बडी मुश्किल से उन्हें उनका सयोग साहचय मिलता था और वह भी परिमित अवधि के लिए सयोग की अपेक्षा वियोग ही उनके लिए चिर था इस कारण सयोग सयोग ऐसा न जान पडता था, सयोग में वियोग का धडका उठा करता था।

जिस प्रकार सयोग म वियोग का भय लगा रहता था उसी प्रकार वियोग मे भी उन्हें अपनी अति सीमित सयोग या सभोग सुख याद आता रहता था। उनके जीवन-व्यापी अनन्त दुख म सुजान तो ध्यान से रही उसके सुखद ससग की स्मृति मात्र शेष थी। वियोग में उसका बार बार स्मरण होना स्वाभाविक और सगत ही था—

रूप सुभाय लगी तब तो अब लागति नाहि सुभाय निमेखै ।
जो रस रग अभग लसो सुरह्यो नहि पेखिय लाखनि लेख ।
हो घनआनन्द ए हो सुजान तऊ ए वहै दुखहाई परेख ।
आँखिन आपनी आँखि न देख्यौ क्यों अपनो सपनेऊ न देख ।

**वियोग पक्ष घनआनन्द की विरह व्यथा**

घनआनन्द का प्रेम वियोग प्राण है। वियोग ही उसमे चिर तत्व है। निरन्तर विरह ही उनका जीवन था, निरन्तर प्रिय का स्मरण और ध्यान ही उनकी दिनचर्या थी, निरन्तर आत्मवेदनाभिव्यक्ति ही उनका सुख था। रात दिन अपनी विरह व्यथा से तडपने वाले उद्गारो के सग्रह का ही नाम 'सुजानहित' है। सुजान के हित (प्रेम मे) पागल बने हुए घनआनन्द की अपनी व्यथा ही कविता बन गई है। इसी से उनके अनन्य प्रशस्ति गायक ब्रजनाथ ने कहा था—

समझ कविता घनआनन्द की हिय आँखिन प्रेम की पीर तकी। (ब्रजनाथ)

जिनका प्रेम सतही है वे घनआनन्द की प्रेम पीडा कैसे समझ सकते हैं। बोधा के शब्दों में—

जिन चोखी चाखी नहीं सो किन समझ सोय। (बोधा)

इसे तो वही समझ सकता है जिसने खुद प्रेम किया हो, वियोग की ज्वाला झेली हो औरों को यह राग बसुरा ही लगेगा—

दिल जाने के दिलवर जाने दिल को दरद लगी री। (बोधा)

सुजान प्रेम से सम्बन्धित विशाल काव्य राशि का अधिकाश भाग घनआनन्द के वियोग वर्णन से सम्बद्ध है। शत शत छन्दो मे कवि की अन्तर्व्यथा मुखर हुई है। यह अन्तर्व्यथा ही घनआनन्द के विरह निवेदन का मुख्य भाव है।

**प्रेम की पीर**

आत्मदशा कथन करने वाले छन्दो मे कवि ने नाना रूपों मे अपनी आकुलता मन की, प्राणो की दशा का वर्णन किया है। रात दिन जो विरह सताया करता था वह विरह था कैसा हृदय किस प्रकार उस विरह की ज्वाला मे जलता घुटता रहता था, इसी का शत शत रूपो मे कथन हुआ है। उद्विग्न मनोदशा की एक से एक तीव्र अभिव्यजनायें घनआनन्द मे भरी पडी हैं। विरह राशीभूति हो उनके काव्य म आ बैठा है। समूचे मध्ययुगीन हिन्दी काव्य मे विरह दशा के चार ही चित्रकार उल्लेखनीय सफलता और ऊचाई प्राप्त कर सके हैं—गोपियो की विरह व्यथा का वर्णन करते हुए सूरदास नागमती का विरह निवेदन करने वाले जायसी अपने विरह को मुखर करती हुई मीरा और सुजान विरही घनआनन्द। अति वयक्तिक प्रेम और पीडा की अभिव्यक्ति घनआनन्द की विरह वर्णना को सूरदास की कोटि तक पहुँचा देती है। अति आधुनिक काल म महादेवी वर्मा की विरहानुभूति अत्यन्त तीव्र व्यथा से सपृक्त है। असम्भव नहीं है कि उनकी वेदनाभिव्यक्ति का कोई अकुर घनआनन्द की व्यथा से भी प्रेरणा लेकर फूट पडा है।

घनआनन्द का विरह शत शत प्रकार की मन स्थितियो को सामने ले आता है। सुजान से बिछुड कर शाही दरबार का गौरवपूर्ण पद त्याग कर जब घनआनन्द चले होंगे तब उनका दु ख दर्द अछोर रहा होगा, बार-बार वियोग की तडप उठती रही होगी और हृदय हाहाकार कर उठता रहा होगा। विरह-जनित वेदना के कितने ही छद घनआनन्द ने लिख डाले हैं। विरह के सभी छन्दो म कवि ने अपनी या अपने जीव प्राण की दशा का वर्णन किया है पर उस वणन को नाना ब्याजो (माध्यमो) से कवि ने प्रस्तुत किया है। विरह विरही के हृदय के नाना मनोभावो को सामने लाता है। कभी प्रिय की स्मृति विरह वेदना जगाती है कभी उसके रूप की रीझ, कभी विरही की अपनी लालसायें और उत्कठायें। विरह के इन्हीं मूल मनोभावो की खोज करने की हमने चेष्टा की है जिनके सहारे या बहाने वे आत्म निवेदन करते रहे हैं और अपनी पीडा का वणन करते रहे हैं।

दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि एक ही छन्द मे एक ही साथ अनेक भाव प्रस्तुत किये गये हैं—जसे प्रिय के प्रति निष्ठा, प्रिय की कठोरता या उदासीनता, प्रिय से दया की याचना प्रिय के प्रति उपालभ, उसके प्रति शुभकामना आदि। ये तथा ऐसे ही दो तीन भाव एक ही छन्द म मिल जायेंगे। चूकि वे अन्तत एक ही सवदना प्रेम से प्रसूत हैं इसी से वे विविध मनोविकारो के रूप मे प्रस्फुटित हुए हैं जसे एक धारा की असख्य तरगें हो। एक भी भाव या सवन्ना वाले छन्द प्राय रीतिबद्ध कर्त्ताओ ने लिख हैं पर हृदगत अनुभूति से प्रेरित स्वच्छन्द काव्य की भाषा भावो की एकाधिक भगिमायें लेकर चला करती है। जो हृदय लाख-लाख भावो और अभिलाषाओ से भरा हुआ है उससे एक साथ अनेक भावो का फूट पडना स्वाभाविक और सगत ही है। हमारी चेष्टा यह रही है कि कवि के विरह वणन की प्रत्येक भावना पर यहाँ प्रकाश डाला जाय तथा उसके सौंदय का भी उद्घाटन हो सके। इस कारण यदि एक छन्द मे *एक से अधिक दो या तीन भाव आये है तो उस छन्द का विचार दोनो या तीनो* प्रकार के भावो की विवेचना के सदभ मे किया गया है।

घनआनन्द की समस्त भावराशि की गहराई से थाह सकना सीमित समय मे सम्भव नही फिर भी हमने घनआनन्द की अतव्यथा के हर पक्ष का अवलोकन किया है और यथाशक्ति भावनाओ म मूल तक पहुँचने की चेष्टा की है। घनआनन्द की निजी व्यथा वह वेदना जो प्रेयसी सुजान से वियुक्त होने के कारण तरगित हुई है, निम्न लिखित रूपो मे अभिव्यक्त हुई है —

१ आत्मदशा निवेदन
२ सुजान के रूप की रीझ से उत्पन्न बेचैनी
३ स्मृति जनित वेदना
४ ऋतु और प्रकृति के कारण विरहोद्दीप्ति

---

इस आशय के अ य छन्द हैं—सुजानहित, छ द सख्या—२६

५ अनग दाह
६ प्रेम वपम्य
७ प्रेम की दृढता, अनन्यता और एकनिष्ठता
८ अभिलापायें लालसायें और उत्कण्ठायें
९ सदेश सप्रेपण
१० प्रिय के गुणो का गान
११ दन्य भाव प्रिय से दया की याचना
१२ प्रिय के हित की कामना
१३ अपना ही भाग्य खोटा है, प्रिय का क्या दोप
१४ मन को सबोधन मन के प्रति का कथन
१५ कुछ अन्य मनोदशायें कुछ स्फुट भाव

**१ आत्मदशा निवेदन**

आत्मदशा निवेदन करते हुए घनआनन्द कहते हैं कि मेरी पीडा का कुछ ओर छोर नही है ससार के प्रसिद्ध प्रेमियो की विरह यातना भी मेरी 'अकुलानि' की समता नहीं कर सकती, मीन और पतगा (शलभ) ससार मे प्रेमियो के शिरमौर हैं पर वे तो मर कर विरह व्यथा से त्राण पा जाते हैं, उन कायरों की पीडा कोई पीडा नही, हम तो जीवित रहकर पीडा सहते हैं और वियोग की लपटें झेलते हैं। विरह दावाग्नि के समान इस तन रूपी वन म प्रज्ज्वलित है, यत्नो के सलिल से वह शात होने की नहीं मन की इच्छा आशा साँस, प्राण सभी कुछ मुसीबत मे पडे हुए हैं, प्रिय दर्शनो की जल-वृद्धि से ही यह अन्तर्दाह शात हो सकता है। अपने सताप को व्यक्त करता हुआ कवि कहता है कि मीत का मिलन मोद तो स्वप्न की सम्पदा के समान जान कहाँ चला गया, शिथिलता, जडता और बावलापन भर बच रहा है धैय का लेश भी शेप नही रहा उधर शरीर भी निस्तेज पड गया, सब कुछ जैसे प्रिय के साथ चला गया, एक शिथिल काया और एक वज्र हृदय मात्र शेप रह गया है। कभी-कभी तो विरह की यह पीडा एसे मीठे-तीखे ढग से उठती है, उसकी गति ऐसी सूक्ष्म होती है कि उस 'ब्योरते' नही बनता, जीव को कौन दग्ध कर रहा है इसका पता नहीं चलता ज्वाला उठती है तो धुआँ नही होता जितना ही शरीर जलता है उतना ही शीतल पडता चला जाता है, व्यथा इतनी है पर आह नही निकलती, विरह की ज्वाला को बुझाने वाले सारे यत्न स्वय बुझ जाते हैं, यह ऐसी प्रेम की भभक है जो दबती ही नही, ऐसी अनाखी विरह की आग का किस प्रकार बखान किया जाय। कहीं-कही ऊहा का सहारा लेकर कवि ने कहा है कि अपनी वियोग सतप्त दशा का कथन किस प्रकार किया जाय उस वियाग ताप वणन करने जाकर रसना ही दग्ध हुई जा रही है और यदि उस व्यथा को न कहा जाय तो हृदय उसे अन्दर ही अन्दर सह नही सकता। अति ताती कया रसनाहि दहै' वाला भाव अन्यत्र इस प्रकार आया है—

नेह भीजी बातें रसाना पैऊ आँच लागें,
जाग घनआनन्द ज्यौं पुजनि-मसाल हैं।

घनआनन्द कहते हैं कि यह अनोखी वेदना है जिसे न तो सहते बनता है और न दूर करते बनता है, एक तो जल्दी कोई इसे देख नहीं सकता दूसरे यदि इसे कोई समझ ले तो वह स्वय बावला हो जायगा, हमारी यह विकट विरह दशा कुछ मामूली चिंता का विषय नहीं है कि बिना मौत के मर रहे हैं और बिना प्राण के जी रहे हैं[1]—

बात अनोखी कहा कहिय सुनि बैठे सर न कर कछु कीबो।
देखत देखत सूझि पर नहि बूझत बूझत बौरई लीबो।
एहो सुजान दुहेलो दसा दुख हाय लगे हू न छोजत छीबो।
है घनआनन्द सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबो।

कवि कहता है—हे सुजान[1] तुम जहाँ हो मेरे प्राण भी वही बसते हैं, यहाँ तो नाम के लिए देह भर पडी हुई है हम अपना जीवित रहना भ्रम समझ रहे हैं और सुनना, देखना, स्वाद आदि स्वप्नवत् मान रहे हैं क्योकि प्राण के बिना जीवन की प्रतीत आत्म प्रवचना के अतिरिक्त और कुछ नही विरही के प्राण जब प्रिया के पास हैं तो फिर शरीर के शेष व्यापार निरर्थक और न होने के बराबर ही हुए। अपनी विरहो द्विग्न स्थिति का चित्रण घनआनन्द ने इस छद मे बडे मार्मिक ढग से किया है—निश्वास अन्तर की विरहाग्नि मे तप रहे हैं और उद्वेग की भाप से अग उबले पड रहे हैं, तथा पश्चातापो की उमस मे जीव अधीर हो रहा है और नेत्रो ने अनोखी बरसात लगा रखी है जीवन मे ऐसी काली रात क्यो छाई हुई है क्योकि जीवनदायिनी सुजान का मुखचन्द्र नही दिख रहा है—

अन्तर आँच उसास तच अति, अग उसीजै उदेग को आवस।
ज्यो कहलाय मसोसनि ऊमस क्यों हूँ सु धर नहि ध्यावस।
ननउ धारि विय बरस घनआनन्द छाई अनोखिय पावस।
जीवन मूरति जान को आनन है बिन हेरें सदाई अमावस॥

सुजान को देख कर या उस पर रीझ कर घनआनन्द की बुद्धि खो गई है, स्मृति सो गई है वह ऐसे उन्माद की स्थिति म पहुँच गया है कि एक ही साथ रोता भी है और हँसता भी, कभी चुप रहता है, कभी चकित भाव से चारो तरफ देखता है, किसी बात का उस पर कुछ भी असर नही होता, पता नही चल रहा कि उसे क्या हो गया है—वह प्रेम मे पग गया है या उसे प्रेत लग गया है? अपनी दशा का, अपनी प्रेम व्यथा का घनआनन्द ने बार बार कथन किया है और तरह-तरह से किया है इस प्रकार किया है जिस प्रकार बडे-बडे विदग्ध कवि नही कर सकते हैं फिर भी वे अनुभव करते

१ यह भाव घनआनन्द मे बार बार आया है—

जीवन मरन, जीव मीच बिना बन्यो आय
हाय कौन बिधि रची नेही की रहनि है।

है कि इस पीड़ा का कथन नहा हा पा रहा है अपनी चाह को 'अटपटी' और उसकी अभिव्यक्ति को 'मूक लौ कहनि' आदि कह कर उन्होंने उसकी अकथनीयता का ही आख्यान किया है—अन्तर मे उद्वेगो का दाह है, नेत्रा म (बाहर) आँसुआ का प्रवाह है, (बाहर कुछ भीतर कुछ) एक ही साथ विरही जलता भी है और भीगता भी है, ये दोनो उल्टी स्थितियाँ एक साथ कैसे सम्भव हैं पर होता है यह सब, न ठीक से सोते बनता है न ठीक से जागते न हँसते बनता है न रोत न कुछ खोत बनता है न कुछ पाते (जसे जादूगर का खेल हो), सक्षेप में यह कि बिना प्राणो का जीना और बिना मौत के मरना पडता है—

अन्तर उदेग-दाह, आँखिन प्रवाह आँसू
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है।
सोयबो न जागिबो हो, हँसिबो न रोयबो हू,
खोय-खोय आप ही में चेटक-लहनि है।

इसमे सन्देह नही कि घनआनन्द की विरह व्यथा अपरिमित थी। बहुत कुछ कह जाने के बाद भी काफी कुछ कहने को रह गया है ऐसा ता हम ही प्रतीत होता है, पर घनआनन्द की प्रतीति इससे बहुत आग है। वे कहते हैं कि बिना स्वतन्त्र रुचि वाले सुजान के जो दु ख हमे दिन रात झेलना पडता है उसे हम क्या कहें—वे दिन और रात ही इसके साक्षी हैं—उस दु ख को यदि हम कहना भी चाहे तो कथित दुख और अनुभूत या वास्तविक दुख म रात दिन का अन्तर आ जाता है हमारे उस दुख को देखकर विरह ताप से दग्ध बडे बडे परतन्त्र विरही दाँतो तले उँगली दबा लेते हैं घनआनन्द के वियाग का आधिक्य इतना है। यह व्यथा इतनी तीक्ष्ण और वेगमयी है जा घनआनन्द को जलाये और उजाडे डालती है उसकी मरोड कवि के जीव को मारे डालती है, उद्वेगों से रुँध कर उसके प्राण निकलना चाहते हैं पर निकल नही पाते, वह अपने प्रिय को पुकार पुकार कर थक जाता है, भाग्य द्वारा प्रदत्त इस वेदना की आँच मे वह गला जा रहा है। कभी घनआनन्द कहते हैं कि सभी तापों को शात करने वाली सुजान के बिना हमार हृदय मे होली सी (होलिका की आग सी) जलनी रहती है—हमारी आँखों से बहने वाली नदी के सामने भला पिचकारी क्या पानी रख सकती है, हल्दी, केसू और केसर मे भला वह पियराई कहाँ जो हमारे शरीर मे है और चाँचर का चोप भी उतना कहाँ होता है जितना हमारे चित्त म चिन्ता चुहल मचाये रहती है। नेह की गहरी नदी मे जो विष की लहरें आ रही हैं उनमे रक्षा करने वाला कोई नही है अन्य उपाय कागज की नाव होकर रह गये है चित्त चाक की तरह घूमता रहता है और धैय धरते नही बनता इस तरह रात दिन व्याकुलता के हाथो मे पडा हुआ हूँ जी एक क्षण के लिए भी

बहलता नही, सदा दुखी रहता है।[1] विरह जनित चिन्ता की आँच ऐसी है जिसमें लपटें निकलती नही और प्राण फुके जा रहे हैं—'लपट कढ़ न नेकौ हा हा जात ज्यौ फुक्यौ।' एक जगह व्यथा के इस आतिशय्य की व्यजना कवि ने भिन्न पद्धति पर की है—दामिनी की लहकती बहकती कौंध याग्वाला मे, आत पपीह की निष्ठापूण पुकारो म वन बीथियो मे आवाज के साथ बहती हुई भयभीत भवन मे और मेघो से होने वाली वृष्टि के पीछे घनआनन्द को अपनी ही तीव्र व्यथा की सवेदना दिखाई दे रही है—

बिकल बिषाद भरे ताहि की तरफ ताकि,
दामिनीहू लहकि बहकि यौं जरयौ कर।
जीवन अधार घन पूरित पुकारनि सो,
आरत पपीहा नित फूकनि करयौ कर।
अथिर उवेग-गति देखि क अनन्दघन
पौन बिडरयौ सो बन बीथिनि ररयौ कर।
बूद न परति मेरे जान जान प्यारी ! तेरे
बिरही कों हेरि मेघ आँसुनि झरयौ कर।

कवि कहता है कि बजमारा विरह रात दिन पीछे पडा रहता है, जो एक क्षण के लिए भी न बहलता है न चैन पाता है वेदना ऐसी बढ गई है कि उसका उपाय करने से मूर्च्छा आ जाती है दिन कैसे बीतता है सुबह और शाम कैसे होती है यह मैं किससे कहूँ, मेरे दुख की इस कथा को कोई सुनने वाला नही। अपने प्रेम के अनोखे होने की बात घनआनन्द ने बार-बार कही है। यह बात प्राय विरोधात्मक उक्तियो पर आश्रित मिलेगी। वे कहते हैं कि सुजान तो मुझे घर बन बीथिन मे सवत्र दिखाई देती है फिर भी उसका वियोग सताता है, उद्वेग की विषम अग्नि की ऐसी भयकर लपटें उठती हैं जिसमे हृदय का फूट फट कर टूक-टूक हो जाना स्वाभाविक है, फिर भी हम बचे हुए हैं (हमे मौत भी नही आती) यह नई बिरहामई है—

बिषम उदेग-आगि लपट अन्तर लाग
कसे कहौं जसें कछू तचनि महातई।
फूटि-फूटि टूक-टूक ह्वै क उडि जाय हियो,
बचिबौं अचमो मौंचौ निदरि कर गई।

एक अन्य मन स्थिति मे वे यह बतलाते हैं कि हम सुजान के इस असह्य वियोग मे भी किस लिये जी रहे हैं—दुख की ज्वाला में जलना बुझना जो कुछ होता है, मुझ पर जो कुछ भी बीतता है वह मैं किससे कहूँ, समय बहलता (बीतता) नही, जी जिधर तिधर भटकता है—यह सारी यातनायें इसलिए सही जा रही हैं जिससे

---

१ अकुलानि के पानि परयौ दिन रैन सु ज्यौं छिनकौ न कहू बहर।
यह भाव अन्यत्र इस प्रकार आया है।
ज्यौं बहरै न कहूँ छिन एक हू चाहै सुजान सजीवन प्यारो।

२ समय न कटने की बात अन्य छन्दों मे भी आई है छन्द ३३३

सुजान का सयोग प्राप्त हो सके और हालत यह है कि वही सुजान नही प्राप्त होती जिस विधाता की सृष्टि (सुजान) पर रीझ-खीझ कर मन मुरझा गया है उसे रच कर विधाता को क्या मिला—यह बहुत ही नया और सु दर भाव है बडा अथर्गभित भी है और घनआन द की चरम खीझ का द्योतक भी है अ यत्र भी घनआन द ने अपनी सारी "यथा का भार भाग्य या विधाता के ही मत्थे मढा है। अपनी व्यथा का हम तक पहुचाने के लिए कवि ने एक से एक भावोत्कर्ष-क्षम कल्पनायें सामने की हैं। उदाहरण के लिए यह कि चुडैल के लग जाने स प्राणी की जो दशा होती है उससे सौ गुना भीषण स्थिति सुजान के वियोग म हमारी हो रही है चुडैल की छाया छू जाने से असह्य पीडा होती है और तू तो दूर से ही मेरी सौ गुनी बुरी दशा किये दे रही है इसी कारण उपचारको (वद्यो) की भी मति काम नही कर रही है।[1]

विरह व्यथा यजक आत्मदशा निवेदन सम्बन्धिनी उक्तिया इसी प्रकार की हैं इनम जा पीडा कचोट और तडप है वह स्वय अपनी भाषा है तीव्र भावो के आत्मदशा निवेदनात्मक प्रभाव छ दो मे आये हुए भावो की चर्चा ऊपर हा चुकी अब इसी सदभ के कतिपय अन्य भाव देखिये।

जब से तुमने आने की आशा दी है तभी से तडप रहा हूँ' दिन ब्रह्मा के दिनो के समान लम्बे हो गये हैं, तुम्हें नान की कुछ कमी नही है अपने मन म ही तुम हमारी दशा का बिम्ब देख सकती हो। व्याकुलता की छुरी से छिदी हुई यह छाती सदा अशा त रहती है तुम तो स्वय सुजान हो तुमसे कौन सी बात छिपी है। मैं क्या करूँ कोई भी उपाय काम नही देता दिन किस प्रकार बिताऊँ मसोस या पछतावा मारे डालता है रुदन अश्रु और मौन म ही हमारे प्राणो की चीख पुकार सुनी जा सकती है ऐसी दारुण दशा म हितमूर्ति सुजान के बिना हमारी सम्हाल करने वाला दूसरा नहीं।[2]

हम देखते हैं कि आत्मदशा का निवेदन करते हुए घनआन द ने तरह-तरह से अपन मम की पीडा का उद्घाटन किया है। असाधारण भावना शक्ति के साथ साथ उन्हें असाधारण अभिव्यजना शक्ति भी प्राप्त थी ऐसी शक्ति जा रीति युग के किसी भी रीतिबद्ध कवि को न मिली थी। अभिव्यजना के नये नये पैंचो का आविष्कार घनआनन्द की विशेषता है पर इसकी चर्चा का यह स्थान नही। हम देखते हैं कि अपनी सपूण मनोव्यथा को इतना व्यक्त कर चुकने पर भी घनआन द सवथा

---

१ अ यत्र भी चाह की चुडैन की चर्चा मिलती है।

२ आत्मदशा निवेदन के अ य छ द निम्नलिखित हैं जिन पर अनक कारणो से विचार नहा किया गया है—या तो वे साधारण हैं या अ य सदर्भों म आय हैं। अधिकाश छ द दूसरे प्रकार के ही हैं। उन छ दो मे विरह व्यथा मुख्यत दूसरे ही रूपो मे व्यक्त की गई है। केवल आनुषगिक रूप से कुछ आत्म निवदनात्मक कथन आ गय हैं यथा छ द सख्यायें—सुजानहित ३३३ ३७८ प्र० ३०,

व्यक्त नही कर पाते—'विरह विषम दशा मूक लौं कहनि है' कह कर घनआनन्द ने इस तथ्य की ओर सकेत किया है। सचमुच घनआनन्द की पीडा महान थी। कहा जा सकता है कि इस आत्मवेदना परक काव्य से समाज को क्या मिला, इसकी लोकोपयोगिता क्या है? यह ठीक है कि लोक कल्याण के उभरे हुए तत्व इसमे नही हैं परन्तु प्रकारान्तर से या परोक्ष रूप से उनका काव्य लोक हित का साधक ही पाया जायगा। एक तो उन्होने प्रेम का भव्य आदर्श प्रस्तुत किया है अनन्य और निष्ठापूर्ण अविचल प्रेम के ऐसे मर्मी कवि हिन्दी साहित्य के समूचे युग मे कितने हो गये हैं। उसके नाम उगलियो पर लिए जा सकते है और घनआनन्द ऐसे प्रेमी कवियो मे मुकुट मणि के समान है। देखने की चीज यह नही है कि घनआनन्द ने किससे प्रेम किया? जिससे प्रेम किया वह क्या थी कैसी थी? देखने की चीज यह है कि घनआनन्द ने क्या किया? किसी के प्रेम मे पड कर उन्होंने अपना क्या नही दे दिया। उद्देश्य मे यदि पवित्रता है, निष्ठा की अनन्यता है तो वह उद्देश्य राष्ट्र प्रेम और लोक कल्याण के महत्तर उद्देश्यो से हीनतर या हल्का होते हुए भी अपनी महत्ता अक्षुण्ण रखता है। जीवन और ससार नाना कर्मों और कर्म क्षेत्रो की समष्टि है, प्रत्येक कर्म क्षेत्र पवित्र है महान है जीवन को सपूर्णता प्रदान करने वाला है, उसके किसी एक क्षेत्र का सौन्दर्य बढाने वाला उस सपूर्ण जीवन और ससार की शोभा और सपूर्णता को बढाने वाला होता है। घनआनन्द एक सीमित क्षेत्र के साधक थे (प्रेम साधक) पर अपने क्षेत्र मे वे महान थे, ससार के प्रेमियो मे उनकी गणना आदरपूर्वक की जा सकती है। उनके प्रणय के छन्द प्रणयी प्राणियो के कण्ठहार हैं, उनमे उन्हे अपने हृदय का बिम्ब मिले बिना न रहेगा। घनआनन्द का काव्य प्रेम का वह निर्मल दर्पण है जिसमे हर प्रेमी अपने प्रेम की आकृति विकृति देख सकता है और अपना परिशोधन परिमार्जन कर सकता है। घनआनन्द की प्रेमोपासना हिन्दी साहित्य की बेजोड चीज है। एक जीवन अशेष रूप मे प्रेम पर उत्सर्ग कर दिया गया है। कौन करता है ससार मे इतना त्याग। हो सकता है घनआनन्द ने प्राप्ति के लिए ही प्रेम किया हो, पर उन्हे मिला क्या? तिरस्कार, उपेक्षा, अवहेलना? भौतिक जगत मे उपहास निन्दा, आलोचना? उनका जीवन-वृत्त इसका प्रमाण है। दर दर भटकना और बिसूरना? पर घनआनन्द इससे विचलित नही हुए। गोपियो के उदाहरण उनके सामने थे, मसूर आदि सतो का जीवन भी उनके सामने था। सूर, तुलसी, मीरा आदि सन्त और अन्यान्य भारतीय प्रेमी जीवों का परिवार उनका अपना था, उसी से अपनी परम्परा और पोषण प्राप्त कर घनआनन्द ने अविचल प्रेम का अपने आपको आलोकस्तम्भ बना दिया था। अशेष रूप मे आत्मोत्सर्ग करते हुए उन्होने प्रेम पर अपनी बलि चढ़ा कर जो आदर्श प्रस्तुत किया, जग और जीवन के लिए उनकी यही देन थी। इसी मे उनकी लोकोपयोगिता है। कोई उच्चतर लक्ष्यो और महत्तर उद्देश्यो की पहचान रखने वाला इसान लोकोपयोगिता का ढिंढोरा पीटने वाला पडित करे तो इतना बडा उत्सर्ग। बात नही, ससार मे काम बडी चीज होती है। घनआनन्द ने वही किया था।

जब हम समसामयिक प्रेमियों को देखते हैं तब तो उल्टी ही गंगा बहती देखते हैं। रीति या शास्त्रबद्ध धारा के कवि राधाकृष्ण का प्रेम गान करते थे और उसके पीछे अपनी ओछी भावनाओं की पूर्ति भी किया करते थे—राधाकृष्ण या गोपीकृष्ण प्रेम में स्थूल संभोग वासना या ऐंद्रिकता का चित्रण कर कर के। भगवत् प्रेम से वे लौकिक प्रेम की तरफ आते थे। भगवद् प्रेम साधन होता था, ऐंद्रिक वासनाओं की तुष्टि साध्य होती थी एक की आड में दूसरे का शिकार होता था। घनआनन्द ने ऐसा कुत्सित रूप और चेष्टा नहीं धारण किया, उन्होंने जो कुछ किया वह बहुत स्पष्ट और प्रत्यक्ष है। लोक ने उन्हें खींचा वे उसकी ओर खिंचे, उन्होंने किसी को छला नहीं। राधिका कन्हाई के फजूल सुमिरन का बहाना नहीं किया और जब वे ईश्वर प्रेम की ओर खिंचे तो हरि भक्ति की उन्होंने ऐसी मन्दाकिनी बहाई जो भक्तों की भी आँख खोल देने वाली है। हम यथास्थान बता ही चुके हैं कि घनआनन्द भक्तों, साधकों और सिद्धों की कोटि से भी आगे जाकर सुजानों की कोटि में दाखिल हो गये थे और निम्बार्क सम्प्रदाय के अंतरंग परिवार में अपने सखी नाम 'बहुगुनी' से पुकारे जाते थे। भक्ति साधना का इतना पथ वे पार कर गये थे। इसके मूल में भी वही बात है—निष्ठा की अनन्यता, त्याग उत्सर्ग और समर्पण की संपूर्णता। उनके भक्ति भाव प्रकाशक छन्दों में भक्ति की जो स्वच्छ और मृदुल धारा बहती मिलेगी वह सचमुच हृदय को पवित्र करने वाली है। यह घनआनन्द का दूसरा बड़ा योगदान है और इस दूसरी देन में जो लोकोपयोगिता है, आशा है उसके विवेचन की आपको अब अपेक्षा न होगी।

आत्मदशा निवेदन करते हुए कवि ने कहा है कि मेरे अंतर्बाह्य में जो दाह है वह कहा नहीं जा सकता। शरीर और उसका एक एक अंग बेतरह व्यथित है एक-एक अंग की दशा भीषण है चित्त अस्थिर और उद्विग्न है तथा मन बावला। यह व्यथा तीव्र ही के साथ साथ अनोखी भी है जिसमें हँसना रोना, सोना, जागना साथ साथ होना है। इस व्यथा को कहा भी नहीं जा सकता कहूँ भी तो किससे? इसमें रात दिन का बिताना मुश्किल है इसमें प्राण नहीं निकलते, बाकी शरीर और प्राणों की सब दुर्गति हो जाती है। प्रिय सर्वत्र गोचर होता है पर व्याकुलता कम नहीं होती। मेरे विरह की तुलना में ठहरने योग्य किसी का भी विरह नहीं वियोगाग्नि में तपे बड़े-बड़े विरही भी मेरे विरह को देख दाँतों तले उँगली दबा लेंगे। इस व्यथा में उपाय काम नहीं आता इस रोग की दूसरी औषधि भी नहीं, प्रिय मिलन ही इसका एक मात्र उपचार है। इस प्रकार के अनूठे और हृदय प्रेरित भाव मुख्य रूप से आत्मनिवेदनात्मक छन्दों में आये हैं। उनका पृथक-पृथक जो सौन्दर्य है उनमें जो भावों की तीव्रता और अभिव्यक्ति का वैशिष्ट्य है वह असाधारण है और इसी कारण ये छन्द अत्यंत मर्मस्पर्शी बन पड़े हैं। आंतरिकता ही इन छन्दों की जान है और उसी के कारण अत्युक्तियाँ, सत्योक्तियाँ या स्वभावोक्तियाँ-सी जान पड़ती हैं।

२ सुजान के रूप की रीझ से उत्पन्न बेचैनी

बेचैनी और व्यथा की व्यजना का एक आधार घनआनन्द ने सुजान के रूप सौंदय को भी बनाया है। सुजान इतनी रूपशालिनी थी कि उसका वियोग कवि को दाहे देता था। सुजान के रूप का अदशन ही मानो कवि पर पीडा के पहाड का टूट पडना था। सुजान क सौन्य के साक्षात्कार के अभाव म कवि बेतरह विकल रहता था उसका अतर्वाह्य असाधारण पीडा से सतृप्त रहता था। इस सौंदय दशनाभावजना व्यथा को कवि न दो प्रकार स व्यक्त किया है एक तो अपनी आखो की दयनीय दशा का कथन करके, दूसरे मन की वदना की विवृत्ति द्वारा। यह प्रसग आँखो और 'मन' की रूपलिप्सा जनित वियोग व्यथा की चर्चा का है जो इसी प्रकार की 'आँखो की रीझ' और मन की रीझ शीपका के अतगत विवेचित भावना से सवथा भिन्न है। उक्त शीपको के अतगत हम सयोग वणन क सदभ म 'आसक्ति की विवेचना कर आये हैं। यह प्रसग वियोग वणन का है जिसम हम 'व्यथा की विवेचना करेंगे। वही रूप जो सयोग म अपार रीझ, आसक्ति और सुख का कारण होना है वियोग मे अनत पीडा और वेदना का प्रदाता होकर आता है, अस्तित्व उसका दोनो स्थितियो मे होता है पर प्रतिक्रियायें भिन्न होती हैं।

**आँखों की बेचनी**

सुजान को देखे बिना आँखा की क्या दशा है? उनकी दशा यह है कि वे और कुछ देखती नही उन्हें वसी ही पीडा होती है जसे उनमे अजन की शलाका रक्खी हुई हो पुतलियाँ सदा खटकती रहती हैं ये आँखें कही ठहरती नही और मूँदने पर महा आकुल हो जाती हैं अर्थात् खुली और बन्द दोनो स्थितियो मे इनकी बेचनी बनी रहती है—यही सोच-सोच कर जी बूडा जाता है विधाता ने नई और असाध्य व्याधि दे रक्खी है—

> **रूपनिधान सुजान लिख बिन आँखिन दीठि ही पीठि दई है।**
> **ऊखिल ज्यौ खरक पुतरीन में सूल की मूल सलाक भई है।**
> **ठौर कहूँ न लहै ठहरानि को मूँदे महा अकुलानी मई है।**
> **बूडत ज्यौ घनआनन्द सोचि दई विधि ब्याधि असाधि नई है।**

ये आँखें पर्दा नही करती (बेपर्दा हो गई हैं) सकोच नही करती, सदा प्रिय दशन की लाग म भरी खुली रहती है, सुजान से मिल कर ढीठ हो गई हैं तथा किसी और तरफ देखती ही नही, मेरी होकर मुझे ही दुख देती हैं और रोगिणी के समान *लेटी रहती हैं, ये बडी ओछी और मुहलगी हैं और एसी भुक्खड हैं कि कभी इनका* पेट ही नही भरता—य भाव बडे सुदर हैं यहाँ आँखें शरीर का एक अग मात्र नही रह गई हैं वरन् व्यक्तित्व समन्वित हो गई हैं उनकी एक निश्चित प्रकृति है, एक विशेष प्रकार का आचरण वे करती हैं विरह दुख ने इन्हे जीवन की शक्ति से ओत प्रोत कर दिया है—

अख न मानति चाड भरी उघरी ही रहैं अति लाग-लपेटी।
डीठि भई तिलि ईठि सुजान न देहि क्यों पीठि जु डीठि सहेटी।
मेरो ह्व मोहि कुचन कर घनआनन्द रोगिनि लौं रहें लेटी।
ओछी बडी इतराति लगो मुँह नेको अघाति औति निपटी।

ये आँखें सयोग दशा म तो रूप लुब्ध हो सुजान से लग गई थी पर अब ता इनकी पलकें भी नही लगती पहले जो अभग सुख (रस रग) प्राप्त किया था वह अत इन्हे लाख देखने पर भी नही दिखाई देता। ह सुजान ! तुम्हारे रहते हुए भी इन दु खहाइनो को जलना पडता है इन 'आँखो ने अपनी आँखें देख लीं (अपने शान की पहुँच से असमय काय भी समव कर लिया) पर वे अपना पिया स्वप्न मे भी (भूल कर भी) नहीं देखतीं। पीडा क समूह से व्याकुल ये आँखें झरने की तरह बह पडी हैं, उस प्रवाह को रोकने के लिए छाती की जो मेड थी वह भी बह गई (छाती फट गई) आँसुओ स भीग कर ये आँखें वसी ही जल उठती हैं जसे कि घृत की धारा के पडने से अग्नि प्रज्ज्वलित हा उठती है और हृदय म तो य आँसू विरह की दावाग्नि ही धधका देते हैं—

पीर की भीर अधीर भई अखियां दुखियाँ उमगीं झरना लौं।
रोकि रही उर मड वही इन टेक यही जु गही सु बही हौं।
भीजि बरें घिय धार परें हिय आँसुनि यौं पजरै बिरहा दौं।
आनन्द के घन मीत सुजान ह्व प्रीति मैं कीनी अनीति कहाणौं।

इन आखो की दुदशा कुछ एक हो ता कही जाय, इनकी तो स्थिति ही आश्चय जनक है जल मे डूबी रह कर भी जलती हैं दृष्टि पाकर भी देखता नही आदि। इनकी अभिलाषायें अनत हैं—ये अपनी पलको के पाँवड बिछा कर रास्ता देखती रहती हैं और लाडिली सुजान क आने की लालसा से भर कर कभी लगती नही (सदा खुली रहती हैं) तेरे रूप पर रीझी हुई ये आँखें सदा रस (आँसुओ) से भीजी रहती हैं इन बावले नेत्रों की यही अभिलाषा है कि कब ये अपने आँसुओ से तुम्हारे पर धो सकेंगी (स्वागत कर सकेंगी) आँखो की यह रीझ और चरण बिन्दो को धोने की यह लालसा कितनी पावन है। ऐसे सुन्दर भाव चित्रो से घनआनन्द का काव्य भरा हुआ है। रात भर इन्हे प्रिया क आगमन की प्रतीक्षा रहती है, उस प्रतीक्षा काल म इनको जो बेचनी और हडबडी है वह देखने योग्य है—

बरसन-लालसा-ललक छलकनि पूरि,
पलकनि लाग लगि आवनि अरबरी।
सुन्दर सुजान मुख चन्द को उद बिलोकें,
लोचन चकोर सेव आरति परबरी।
अग अग अन्तर उमग रग भरि भारी
बाढ़ी चोव चूहल की हिये में हरबरी।

बूड़ि बूड़ि तर औंधि थाह घनआनन्द यौं
जीय सुखयौ जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरवरी।

दशन लालसा की जो लालसा और बेकली है उसका चित्र उपयुक्त छन्द मे अत्यन्त सजीव है। इसी लालसा का एक और चित्र देखिये जिसमे बताया गया है कि और सबको इन नेत्रो ने भुला दिया है केवल अपलक दृष्टि स प्रिय को ही देखने की हठ इन्होंने पकड रक्खी है, बस उसी लालसा म भर कर कभी तो ये हँस पडती हैं और कभी रो पडती हैं, कभी चौंकती हैं चकित होती हैं और चिन्तित रहती हैं, लाज की शृखलाओ को इन्होने तोड डाला है और रूप शोभा की शृखलाओ म बँध गई हैं—यह उक्ति बहुत सुन्दर है और अथवती भी **तोरी लाज साकर घिरे हैं सोभा साकरें**—आशा के फन्दे मे पडी हुई ये आँखें उससे बाहर नही आतीं '**चाँह बावरे,** नेत्रो की कुछ ऐसी आदत पड गई है कि सुजान दशन की लालसा सतत लगी रहती है। इसी एक टेक को पकड कर इन्होंने अन्य सब बातो का विवेक त्याग दिया है न जाने कसी प्यास पीडा इन्हें है जो खारे-आँसू बहाये दे रहे हैं जिस व्यथा के साथ ये रात दिन व्यतीत करते हैं उस व्यथा की दुहेली (दु खद, कठिन) दशा कसे कही जा सकती है कहने को ही ये नेत्र मेरे हैं पर सचमुच ये दूसरो के हैं, बड अमोही हैं ये जो मेरी ओर नहीं देखते। हे सुजान! जब स इन्होंने तुम्हे देखा है ये किसी और को देखते ही नहीं। ये नेत्र सुजान के रूप सौन्दय को छक कर ढीठ हो गये हैं जरा सा भी संकोच नही करते, थाह की दाह से भरे रहते हैं और बादलो के समान अश्रु वर्षा करते रहते हैं इतनी वर्षा करने के बावजूद भी ये लोभी रूप के पानी के लिए तरसते रहते हैं इन अविवेकी नेत्रो की दशा देखकर दिन और रात सोचते और चिन्ता करते ही व्यतीत होते हैं—**नन असोचनि की गति हेरि कै बीतत री निसिबासर सोचत।** अजीब अविवेकी आँखें विधाता ने रच दी हैं जो बिना समझे बूझे जो चाहती हैं, कर बठती हैं तम (अधकार वेदना) ही इनके योग (भाग्य) म पडा है ये रोग वियोग की पूर्ण बावली आँखें लाखो अभिलाषाओ से सयुक्त हैं सुजान के मुख की माधुरी को पीने के लिए आतुर हैं किन्तु दु खातिरेक स पागल हो गई हैं। ये प्रेमी नेत्र दु ख के सदन हैं प्रिय की ही ओर उमग के साथ दृष्टि केन्द्रित किये हुए दिखाई देते हैं अपने प्रण के पक्के हैं और अपनी टेक से विचलित नही होते रूप उजियारे प्यारे सुजान को निहार कर उन्ही के कनौड़े (कृतज्ञ, आधीन) बने हुए हैं और उन्ही को पाने की हविस (उत्कट इच्छा) मे ये अध नेत्र (अविवेकी) मरे जाते हैं—उल्लू जिस प्रकार चकोर हो जाने की अभिलाषा करे वैसा ही इनका आचरण है—

**नेमी अध होंस मर चाहैं तिन रीस कर,**
**ऐसें अरबहैं ज्यों चकोर होन कौं उलूक।**

अपनी दुखहाइन आँखो की दशा बतलाता हुआ कवि कहता है कि ये रूप उजियारे सुजान के दशन के बिना बेकाम हो गई हैं—'**नीर न्यारे मीन और चकोर चदहीन**' से भी गई गुजरी इनकी हालत हो गई है इनकी चूक पर ध्यान देना

मुनासिब न होगा। नेत्रों की रोगग्रस्त घबराई हुई, सन्ताप से लाल, साधों से भरी, विकारपूर्ण, पीडा से दग्ध और व्याकुल अधीर और भस्मी व्यथा से परिपूर्ण दशा का इससे अधिक जीवन्त चित्र मिलना मुश्किल है—

घेर घबरानी उबरानी ही रहति घन
आनन्द आरति राती साधनि मरति हैं।
जीवन अधार जान रूप के अधार बिन
व्याकुल बिकार भरी खरी सुजरति हैं।
अतन-जतन तें अनखि अरसानी पीर,
प्यासी पोर भीर क्यों हूँ धीर न धरति हैं।
देखिय दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा प नित लंघन करति हैं।

रूप रिझवार आँखों की विरह में हुई दुर्दशा का वर्णन करते हुए घनआनन्द कहते हैं कि प्यारी सुजान को देखने ही ये आँखें उस पर रीझ गईं (जिससे स्पष्ट है कि रूप दर्शन से ही हमारा कवि सुजान पर मुग्ध हुआ था यह तथ्य बार-बार कहा गया है) लालसाओं से भीग गईं और सुख में मग्न हो गईं तथा उसके अंग-अंग के सौंदर्य पर भावों से भर भर कर मुग्ध हो गईं, परन्तु उसी रीझ का आज यह परिणाम है कि आज रात दिन जगती हैं किसी अन्य से लगती नहीं अपने प्रण पर ही अनुरक्त हैं और सारी चंचलता जाती रही है प्रेम के कारण ये उनकी दी दासी हो गई हैं और प्रेम के मार्ग पर दो डग जाकर अब ये पीछे लौटने वाली नहीं हैं। ऐसी हद अनुरागमयी ये आँखें हे माधुरी निधान प्राणों को जीवन देने वाली प्यारी सुजान तेरा रूप रस चख कर ये आँखें मधु मक्खियों के समान हो गई हैं—

चाहत ही रीझी लालसानि भीजि सुख सीझी,
अंग अंग रंग-संग भाव भरि भै गई।
रैनि द्यौस जाग ऐसो लगीं जु कहूँ न लागैं,
पन अनुराग पाग चंचलता च्वै गई।
हित की कनौंडी लौंडी भई ये अनन्दघन,
फिर क्यों पिछौंडी नेह मग डग द्वै गई।
माधुरी निधान प्रान प्यारी जान प्यारी तेरो
रूप रस चाख आख मधुमाखी ह्वै गई।

इनका आतिशयिक दुःख देख कर कभी कवि को ऐसे भी कहना पडता है कि किस विचित्र घडी में विधाता ने इन आँखों को सिरजा कि सारे पाप (दोष) इन्हीं में समेट कर भर दिये रूप की ईई लोभिन बना दिया रीझ में भिगो दिया और इतनी बडी दुनियाँ में और किसी से नहीं केवल सुजान से ही इसकी भेंट करा दी (इस उक्ति में सुजान की निष्ठुरता की बडी स्पष्ट व्यंजना है), घनआनन्द कहते हैं कि अब ये भला धीरज कैसे धारण कर सकती हैं पंखी होतीं तो उडकर चली भी जातीं, पर

ये निगोडी बिना पख की "याकुलता के मारे मरी जा रही हैं, प्यास से भर कर अश्रु वर्षा करती हैं और दुखहाइनें मुह देखने के लिए तरस रही हैं—

पाप के पुज सकेलि सु कौन धौं आन घरी में बिरचि बनाई।
रूप की लोभिन रीझि भिजाय क हाय इते पै सुजान मिलाई।
क्यौं घनआनन्द धीर धरै बिन पाँख निगोडी मर अकुलाई।
प्यास भरी बरस तरस मुख देखन कौं अखियाँ दुखहाई।

घनआन द जी ने एक जगह बडे सु दर ढग से यह कहा है कि सही आँखें कौन सी हैं ? निश्चय ही उनका इशारा अपनी ही आँखो की तरफ है। जब वे ठीक आँखा का लक्षण बताने लगते हैं तब तो यह तथ्य और भी पुष्ट हा जाता है। इस प्रकार वे अपने नेत्रो की साथकतायें बडे सुन्दर ढग से प्रमाणित करते है। वे कहते हैं कि सूक्ष्म और अगाध रूप सौन्दय के प्रति जिनके मन मे तृषा होती है प्रिय के रूप को देख कर जो आत्मविस्मत हो जाती हैं तथा अपने परम प्रिय क देखन न देखने को ही जो हर्ष और विषाद समझा करती हैं तथा प्रेम की मीठी पीर जिन्हे उठा करती है वे ही सच्ची आँखें हैं और आखें तो मार पखो वाली होता है जो बेकार होती हैं—

जान प्रान प्यारे के बिलोकें अविलोकिबे कौं,
हरष बिषाद स्वान्द बाद अनुमानहीं।
चाह मीठी पीर जिन्हैं उठति अनन्दघन,
तेई आँख सार और पाँख कहा जानहीं।

ये वियोगी नेत्र बावलो स कम नही कम से कम उनका आचरण ता यही सिद्ध करता है—उघड कर नाचते हैं नाक लज्जा नही करते पूरी उमग मे रहत हैं, आपके दशका के लोभी बने रहते हैं थके थके रहते हैं माह मदिरा पीकर छके रहते हैं मूक होकर भी बहुत कुछ बोलत रहते हैं और चित्त म सदा तुम्हारा ध्यान रखत हैं मौके बेमौके आँसू बरसाया करत हैं, घबराहट मे भर कर उसी रूप की कामना किया करते हैं प्रिय के रूप को देखकर प्रसन्न हाते हैं और न देख कर दुखी होते है बिना देखे ये ऐसे बावलेपन की हालत मे रहत हैं। जिन्हे नित्य भली प्रकार देखा करती थी अब ये आँखें उन्ही के लिए रोती हैं अब उन्ही के चरणा क स्वागत मे पलको के पाँवडे बिछाती हैं और आँसुओ की धारा भी जस उन्ही चरणा को धोने क लिए बहती रहती है जान सजीवन को स्वप्न म ही प्राप्त करती और खो देती हैं तथा इस तरह (बिना पाये ही खो देने के दुख से) दुखी रहती हैं खुली रहती हैं या बन्द रहती हैं कुछ पता नही चलता जगती हुई भी सोती रहती है। हे सुजान ! ये लालची और लगने वाली आँखें सुख की साध से भर कर तुम्ही से अनुरक्त हैं, तुम सौन्दय निधान हो इसी से य 'बावरी ह्वै अरराय परीं' ये मिलन और वियोग दोनो ही स्थितियो मे परेशान रहती हैं—

घनआनन्द जीवन प्रान सुनौ, बिछुरें मिलें गाढ़ जजीर जरी।
इनकी गति देखन जोग भई जु न देखन में तुम्हें देखि अरी॥

आँखो को सब दुख मिलता है चाहे वियोग हो चाहे सम्भोग ये दुखदाइनें हैं दुख के लिए सृजित हुई हैं ऐसा भाव और कवि भी व्यक्त कर गये हैं यथा बिहारी—

इन दुखिया अँखियान कों सुख सिरज्यौई नायँ।
देखत बन न देखते, बिन देखे अकुलायँ॥ (बिहारी)

अपनी दुख शिथिल आखो को घनआनन्द ने जीवित सत्ता का रूप दे दिया है अनेक बार उनके छन्दो को देखने से पता चलता है कि ये नेत्र शरीर के क्षुद्र अग मात्र नही बल्कि जीवत व्यक्तित्व धारिणी कोई विरहिन हो उनमे अभिलाषायें प्रेम, उमग कर्मशक्ति सभी कुछ तो निर्दशित किया गया है। देखिये नेत्रो की दशा का यह जीता जागता चित्र—

अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं बरुनीन रुमाँच ह्वै काँपति हैं।
घनआनन्द जान सुधाधर मूरति चाहनि अक में चाँपति हैं।
टग लाय रहीं पल पाँवड़े क सु चकोर की चापहि झाँपति हैं।
जब तें तुम आवनि औधि गढ़ी तब तें अखियाँ मग मापति हैं।

आँखो की आदत और स्वभाव को लक्ष्य कर एक जगह घनआनन्द ने कहा है कि रूप सुधा के प्यास से भरी ये आखें सदा आसू ढारती रहेगी अपनी पवित्र साध को पूरा करने के लिए ये इस जीवन मे तो लगता है कि सतत भरती ही रहेगी। हे सुखद सुजान! ये अपना हृदय इस दुख से इसी प्रकार भरती ही रहेगी, पर यह तो बताओ कि क्या इन आँखो का अन्त मे जलकर भस्म ही हो जाना पडेगा (क्या इतना दुख झेलो के बाद भी इन्हे तुम्हारी सम्प्राप्ति न होगी)? तुम्हारे वियोग से उत्पन्न आँसुओ की बाढ मे ये झरने की तरह बहती रहती हैं, रात दिन यो ही मरती रहती हैं, इन दुखाहिनो की हालत पर यदि रहम नही खाओगे तब इनकी जो दशा होनी है वह पहले से ही निश्चित है।

इस प्रकार नाना रूपो मे स्वतन्त्र छन्दो मे बार-बार घनआनन्द ने नेत्रो की परम दुखमयी वियोग दशा का चित्रण किया है। नेत्र कवि की वाह्य सत्ता के सर्वाधिक जीवत और सवाक अङ्ग हैं, उनकी व्यथा सम्प्रेषित कर कवि ने जसे अपने सारे शरीर की, इतना ही नही मन की पीडा भी मुखर कर दी है। रूप रीझी आँखो की व्यथा अन्यान्य कितने ही छन्दो मे आई है पर वहाँ सपूर्ण छन्द में केवल नेत्रो की ही पीडा वर्णित नही हुई हैं। ऐसे स्थलो से नेत्रो की पीडा सूचक पक्तियाँ छाँट कर नीचे दी जा रही हैं—

(क) दीठि कों और कहूँ नहिं ठौर फिरी दग रावरे रूप की दोही।
(ख) अँखियाँ दुखियानि कुबानि परी न कहूँ लग कौन घरी सु लगी।
(ग) तब तौ छवि पीवत जीवत है अब सोचन लोचन जात जरे।

(घ) तेरी सोई जान सोई जान जिन जोही छवि
क्यो धौं इन ननन तें नींद गई नसि है।

(ङ) विकच नलिन लखें सकुचि मलिन होति
ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।

(च) ऐसें हू निगोड़े मन कसे चन पावहीं।

(छ) सोएँ न सोयबो जागें न जाग अनोखिय लाग सु अँखिन लागी।

(ज) अति रूप की रासि रसीलियै मूरति जोहों जब तब रीझि छकौं।

× × ×

अनदेखें दई जु कछू गति देखिय जीव ही जानै न न्यौरि सकौं।

(झ) जिन आँखिन रूप चिन्हारि भई तिनकी निन नींद ही जागनि है।

× × ×

मुख में मुखचन्द बिना निरखें नख तें सिख लौं विष पागनि है।

(ञ) मूरति सिंगार की उजारी छवि आछी भाँति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आँजिहौं।

(ट) चेटक रूप रसीले सुजान! दई बहुतै दिन नेकु दिखाई।
कौंध में चौंध भरे चख हाय! कहा कहौं हेरनि तसें हिराई।

(ठ) मुख देखत ही पलकों न लग अखियानि में जागनि जोति खिल।

वियोग कथा की जो भी व्यजना ऊपर दिखाई गई है वह आलम्बन के रूप सौंदय के कारण है। सीधे शब्दो मे यह कि यदि सुजान इतनी रूपशालिनी न होती तो घनआनन्द के काव्य म वियोग की इतनी प्रबल धारा न उमडती। वह सौंदय है जो प्रेमी को रिझा ले और वही नीच है जो एक रूप पर रीझ कर किसी दूसरे की ओर न दौडे। इस अनन्यता म ही सच्चा प्रेम है। घनआनन्द के छन्दा मे यही अनन्यता समाई हुई है। प्रकारान्तर से ठाकुर की गोपिका ने यही बात कही थी—

बावरी वे अखियाँ जरि जाय जु साँवरा छाँडि निहारति गोरो। (ठाकुर)

यही बात विरही घनआनन्द ने भी कही है बडी प्राभावशालिनी भाषा शली म कही है और सच्ची पीडा की अनुभूति के साथ कही है। घनआनन्द का प्रेम लौकिक था रूप सौन्दय से उत्पन्न था एक सासारिक रमणी की छवि पर वे फिदा थे उसी का आदशन उनके प्राणो की पीडा और अनन्त व्यथा का कारण हो गया था और इस कारण अपनी आँखो की जो वेदना उन्होंने व्यक्त की है वह भी अनन्त है। आखों की व्यथा का चित्र जितने सप्राण रूप म वे उपस्थित कर सके हैं दूसरा काई कवि कर सका है ऐसा मेरे देखने मे नही आया। जरा एक एक चित्र को उठाइये तो सही और देखते चले जाइये कि उसमे कितनी पीडा, कितनी आसक्ति और कितना विरह भरा हुआ है। उनका इस प्रसग से सबद्ध एक एक छन्द देखने योग्य है और उसमे से कितनो की ही भाव सवेदना विषम व्याख्या की अपेक्षा रखती है।

कवि ने अपने रूपरसिक नेत्रों का, सुजान के रूप पर रीझे हुए नेत्रों की दशा का वर्णन करते हुए मुख्य रूप से इस प्रकार भाव व्यक्त किए हैं—रूप उजियारे सुजान को देख लेने के बाद अब ये आँखें और कुछ नहीं देखतीं और किसी को नहीं देखतीं, इन्हें सदा उसी का ध्यान बना रहता है, इनकी रीझ प्रेम और लगन में जो निष्ठा और अनन्यता है वह अन्यत्र दुर्लभ है अपनी टेक पर ये अटल हैं। अपने प्रिय को पाने के लिए ये कौन-कौन से दुख नहीं सहतीं? इनकी जो पीड़ा और बेचैनी है वह कहो-नहीं जा सकती। प्रिय दर्शन के लिए ये आँखें सदा रुग्ण त्रस्त और घबराई सी रहती हैं जहाँ इनमें चंचलता थी वहीं अब एक प्रकार की जड़ता समा गई है। इनकी बचनों में सातत्य (निरन्तरता) है खुली और बन्द दोनों स्थितियों में ये परेशान रहती हैं, दिन रात परेशान रहती हैं पल भर के लिए भी पलकें नहीं लगतीं सदा खुली रहती हैं। पूर्व सुख तो इन्हें अब प्राप्त नहीं पर उसकी प्राप्ति के लिए ही ये झरने की तरह बहती रहती हैं चिन्तित होती हैं, जलती रहती हैं चौंकती रहती हैं। अनिद्रा, उलझन, बेकली विफलता यही इनका जीवन हो गया है। चिर दुख ही इनका प्राप्य और भाग्य है। अपने प्रिय की सतत प्रतीक्षा करती रही हैं, उसकी प्राप्ति की लाख-लाख अभिलाषाओं से भरी रहती हैं, उसके स्वागत के लिए पलकों के पाँवड़े बिछाती हैं और उसके चरणों के धोने की आकांक्षा से निरन्तर अश्रुधारा बहाती हैं इनकी आशा अटूट है, ये उस परम रूपशालिनी के रूप और शोभा की शृंखलाओं में बँधी जो हैं। इतना सब होते हुए भी अनन्त दुख ही विधाता ने इनके बाँट में रख दिया है। पता नहीं किस घड़ी में विधाता ने इनका सृजन किया कि इन्हें इतना दारुण दुख झेलना पड़ रहा है, इनकी व्याधि असाध्य है पर जो हो घनआनन्द को एक बात का बड़ा बल, और सन्तोष है और वह यह कि उनकी आँखें चाहे कितना भी दुख सहें परन्तु वे ही सच्ची आँखें हैं क्योंकि और आँखें तो मोर चन्द्रिका के समान देखने को ही होती हैं—अर्थहीन और निरुद्देश्य—परन्तु इनमें किसी के प्रति चाह की मीठी पीर उठा करती है। घनआनन्द की आँखें शरीर का एक क्षुद्र अंग मात्र न होकर एक स्वतन्त्र अंगी के रूप में वर्णित हुई हैं। घनआनन्द की आँखों के हाथ पैर मन हृदय सभी कुछ तो हैं। विविध छन्दों में उन्होंने यह बात कही है। घनआनन्द की आँखों का एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व है—उनकी एक प्रकृति है उनकी एक आचरण पद्धति है चाहे वह कितनी ही विचित्र क्यों न हो। उनकी आँखें पर्दा (संकोच) नहीं करतीं, सकोच, ढीठ हैं हठीली हैं आछी हैं लोभिन हैं, मुँहलगी हैं मुँहफट हैं, चाह बावरी हैं (उन्मत्त बावलों की तरह व्यवहार करती हैं, मौके बेमौके आँसू बहाया करती हैं) और अविवेकी हैं (बिना समझे बूझे जो चाहती हैं कर बैठती हैं)। उनके इसी स्वभाव और इसी रीझ का परिणाम है वह असाध्य पीड़ा और व्याधि जो उन्हें सहनी पड़ रही है। इन नेत्रों की आदतें और प्रकृति भी विचित्र हैं—पानी में डूब कर भी ये जलती रहती हैं, प्यासी होकर भी जल बरसाती रहती हैं अपनी अनोखी लाग के कारण ये सोती हुई भी जागती रहती हैं और जगती हुई भी सोती रहती हैं पानी

बरसा कर भी रूप के पानी के लिए तरसती रहती हैं और सबसे विचित्र बात तो यह है कि अपनी होकर भी पराई हो गई हैं।

सुजान के अपरूप रूप ने आँखों को जिस कदर बेचैन कर रक्खा था उसका निदर्शन तो ऊपर हो चुका अब रूप सौन्दर्य की रीझ से उत्पन्न मन की बेचैनी देखिये। घनआनन्द कहते हैं कि हे सुभान ! तुम्हारे रुचिर रूप को देख कर मेरा मन बावला हो गया है मेरी सीख नही सुनता मेरी रीझ उमडी पड रही है मेरे चित्त मे भीषण बेचनी है। यह आश्चय है कि तुम्हारे रूप गुन (डोर) को पकड कर भी मैं डूब रहा हूँ। ये प्राण पखेरू तुम्हारे रूप का चारा पाकर फँस गये हैं तुम्हारे वियोग का बहेलिया इन्हे मार डाल रहा है उसका बाण इनकी दुगति किये डाल रहा है— प्रान पखेरू परे तरफ़ लखि रूप चुगो जु फँदे गुन गायन।' रग रस बरसाने वाली सुजान के बिना 'उर-पीर' कही नही जाती, जीना विष की ज्वालाओ म जलना है तथा वन अथवा भवन मे कोई धैय भी दिलाने वाला नहीं। बावली रीझ के कारण मन की दशा कैसी उद्विग्न कर देने वाली है देखिये—इच्छा यह होती है कि सुजान से भेंट हो तो हृदय की हालत उसे बताई जाय रोष खीझ उपालभ आदि की बातें एकत्र कर करके रक्खी गई हैं पर जब कभी हमारे भाग्य जगते हैं और प्रिय को देखने का मौका मिलता है (स्वप्न आदि म) तो उस वक्त तो रूप देख कर ही मन छक जाता है, शरीर की साता सुध भूल जाती हैं पहले तो रीझ से ही चित्त बावला हो जाता है उससे छुट्टी पाये तब शिकायत आदि करे। पर उसी से छुट्टी नही मिलती—

> उर गति न्यौरिबे कों सुन्दर सुजान जू को,
> लाख लाख विधि सों मिलन अभिलाखिय।
> बात रिस रस भीनी कसि, गसि गाँस झीनी,
> बीनि बीनि आछी भाँति पाँति रचि राखिय।
> भाग जाग जौ कहू बिलोक घनआनन्द तो
> ता छिन को छाकनि के लोचन ही साखिय।
> भूल सुधि सातो दशा बिवस गिरत गातौ
> रीझि बावरे ह्व तब और कछू माखिय।

जब से सुजान को देखा है कवि के हृदय म चाह की अनोखी आग लग रही है प्राण जल रहे हैं पर जनाने वाले का कही पता नही जितना ही बुझाया जाता है उमगा की आग भभक भभक उठती है। तुमसे लग कर यह हृदय अब और कही नही लगता, सदा तुम्हारे ही लिए सुलगता रहता है इनकी एक ही टेव है, शेष सृष्टि इनके लिए सूनी है। प्रिय की शोभा के लोभ मे पड कर मेरी समूची सत्ता उसी के अगो की शोभा के साथ प्रेम म पग गई है उसी का बोलना, देखना हिलना, चलना देख-देख कर उस सम्पदा को इस हृदय ने अपने अन्दर भर लिया है इसी बीच वही से विरह आ गया और अपने स्वभाव के ही अनुरूप दुष्टता कर बैठा। हे सुजान ! इन प्राणो का समपण करके भी अब तुम्हे भी मटना चाहता हूँ, विधाता

से अब उसी घडी की भीख माँग रहा है (जीव विरह से कितना सताया गया है यह बहुत स्पष्ट लक्षित हो रहा है), बेचनी इस हद तक बढ़ गई है कि अब मृत्यु की घडी की प्रतीक्षा की जा रही है—

अब घनआनन्द सुजान प्रान दान भेटौ,
विधि बुधि आगर पै जानत घहै घरी।

सुजान के रूप पर रीझे और स्वभाव पर मुग्ध मन की दग्ध एवं विरहाकुल दशा का जीता जागता चित्र देखना हो तो इस छंद को देखना चाहिये—

मेरी मति बावरी ह्वै जाय जानराय प्यारे,
रावरे सुभाय के रसीले गुन गाय गाय।
देखन के चाय प्रान आँखिन में झाँक आय,
रार्खौ परचाय प निगोड़े चल धाय धाय।
बिरह विषाद छाय आँसुन का झर लाय,
माद मुरझाय मन-तावरेन ताय ताय।
ऐसें घनआनन्द बिहाय न बसाय दाय,
धीरज बिलाय बिललाय फिरौं हाय हाय।

कवि ने अपने हृदय की कजरौटी म सुजान का ही रस रूप शोध कर भर लिया है रोम रोम मे सुजान ही विराजती है उसी की चिता की आँच म मति औंटी जा रही है—

भावते के रस रूपहि सोधि लै, नीकै भरयौ उर क कजरौटी।
रोमहि रोम सुजान विराजत सोचि तच मति की मति औंटी।

सुजान के प्रति कवि मन का रीझ उसके सुधाधर समान मुख तथा अन्यान्य अंगों पर रीझे हुए मन की विरह में जो दशा है उसका अधोलिखित चित्र देखिये—

चोप चाह चावनि चकोर भयो चाहत ही
सुषमा प्रकास मुख-सुधाधरे पूरे को।
कहा कहौं कौन कौन विधि की बँधनि बँध्यौ,
सुरुस्यौ न उरुस्यौ बनाव लखि जूरे को।
जाही जाही अग परयौ ताही गरि गरि सरयौ
हरयौ बल बापुरे अनग दल घूरे को।
अब बिन देखें जान प्यारे मौं अनन्दघन,
मेरो मन भँव भट ! पात ह्वै बघूरे को।

रूप रीझे या सुजान के नन बान बिधे विरह की दशा का वह चित्र भी बडा मार्मिक है जिसम कहा गया है कि वे उठ नही पाते सिसकते रहते हैं प्रम के मदान से हटते नही आदि—

सकट समूह मैं बिचारे घिरे घुट सदा
जानी न परत जान ! कासे प्रान ऊबरे।

नेही दुखियान की यहै गति अनन्दधन
चिंता मुरझानि सहैं न्याय रहैं दूबरे।

सोते, जगते हर समय सुजान विरह का शूल घनआनन्द के मन म कसकता रहता है जीवनदायिनी सुजान का रूप रस उसकी रीझ मे ऐसा कुछ जादू है जो हर अवस्था मे बना रहता ह। उसी की रीझ और प्रीति ने विचित्र दशा मे ला पटका है—

अति रूप की रासि रसीलिय मूरनि जोहौं नहै तब रीझि छकौं।
घनआनन्द जान चरित्र के रगनि चित्र बिचित्र दसा सा थकौं।
अनदेखें दई जु कछु गति देखियै जीव हो जान न त्यौरि सकौं।
यह नेह सदेह अदेह कर पचि हारि बिचारि बिचारि जकौं।

जब से सुजान को देखा है उसी की रग भरी छवि और मुद्रायें उर मे अडी रहती हैं उसी की गति हृदय म बसी रहती है और प्राण उसी के लिए कराहते रहते हैं। मन उसके अनुपम रूप को देख कर महामोह की दशा म पडा रहता है और देखने तथा न देखने दोनो स्थितियो मे वही अटका रहता है ऐसी गति तो लोहे और चुम्बक की भी नही होती। घनआनन्द क प्रेम पीर से भरे हृदय को अब और कुछ अच्छा नही लगेगा, उनका जी सदा दु ख से दग्ध ही होता रहेगा—

हित पीर सों पूरति जो हियरा, फिरि ताहि कहा कहु लागनि है।
घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ जियराहि सदा दुख दागनि है।
सुख में मुखचन्द बिना निरखे नख तें सिख लौं बिष पागनि है।

मन की वेदना का भी ओर छोर नही है। रूप ने घनआनन्द के मन को रिझा रखा है उसे देखने के लिए मन बावला बना रहता है रीझ उमडी पडती है, चित्त बेचैन रहता है हृदय की जो पीडा है और प्राणो की जो दुर्गति होती रहती है वह कुछ कही नही जाती जीवन अग्निदाह बना हुआ है धैय धराने वाला कोई नही। हृदय म चाह की ऐसी अनोखी आग लगी हुई है जो बुझाने पर और भभक उठती है वह निरतर सुलगती रहती है। इस सदा उसी की चिंता लगी रहती है, मति उस चिंता से ही औंटी जा रही है और ऐसी तीव्र व्यथा से बावली हो गयी है, प्राण आँखो मे आ आ कर झाँकते हैं प्रिय क न मिलन पर धैय का बाँध टूट जाता है और वे हा हा करने बिलबिला पडते हैं। विरह म पडा यह मन घूर्णवात मे पडे पत्तो की तरह चक्कर खा रहा है यह दु खी मन सदा सकटो के समूह मे घिरा रहता है सोते जागते उसी सुजान का ही रूप वभव शूल की तरह अ तर म कसकता रहता है, मन दशन और अदशन दोनो ही स्थितिया मे परेशान रहता है प्राण सदा उसी क लिए कराहते रहते हैं लगता है जस मन की यह गति सदा ही बनी रहेगी, कभी समाप्त न होगी। इस रिझवार ने हृदय के कज्जल-पात्र म सुजान का ही रस रूप पार रक्खा है रोम रोम मे वही समाई हुई है यह मन अब और कही लगने वाला नही शेष ससार इसके लिए सूना है। साधो से भरा हुआ यह मन अभिलाषाओ के आधिक्य के कारण

इतना घबराया रहता है और उतावली मे रहता है कि मिलने पर (स्वप्न म) कुछ कह भी नही पाता मौका हाथ से निकल जाता है। जो हो, प्रिय का ही आचरण इह प्यारा है और य अपने प्राणो का समपण करके अपनी सुजान को पाना चाहते हैं। इस प्रकार के उद्विग्नतामूलक भावा को व्यक्त करत हुए कवि ने अपनी मनोदशा का अत्यन्त जीता जागता रूप सामने रक्खा है। हृदय की बेचैनी का इससे अधिक मर्मस्पर्शी उद्घाटन और क्या हो सकता है।

३ स्मृति-जनति वेदना

विरह म प्रिय का स्मरण एक नितात स्वाभाविक मानसिक व्यापार है। यदि स्मरण ही न आये तो विरह कैसा ? स्मृति ही अनेकानेक विरहोद्वेगो की जननी है, कवि न मनोदशा का ही चित्रण विशेष किया है स्मृति-परक छद विशेष नही लिखे हैं। सच तो यह है कि हर छन्द म ही स्मृति लगी हुई है हर भावना के मूल म वह अत व्याप्त है फिर पृथक से उस पर कुछ कहने की अपेक्षा रहती नही, फिर भी कुछ छन्दो मे स्मृति का स्पष्ट उल्लेख किया है और तज्जन्य वेदना का निवेदन भी। ऐसे छन्दो की सख्या बहुत थोडी है (१० १२ मात्र)।

वियोग म स्मृति प्रिय से पगी हुई है और इस कारण जो विकलता जगी हुई है उसका ओर छोर नहो है, पहले जो प्यार भरी बातें होती थी वे अब कहाँ हैं ? घनआनन्द कहते हैं कि उनका स्मरण सदा होता रहता है और उसस किसी सीमा तक सन्तोष और सुख भी मिलता है। परन्तु अतत यह स्मृति भी दु ख का बढान वाली ही है, जी को जितना ही बहलाया जाता है स्मृति भी सजग हो हो कर उतना ही इस अनुरागी हृदय को दु ख दाह म जलाती रहती है। कुछ स्मृति चित्र बहुत सुन्दर हैं। एक म घनआनन्द सुजान के प्रतिकूल आचरण की स्मृति करते हुए भी बडा सुख पात देखे जात है—

तेरी अनमाननि ही मेरे मन मानि रही,
लोचन निहारें हेरि सौंहे न निहारिबो।
कोरि कोरि आदर को करत निरादर है
सुधा तें मधुर महा झुकि झिझकारिबो।
जीवन की प्यारी घनआनन्द सुजान प्यारी,
जीव जोति-लाही लहै तेरे हठि हारिबो।
रूखी रूखी बातनि हूँ सरस सनेह घुटि,
हिय तें टरै न ये तनिक कर टारिबो

अनेक बार कवि का वतमान उसे उसके अतीत की याद दिलाता है और वह दोनों स्थितियों की तुलना करने को बाध्य होता है। वह कहता है कि जो नेत्र सुजान के दर्शनों के आनन्द मे शीतल हो जाया करते थ वे अब दुख की ज्वाला मे जला करते हैं जो प्राण साथ म रह कर तुष्ट हो जाया करते थे और प्रेम का पोषण किया करते थ वे अब अकेले म मरे जा रहे हैं, अब किस किस बात के लिए पछतावा किया

जाय विधाता के अक भला किस प्रकार टाले जा रकते हैं आज उसी प्रेम का स्मरण कर करके आसू बहाय जा रह हैं। जो रात सुजान के सग बातो ही बातो म बीत जाया करती थी वही अब न जाने कहा का दीघता लेकर आया करती है, जो दिन जीवन का चरम सुख या फल दिया करत थे वे ही दिन अब यमराज से भयावने और लम्बे हु ा करत है, अगो की भी दशा और हो गई है सुख रूपी लता के जब लहलहान क दिन आय तभी वह मुरझाई जा रही है। तुलनात्मक वृत्ति का निदर्शक अतीत और वतमान के अन्तर का उद्घाटन करने वाला स्मृति प्रेरित वेदना का यह चित्र पर्याप्त सुन्दर है—

तब तो छबि पोरत जीवत हे अब सोचन लोचन जात जरे।
हिय पोष के तोष जु प्रान पले बिललात सु यों दुख दोष भरे।
घनआनन्द प्यारे सुजान बिना सब ही सुख साज समाज टरे।
तब हार पहार से लागत है अब आनि क बीच पहार परे।

इस प्रकार स्मृति जन्य वियोग या पीडा के वणन म मुख्य रूप से कवि ने अपने वतमान से ही प्रेरणा ली है। उसकी वतमान व्यथा ने उसे उसके अतीत-सुख का स्मरण दिलाया है और स्मृति के आलोक मे कवि अपनी व्यथापूण विरह दशा को और भी अधिक दयनीय पा रहा है। दिन और रातो के सुख याद आते हैं जिससे हृदय अधिकाधिक विदीण हुआ दिखाई देता है, धय छूटता हुआ दिखाई देता है और तडप चौगुनी हो उठी है। फिर भी स्मृति घनआनन्द का पल्ला नही छोडती, घनआनन्द भी बीती बातो की याद कर कर क इस विषम विरह दशा म भी कुछ राहत पा लेते हैं —सुजान का रूप सौन्दय व्यवहार सयोगकालीन जीवन की कुछ अविस्मरणीय बातें स्मृति म आ आ कर उन्हें थोडा ही सही सुख सन्तोष भी प्रदान करती हैं।

४ ऋतु और प्रकृति क कारण विरहोद्दीप्ति

विरह की व्यथा को जाग्रत करने अथवा उद्दीप्त करने म चारो तरफ की प्रकृति का ऋतुओ का बडा हाथ रहता है। प्रेम मे ये ही सुख भी पहुचाते हैं और अनन्त दुख भी ये अक्षय वरदान भी हैं और अनन्त अभिशाप भी—ऐसे ये सयोग और वियोग म प्रतीत हुआ करते है। सयोग म ये जितना सुख पहुचाते हैं वियोग म उसका चौगुना दुख। ऋतुयें और प्रकृति मानव जीवन क चिर सहचर हैं कदाचित मानव सृष्टि से भी य प्राचीन हैं। मानव न सही जीव सृष्टि क साथ इनका निरतर सम्बन्ध रहा है ये उसके सुख-दुख के साथी हैं। प्रकृति और ऋतुयें सामान्यत हमारे सुख के साधन हैं इनसे हम अनन्त सुख सपदा मिली है और मिलती रहेगी यह केवल हमारी सकीण बुद्धि है जो इन्हें हम अपने दुख का उद्दीपन कारण समझते हैं। प्रकृति दुख म हम सहलाती है, सात्वना देती है—शीतल वायु अपने स्पर्श द्वारा मधुर गध अपनी सुगधि द्वारा पक्षियो का या सरिता का कलरव और कलकल अपने नाद द्वारा हम हर्ष पहुँचाने का ही आयोजन करते रहते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा अपनी रुपहली चाँदनी म वर्षा अपनी जलवृष्टि म नवजीवन की अनन्त धारा हमारे

सामने करती रहती है। प्रकृति की परोपकार परायणता प्रसिद्ध ही है—नदियाँ अपना जल नही पीती वृक्ष अपना फल नही खाते, पृथ्वी क्षमामूर्त्ति है वृक्षादि देव तुल्य हैं, हमे आशीर्वाद देते हैं आदि आदि। एसी प्रकृति को विरही अपने दु ख का कारण माना करते हैं। यह अनन्त रूपा प्रकृति वस्तुत हमे अनन्त रूपो म सुख और समृद्धि प्रदान करती है पर विरही इतना स्वार्थी हुआ करता है कि उसे प्रकृति की अनन्तर मजीयता और उपयोगिता म भी अपना अहित दिखाई देता है। वह हसती खिलखिलाती प्रकृति को देख कर खुश नही हो सकता, वह अपने दु ख मे उसे भी दु खी देखता है, यदि उसे दु खी नही देखता तो दु खी होने क लिए कहता है। यह वृत्ति विरही के अपने लिए चाहे कितनी माफिक (अनुकूल) क्यो न हो पर प्रकृति के साथ उसका घोर अत्याचार है। जो हो कविजन विरहियो और विरहिणियो का वणन करते हुए प्रकृति की व्यथा विवधन शक्ति के कायल रहे हैं। काक शास्त्रा म तो उद्दीपन (विभाव) का अथ ही प्रकृति और ऋतु समझा जाता रहा है।

घनआनन्द ने अपनी विरह व्यजना के लिए प्राकृतिक उपादानो का भी एक अच्छा साधन स्वीकार किया है। इसके माध्यम से भी वे अपनी बहुत सारी पीडा उडेल गये हैं। रीतिबद्ध कवियो के समान विधिवत घनआनन्द ने वर्षा वसन्तादि के छन्द नही लिखे हैं बल्कि भावो के आवग म जब जिस ऋतु अथवा प्रकृति क उपकरण पर दृष्टि गई है तब उसकी विरहोत्तेजकता पर छन्द लिख गये हैं। नियमित रूप स वर्षा या वसत के रूपका के बाँधने के फेर म वे नही पडे हैं। जैसी वृत्ति रही है और जब जिस पर दृष्टि गई है तब उस प्राकृतिक उपकरण को लक्ष्य करके उन्होने अपनी विरह व्यथा का कथन किया है। यह अवश्य है कि ये प्राकृतिक उपादान उसकी वदना क अभिवर्धक ही हैं। घनआनन्द की दृष्टि ऋतुओ मे मुख्यत पावस और वसत, महीनो मे सावन और फागुन, त्यौहारो मे फाग और दीवाली, काल म दिन और रात्रि तथा प्राकृतिक उपकरणो म चन्द्रमा, चाँदनी खिले हुए कमल, सुरभित समीर, मेघ चपला और अधकार तथा पक्षियो म चातक तक (पर) गई है। इनके कारण होने वाली विरह व्यथा की तीव्रता का उन्होने अनेक छन्दो मे प्रभावशाली चित्रण किया है।

दखिये न ! पावस विरही घनआनन्द पर क्या कहर ढाती है—लहकती हुई पुरवया दहक-दहक कर उन्हे तपाये जाती है और भटक हुए बादल उसक हृदय म व्याकुलता का सचार कर रहे हैं चमकती हुई बिजली प्राणो को जलाये देती है भला ये प्राण बचें तो कस, उधर वर्षा के प्रसूनो की सुगधि भी विरही की साँसो को कम नास नहा दे रहे हैं—

सहकि-सहकि आव ज्यौं ज्यौं पुरवाई पौन,
दहकि दहकि त्यौ त्यौ तावरे तच।
बहकि बहकि जात बदरा बिलोकें हियौ,
गहकि गहकि गहबरनि गरें मच।

चहकि चहकि डारै चपला चखनि चाहैं
कैसें घनआनन्द सुजान बिन ज्यौं बच।
महकि महकि मारै पावस प्रसून-वास
आसनि उसास दया घो लों रहियै अच।

चारों तरफ से घिर कर घटायें जी (जीव, प्राण) को घोटे डालती हैं और बनप्रिया (मयूरी) की कूक कलेजा खींचे लेती है, शीतल समीर शरीर को दग्ध कर रहा है और बिजली की कौंध टूटती हुई उल्काओं की तरह भस्म कर रही है। हे सुजान! तुम पर अनुरक्त ये प्राण वर्षा काल में भी अधीर होकर सूखे जा रहे हैं जीवन मूल होकर भी हे आनन्दघन! इन चातक प्राणों की पुकार पर क्या ध्यान दे रही हो। वर्षा काल में तुम दूर हो इससे मुझे अपने प्राणों का भी अंदेशा बना हुआ है मयूरों की कूक सुन कर हृदय में हूक उठ जाया करता है और ये चातक भी कलेजा काढ़ने से बाज नहीं आते (उसे अनिवार्य रूप से निकाले लेते हैं), बिजली की कौंध आँखों में चकाचौंध भर देती है और शीतल समीर का स्पर्श जलाये देता है तथा चौतरफा घिरे हुए बादल जीव को घेर कर घोट दे रहे हैं। घनआनन्द कहते हैं हे सुजान! तुम्हारे बिना मुझे अशक्त जान कर ये बलाहक (मेघ) गरज रहे हैं और अपना बल दिखला रहे हैं बिजली भी हमारा दुःख देख कर हँस रही है और पवन भी कामदेव से दुगुना सता रहा है (जला रहा है)। हे चन्द्रमुखी! तेरे बिना यह अन्धकार भी व्यर्थ राहु सा ग्रसे ले रहा है हमारे प्राण तुम्हारे धरोहर हैं इन्हें ले जाओ अन्यथा अब इन प्राणों के गाहक (वर्षा के ये उपकरण) इनके पीछे पड़ गये हैं—

मो अबला तकि जान! तुम्हैं बिन, यौं बल क बलकजु बलाहक।
त्यौं दुख देखि हँसै चपला अरु पौन हू दूनो बिदेह तें दाहक।
चदमुखी सुनि मंद महातम राहु भयो यह आनि अनाहक।
प्रान धरोहर है घनआनन्द लेहु न तौ अब लैहिंगे गाहक॥

इस छन्द में पीड़ा की अभिव्यंजना भिन्न पद्धति पर की गई है। और छन्दों में तो वर्षा के उपकरणों द्वारा व्यथा की उद्दीप्ति दिखाई गई है परन्तु यहाँ प्रिय के अभाव में प्रेमी को निर्बल जान वर्षा के उपकरणों की तेजी और उनकी त्रास देने की प्रवृत्ति में बढ़ोत्तरी दिखाई गई है। बात वही है पर यह कथन पद्धति नई और अच्छी है। अभिव्यंजना के आचार्य घनआनन्द ने अपने वियोग का आतिशय्य दिखलाने के लिए एक छन्द में अपनी व्यथा को ही प्रकृति में भर दिया है और यहाँ कहा है कि चपला में जो दाह है पपीहा के स्वरों में जो वेदना है जिधर निधर भटकते हुए पवन में जो अस्थिरता है और मेघों में जो वर्षण शक्ति है वह सब प्रकृति को हे सुजान! तेरे विरही से ही प्राप्त हुए हैं। इस वर्णन में प्रकृति उद्दीपन रूप में तो नहीं आई है पर विरह की व्यंजना में उसका उपयोग पूरा हुआ है और इस रूप में प्रयुक्त हो तीव्र विरह व्यंजना का वह एक बहुत अच्छा साधन बन गई है—

बिकल बिषाद भरे ताही की तरफ ताकि,
बामिन हू लहकि बहकि यों जरयो कर।
जीवन-अधार-घन पूरित पुकारनि सों,
आरत पपीहा नित कूकनि करयो कर।
अथिर उदेग गति देखि कै अनदघन,
पौन बिडरयो सो बन सोधिन र रयो कर।
बूद न परति मेरे जान जान प्यारी ! तेरे,
बिरही कौं हेरि मेघ आँसुनि झरयो कर।

वर्षा ऋतु वेदना का किस कदर धार दे रही है अनेक बार घनआनन्द ने इस बात को दिखाना चाहा है। अब वह तीसरी पद्धति देखिये जिस पर चल कर कवि हमे वर्षा की विरहोत्तेजकता सूचित कर रहा है। इस बार वर्षा क उपकरणो का एक एक कर सबोधित किया गया है, धय और शक्ति के साथ उनका मुकाबला किया गया है और उन्ह एक ललकार (ultimatum) भी दी गई है—'कारी कूर कोकिला कर काढ़ति री' वाला छन्द इसी आशय को व्यक्त करता है।

सुजान के प्रति अपने विरह निवदन म घनआनन्द ने बसन्त ऋतु का विशेष उपयोग नही किया है केवल साधारण रूप से यही कह दिया है कि वह प्राणघातक कुसुमरा से सयुक्त हो विरहियो का शिकार करता फिरता है और कामदेव का तो परम सहचर है तथा अपनी पूरी सेना के साथ उन्हे त्रास दता फिरता है।

सावन का हरा भरा महीना आया देख प्रिया से मिलने की विशेष लालसा होती है परन्तु सावन की सुहावनी लगने वाली बूदें उल्टा ही आचरण करती हैं उनका स्पश विरह की ज्वालाओ को धधका देना है, इस बात को लकर एक बहुत ही सुन्दर उक्ति घनआनन्द ने की है कि पवन मे आग लगते तो सुना गया था पर पानी से आग लगते आँखा दख रहा हूँ, बडी ही मम-स्पर्शिणी है यह उक्ति और अत्यन्त ही विदग्ध हृदय से उत्पन्न है। देखिये—

बूद लग सब अग दग उलटी गति आपने पापनि देखी।
पौन सो जागति आगि सुनीही प पानी सों लागति आँखिन देखी॥

फागुन का हृप और उल्लास स भरा महीना आता है परन्तु सब बेकार रग रचावन। सुजान जो समीप नही है सुगन्धियाँ साँसा को घोटे देती हैं चन्दन दाहक होकर प्राणा का ग्राहक हो जाता है गुलाल आँखो का दुश्मन हो रहा है और अबीर हृदय का धय उड़ाये दे रहा है सगीत वैराग्य जगा देता है, धमार (होली का एक गीत) धार की तरह प्रतीत होती है—

सोंध की बास उसासहि रोकति चदन दाहक गाहक जी को।
नैननि बरी सो है री गुलाल अबीर उडावत धीरज ही को।
राग बिराग धमार त्यों धार सी, लौटि परयो ढग यों सब ही को।
रग रचावन जान बिना घनआनन्द, लागत फागुन फीको॥

दीपावली का त्यौहार आता है तो सभी लोग खुशियाँ मनाते हैं, जुआ खेलते हैं उमग म होत हैं मजे लते हैं अगा म अनग देवता अपनी ज्योति जगाते हैं, दीपक जलाये जात हैं और प्रेमी अपनी अपनी स्त्रिया क सग अनुरक्त होत हैं पर घनआनन्द अपने हृदय म योग जगाय बैठे हुए हैं—

दियरा जगाय जाग पिय पाय तिय रागैं,
हियरा जगाय हम जोगहि जगावहीं।

काल अथवा समय सूचक दिन और रातें भी विरही घनआनन्द को कम पीडा नही पहुँचाते घनआनन्द सुजान स मिलने क लिए तडपत हैं और उधर दिन तो दिन एक क्षण भी बिताना मुश्किल हुआ जाता है एक क्षण विधाता के दिन सरीखा सुदीघ प्रतीत होता है—

विधि के दिन लौं, छिन बाढ़ि परे यह जानि वियोग बितायहौ जू।

दिन इतन बढने लाग हैं कि लगता है व समाप्त ही नही होंगे—

जोई दिन कत साथ जीवन को फल लाग्यौ,
सोई बिन अन्त देत अतक दुहाई है।

जो हालत दिन की है वही रातो की भी, बल्कि उससे भी बदतर। जो रात प्रिय के सग बातो-बातो मे ही (अत्यन्त शीघ्र) बीत जाती थी सोई अब कहाँ तें बढनि लिये आई है', वियोग म बरिन रात इस तरह बढती है और दुःख पहुचाती है कि कुछ कहते नही बनता। रात्रि बेतरह कटु अप्रिय और विषाक्त प्रतीत होती है, साँपिन की तरह। यह एक बडा सुन्दर सयोग है कि सूर की विरहिणी ने भी रात्रि को करालता और विष-पूर्णता का बखान किया था और सूर का तत्सम्बन्धी छन्द बहुत प्रसिद्ध भी है—

पिया बिनु नागिन कारी रात।
कबहु जामिनी होति जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात॥

घनआनन्द ने रात्रि की विषमता का कथन एक भिन्न ढग स किया है और उसकी तीक्ष्णता, कटुता, दुष्प्रभावादि का सविस्तार कथन किया है—

करुबो मधुर लाग वाको बिष अग भएँ,
याहि देखें रसहू मैं कटुता बसति है।
वाके एक मुख हो तें बाढ़ते बिकार तन,
यह सरबग आनि प्राननि गसति है।
सुन्दर सुजान जु सजीवन तिहारो ध्यान
तासों कोटि गुनी ह्वै लहरि सरसति है।
पापिनि डरारी भारी साँपिनि निसा बिसारी,
बरिनि अनोखीं मोहिं डाहनि डसति है।

सक्षप मे कथ्य यह है कि दिन और रात दोनो सताते हैं डसत हैं दीघ हो

होकर प्राण खाये जाते हैं, जीवन विपाक्त किये देते हैं आदि आदि। दिन मे कुछ अच्छा नही लगता और रात भर करवटें लेन पर भी व्यतीत नही होती है—

**द्यौस कछू न सुहाय सखी अरु रैनि बिहाय न हाय करौटनि।**

प्रकृति के विरहोद्दीपक उपकरणो मे कई चीजें हैं जिनकी चर्चा कवि ने की है। उदाहरण के लिए चन्द्रमा जो आकाश मे कढ कर (निकल कर) घनआनन्द के प्राणा को काढे लेता है अमृत मय होकर विप प्रवाहित करता है और हिम शीतल होकर भी अगा का दग्ध करता है—

**कहा कहिय सजनी रजनी गति, चद कढ़ै कि जिय कहि काढ़ै।**

**अमीनिधि प बिषसार स्रव हिम जोति जगाय कै अगनि डाढ़।।**

और चादनी के विषय म घनआनन्द ने जैसा कहा है वसा किसी ने नही कहा है—आकाश से धरती तक पसरी हुई मरीचियो और बीचियो के सग हिलोरें लेती हुई चक्करदार भवरो (आवर्तो) स भरी हुई उफनती हुई चाँदनी घर घर मे पैंठती और ढूढती हुई बढ रही है—उसकी बाढ विरही के लिए अनन्त और असह्य वेदना का कारण है भला प्रलय के पयोधि के समान बढती हुई इस चाँदनी को कसे रोका जा सकता है? उपाया की नावा का तो य अपनी लहरो के थपेडे दे-दे कर तोड देती हैं अब वियोगियो के बचन का कोई उपाय नही—

**फैलि परी घर अम्बर पूरि मरीचिनि बीचिनि-सग हिलारति।**

**भौंर भरी उफनाति खरी सु उपाय की नाव तोरति तोरति।।**

**ज्यों बचिय भजिय घनआनन्द बठि रहें घर पठि ढँढोरति।**

**जान्ह प्रल के पयोनिधि लौं बाढ़ बिरहिन आन बियोगिनि बोरति।।**

अयत्र कवि ने कहा है कि नेह निधि सुजान के समीप जो चादनी हृदय को शीतल किया करती थी वही आज अगो को जला रही है और अग्नि ज्वाल हो रही है—

**नेह निधान सुजान समीप तौ सींचति हो हियरा सियराई।**

**सोई किधौं अब और भई दई हेरति ही मति जात हिराई।।**

**है बिपरीति महा घनआनन्द अम्बर तें धर कौं झर आई।**

**जारति अग अनग की आचनि जोन्ह नहीं सु भई अगिलाई।।**

इसी प्रकार अन्यान्य प्राकृतिक उपकरण भी सुख पहुँचाने के बजाय विरही को उल्टे दुख ही देते हैं—खिले हुए कमल को देख विरही दुखी और उदास हो जाता है, सुरभित समीर उसके हृदय को दहका देता है और तीर से भी अधिक तीक्ष्ण प्रतीत होता है—

**(क) बिकच नलिन लखे सकुचि मलिन होति**
**ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।**

**(ख) सौरभ समीर आएँ बहकि दहकि जाय,**
**राग भरे हिय मे बिराग-मुरझनि है।**

(ग) रग रस-बरस सुजान के दरस बिन,
तीर तें सरस बहै परस समीर को।

पक्षियो मे चातक का स्मरण घनआनन्द ने अनेक बार किया है और उसकी हूक भरी कूक को वियोग में विशेष वेदना-वर्धक बताया है। आधी रात को जब पपीहा अचानक कूक उठता है तो समझ लीजिये विरही के प्राणो को बिना धनुर्बाण के ही वेध देता है उसकी बोल शर के समान ऐसी तीक्ष्ण प्रतीत होती है—

बैरो बियोग को ऊकनि जारत कूकि उठै अचकाँ अधरातक।
बेधत प्रान बिना ही कमान सु बान से बोल सों कान ह्वै घातक।
सोचन ही पचिये बचिये कित डोलत मो तन लाएँ महा तक।
वे घनआनन्द जाय छए उत, पैंडे परयौ इत पातकी चातक॥

इस प्रकार ऋतुओ और प्राकृतिक उपकरणो से उद्दीप्त व्यथा के चित्रण में कवि ने बताया है कि पुरवया उन्हें किस प्रकार लहक-लहक कर दहकाती है बहकते हुए बादल किस प्रकार घुमड घुमड कर गरजते हैं डराते हैं अपनी शक्ति का प्रदशन करते हैं और विरही का गला घोटे देते हैं। चहकती हुई चपला आँखों को चकाचौंध से भर देती है निस्तेज कर देती है टूटती हुई उलका के समान त्रस्त करती है और कभी विरही का दु ख देख कर हँसती भी है। महकती हुई सुरभि साँसो पर हावी हो जाती है शीतल समीर का स्पश अगो को दग्ध करता है कामदेव से दूना दाहक हो जाता है मयूरो की कूक हृदय मे हूक उठा देती है और चातको के बोल कलेजा काढे लेत हैं अधकार राहु सा प्राणो को ग्रस्त करता है। तात्पय यह कि प्राणो को हरा भरा करने के बजाय वर्षा उन्हें सुखाये देती है और जीवन दूभर एव सन्देहास्पद हो उठा है। साराश यह है कि वर्षाकालीन सारी प्रकृति कवि के प्राणो का गाहक बनी हुई है। वसत अपने सहचर कामदेव को साथ लेकर विरहियो का शिकार करता फिरता है। सावन की बूँदें शरीर का स्पश कर शीतल करने के बजाय उसमे आग धधका देती हैं। यह उल्टी गति देखिये—

पौन तें जागति आग सुनी ही पै पानी तें लागति आँखिन देखी।

रग रचावन सुजान के बिना फागुन फीका लगता है—सुगधि चदन, अबीर गुलाल धमार सभी साँसो को घोट देने वाले हैं और हृदय को बेतरह अधीर कर देते हैं, दीपावली ससार से विरक्ति जगाने वाली होकर आती है, दिन और रात जाने कहा की दीघता लिये आते हैं दिन सुहाता नही रात करवटें लेते हुए भी नही बीतती, रात के दु खो का तो कहना ही क्या, सापिन की तरह विषैली रात अनत रूपा मे विरही को डसती है सुजान के बिना रात और दिन जिस प्रकार व्यतीत होते हैं उस व्यथा को कहा नही जा सकता उसके तो साक्षी स्वय वे दिन और रात ही हैं—

जान बेई दिन राति बखाने तें जाय पर दिन राति कों अन्तर।

चन्द्रमा भी प्राण खीचे लेता है अमृत के बजाय विष देता है और शीतलता

के बजाय दाह ! और उसकी चाँदनी ! वह तो चुडल की तरह चबाये लेती है, प्रत्यसिंधु के समान विरही को डुबाने के लिए उमडती चली आती है और उल्टी ज्वाला है उसकी जो अंबर म धरती की ओर आती है तथा अगो का अनग की आच म जलाय देती है। विकच कमल उदास बनाते हैं और सुरभित समीर दाह देता है, चातक प्राणों को बेधता है। इस प्रकार व्यापक प्रकृति अनत रूपो मे विरही घनआनन्द को वेदना ही पहुँचाती है। कवि की वेदना अपने आप ही कुछ कम नहीं, उस पर से ये प्रकृति उसकी अतव्यथा का शतशत रूपा में बढा देती है। कवि विकल होकर महासतप्त हो उठता है अपने उसी सताप को यथासभव तीव्रता के साथ उसने व्यक्त किया है। वर्षा, फागुन रात्रि और जुन्हैया उसे सर्वाधिक पीडा पहुँचाते हैं इनम उसे जितनी वेदना वृद्धि होती है उतनी उपकरणो से नही।

५. अनग दाह

कामदेवता भी विरही को कुछ काम पीडा नहीं देते, उनका काम ही है अतन (अव्यक्त) रूप से तन म और मन म प्रवेश कर तन मन को मथ देना और एक अकथनीय अतृप्ति और उत्कट कामनापूर्ण उत्तेजना से भर देना। अनग सयोग म भी सताता है पर तब उसका साधन सुलभ रहता है अतन-अतन' सभव हो जाता है पर विरह म विरही क्या करें, अनग पीडा का उपचार सभव नही। उपचार रहित विरही का मनोज मा देवता जो पीडा पहुचाता है उसे उस विरही के सिवा और कोई नही जानता। इस अनग सताप-जन्य व्यथा का भी अपने विरह निवेदन के अतगत घनआनन्द ने बार-बार उल्लेख किया है—

(क) बिरह बिषाद छाय आसुन का झर लाय
मार मुरझाय मन-तावरेन ताय ताय।
(ख) पीरो परि देह छीनी राजत सनेह भीनी
कीनी है अनग अग अग रग बोरो सो।
(ग) मातो फिरै न घिरै अबलानि पै जान मनोज यौं डारत मारैं।
(घ) रोम ही रोम परी घनआनन्द काम की रौर न जाति निबेरी।
(ङ) अग भए पियरे पट लौं मुरझे बिन ढग अनग सरौटनि।

काम ज्वर विरही के अगो को तपा-तपा कर मारे डालता है, उसके प्राण मूर्छित हुए जाते हैं अनग रग म डूबा हुआ शरीर अतन उपचार के बिना विवर्ण हो रहा है, मतवाला होकर कामदेव अग-अग म दहक उठा है, रोम रोम म उसके विजय की दुन्दुभी बज रही है। यही सब बातें इस सन्दर्भ म दिखाई गई हैं। अनग अगो को प्रज्वलित करता है, हृदय के सुखा की दुनियाँ उजाडे डालता है और अनन्त आपत्तियाँ अपने सग म ले आता है। एक जगह अनग को लक्ष्य कर कवि ने अच्छी उक्ति की है कौन कहता है कि कामदेव जल गया, वह तो आज भी हमारे अगों का सारा रग रस खीच कर हम पीडित कर रहा है फिर वसत की शक्तिशाली सहचर के साथ सब तरफ घूमता रहता है और ऐसी उन्मत्त और सशक्त प्रवृत्ति का है जो किसी

से दबता ही नही, अत शकर द्वारा इसके दहा की कहानी झूठी है आज तो वह और भी सबल शक्तियो के साथ हमारे प्राणो को विद्ध कर रहा है। खासा कपूत है वह जो अपने पिता मन को ही वेधे डाल रहा है। पिता का ही जिसे लिहाज न हो ऐसे (मनोज—मनोजन्मा काम या अनग) ही बेटे को तो कपूत कहा जायगा। यह उक्ति कितनी सुदर है और अर्थवती भी—

मुरझाने सब अग रह्यो न तनक रग
बरी सु अनग पीर पार जरि गयो ना।
इते प बसन्त सो सहायक समीप याके,
महा मतवारो कहूँ काहू तें जु नयो ना।
तीखे नए नीके जोके गाहक सरनि तो स
बेध मन कों कपूत पिता मोह मयो ना।
पवन गवन-सग प्रानन्नि पठाम हौं तो,
जान घनआनन्द को आवन जो भयो ना॥

## ६ प्रेम वषम्य

प्रेम वषम्य घनआनन्द के काव्य मे अवतीण होने वाला सर्वप्रमुख भाव है शतशत छन्दो मे सहस्र सहस्र बार इस प्रेम विषमता की चर्चा हुई है और अनक बार कवि ने स्वत अपने प्रेम माग की विषमता या विपरीतता का उल्लेख किया है। बात यह है कि उनका निजी जीवन ही विरोधो और विषमताओ का जीवन रहा, सुख से उन्हे जसे भेंट हो न हुई थी कम से कम अन्तसक्षिय से तो यही प्रमाणित होता है। सुख उन्ह उत्तरवर्त्ती जीवन म मिला भक्ति के क्षत्र म पदापण करने पर और ब्रजवास का अनन्त सुख साम्राज्य पाने पर वह सुख ससारी घनआनन्द का सुख न था विरक्त ईश्वरनिष्ठ घनआनन्द का आत्मिक या आध्यात्मिक आनन्द था। वह आनन्द जो लौकिक जीवन को सुखी बनाता है शायद उन्ह भौतिक सुख सुविधाओ के रूप मे प्राप्त था पर कुछ काल तक ही। मुहम्मदशाह 'रगीले' बादशाह के खास कलम (प्राइवट सेक्रटरी) या मीर मुशी को भौतिक सुखो की क्या कमी हो सकती थी? पर उनका मन उतने से ही यदि सन्तुष्ट रहने वाला होता तब तो? उन्ह सुजान की तलब हुई और सुजान उन्ह न मिली सुजान से इन्होने सर्वात्तम भाव से प्रेम किया पर उसने इनका साथ न दिया यो कहिये इन्ह ठुकरा दिया सारा जीवन उसी के वियोग म बिसूरते हुए इन्होने काट दिया। यही उनके जीवन की सबसे विषम (कठिन और विपरीत) स्थिति थी, इसी ने उन्हे पागल कर रक्खा था। इनके प्रेम के अनेक निन्दक भी थ कुछ ने इन्ह खुले आम गालियाँ भी दी थी इन्होने उन सबकी परवाह भले ही न की हो पर उनसे इन्ह पीड़ा तो पहुँची ही होगी। मृत्यु भी इनकी अब्दाली के सिपाहियो क हाथो हुई कृपाण की धारा पर ये प्रेम विरही सीधे उतार दिये गये, जिस आरे पर कट जाने और कृपाण की धारा पर दौड़ाने की बात औरो

ने कही है वही बात घनआनन्द ने करके दिखा दी थी, कथनी और करनी का यह अभेद कितने लोग दिखा सकते है। ताल ठोक कर प्रेम के अखाडे मे उतरने वाले प्रेमियो को इस प्रश्न का उत्तर देना पडेगा। घनआनन्द की बराबरी तो क्या यदि उनके चरणो की धूल के बराबर भी वे अपने आपको सिद्ध कर सकें तो भी उनकी तारीफ की जा सकती है। सारा जीवन सुजान की स्मृति का स्तूप सा बन कर उन्होंने काट दिया। आज उनका जीवन और उनका काय उनके प्रेम का अवि चल स्मारक है। ऐसी प्रेम साधना करने वाले घनआनन्द का जीवन विषमता का एक लम्बा चौडा आख्यान है। उनके जीवन की एक एक घटना का प्रमुख घटनाओं के महत्वपूर्ण ब्यौरे हम न मालूम हो तो क्या उनकी एक एक सास का, उनकी एक एक आह का इतिहास तो हमे पता है, उनका हर छन्द उनकी एक आह भरी सांस है एक दीघ निश्वास है और हमे उनकी हर साम का ब्यौरा मालूम है। अपने जीवन की इम विषमता से वे बेतरह विकल थे वह उनके हृदय पर सबसे भारी पत्थर था, उस स्तूप की विशालतम चट्टान थी जिसका दर्द कभी निकलता न था, जिसकी पीडा कभी बन्द न होती थी जिसकी चीख पुकार कराह के रूप मे हरदम निकलती रहती थी। विषमता की वह चट्टान क्या थी ? सुजान की निष्ठुरता, उदा सीनता, अनमनापन, निर्मोहिता। एक तरफ इतना लगाव था दूसरी तरफ इतनी उपेक्षा, एक तरफ इतनी पीडा थी दूसरी तरफ इतनी बेफिक्री, एक तरफ स्मृति दूसरी तरफ शुद्ध विस्मृति। प्रिय का यही आचरण उनके हृदय का सदा सालता रहता था। इसी शूल से उनकी सारी भावना वषम्य-परक हो गई थी। विषमता उनकी भाव धारा का ही नही उनकी अन्त सत्ता का ही नही उनकी भाषा और अभिव्यक्ति का भी अपरिहाय अग हो गई थी। इसी कारण उनका सम्पूण काव्य विशेषता सुजान प्रेम का व्यजक प्रत्येक छन्द इस वषम्य की अन्तर्व्यापिनी भावना से ओतप्रोत है, उनकी हर उक्ति म वषम्य की भगिमा किसी न किसी रूप मे समा गई है। यह वैषम्य उनके तन, मन प्राण का अभिन्न तत्व हो गया है हर कथन किसी न किसी प्रकार का विरोध भाव या वपरीत्य लिये आता है। विपरीतता शत शत रूपो मे मुखर हो उठी है और विदग्ध समीक्षकों को कहना पडा है कि विरोधाभास के अधिक प्रयोग से घनआनन्द की सारी रचना भरी पडी है। साहसपूवक यह कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक मे कही भी यह प्रवृत्ति न दिखाई दे उसे बेखटके घनआनन्द की कृति से पृथक किया जा सकता है और जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे उसे नि सकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है। अथगत विरोध तो इनमे है ही पर विरोध की प्रवृत्ति प्रकृतिस्थ हान से शब्द विरोध भी कही दिखाई देता है।[1] हम ता इससे भी आगे जाकर यह कहना चाहते हैं कि शब्द और अथगत विरोधो के अतिरिक्त भी कितने अन्य प्रकार के विरोध इनकी कविता मे लक्षित किये जा सकते हैं और शब्द विरोध

---

१ घनआनन्द ग्रथावली वाङ्मुख– पृ० ५० ५१—प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

कहीं-कहीं नहीं पद पद पर देखा जा सकता है। वस्तुत यह विरोध और विप रीतता की प्रवृत्ति कवि मे इतनी बद्धमूल थी, संस्कार रूप म व्याप्त हो चली थी कि विषमता रहित उक्ति विधान उनके लिए सम्भव ही न था। नाना प्रकार के विरोध-मूलक कथनो के मूल उत्स तथा उनके सौन्दर्य की समस्त भगिमाओ का उद्घाटन अपने आपम एक स्वतन्त्र और महत्त्वपूर्ण काय है।

कहा गया है कि यह प्रेम विषमता फारसी कवियो की देन है[1] हो सकता है हो, पर इसे प्रमाणित कर सकना कुछ सरल बात नहीं। हमारा तो विचार है कि घनआनन्द म यह प्रेम विषमता मुख्यत उनके निजी जीवन और प्रेम विषमता के कारण आई है। उनका जीवनगत प्रेम-वैषम्य ही उसम बिम्बित हुआ है। फारसी काव्य परम्परा का जो प्रभाव घनआनन्द आदि पर है उसकी चर्चा हम अन्यत्र कर आये हैं परन्तु यहाँ पर तो हमारा अभिप्रेत यही देखना दिखाना है कि प्रेम विषमता का चित्रण विरही घनआनन्द ने किस प्रकार किया है। प्रिय की कठोरता और उपेक्षा वृत्ति कवि की भावना को क्या-क्या मोड देते हैं और प्रिय की निरन्तर उदासीनता से विरही हृदय की क्या प्रतिक्रियायें होती हैं।

इस प्रसग म यहाँ पर सर्वप्रथम इसी बात पर विचार कर लेना अनुचित न होगा कि अपने काव्य की इस प्रेम विषमता के सम्बन्ध मे स्वय कवि के क्या विचार हैं। उसने अनेक बार नेही की विषम दशा या प्रीति विषमता की बात कही है।[2] पहले उन छन्दो या पक्तियो को देखिये जिनमे प्रेम विषमता का सकेत किया गया है—

(क) विषम विरह के बिसिख हियें घायल हैं
गह्वर घमि घूमि सोचनि ससत है।

(ख) चाहो अनचाहो जान प्यारे प अनन्दघन,
प्रीति रीति विषम सु रोम रोम रमी है।
मोहिं तुम एक तुम्हें मो सम अनेक आहिं
कहा कछू चदहिं चकोरन की कमी है।

---

१ वही पृ० ३५ ४० और घनआनन्द तथा स्वच्छन्द काव्य धारा पृ० ३४६ ३४६

२ यदि यह बात स्थिर हो जाती है कि घनआनन्द को प्रम, विषमता सिद्धात रूप म मान्य थी तब तो फिर उसे फारसी प्रभाव मानने म कोई अडचन नहीं रह जाती क्योंकि अपने देश मे वणन के क्षेत्र मे विषमता सिद्धान्त रूप मे मान्य नहीं रही है। वह कालान्तर मे कृष्ण भक्ति तथा माधुर्योभावोपासना या प्रेमलक्षण भक्ति तथा विदेशी प्रभाव के ही कारण आई है। यहाँ तो समप्रेम का ही विधान मूलत मान्य रहा है। उधर फारसी शायरी म वैषम्य की व्यजना प्रेमवणना का सैद्धान्तिक आधार रही है और सिद्धान्तत ही फारसी शायरो ने अपनी प्रमवणना मे प्रिय (माशूक) की निष्ठुरता उपेक्षा वृत्ति आदि का विशद विस्तार दिखाया है जिसकी चर्चा हम फारसी प्रभाव वाले अध्याय मे यथास्थान कर चुके हैं।

(ग) जान प्यारे प्रानमनि बसत प अनदघन,
बिरह् विषम दशा मूक लौं कहनि है ।
(घ) है बिपरीति महा घनआनन्द अवर तें धर कों झर आई ।
(ड) जब जब आवें तब तब अति भाव ज्यावें
अहा कहा विषम कटाच्छ सर चोट है ।
(च) हेति-खेत पूरि चूरि चूरि सीस पाव राखि
विषम उदेग-बान-आगें उर ओटिबो ।
(छ) उठि न सकत ससकत नैन बान बिधे,
दुहेन्द प नियम बिषाद जुर लू बरे ।
(ज) पलको कलप कल्पो पलक सम होत सजोग वियोग दुहूँ ।
बिपरीति भरी हित रीति खरी समझी न परे समझ कछु है ॥
(झ) आली ! घनआनन्द सुजान सों बिछुरि परें
आपो न मिलत महा बिपरीति छाई है ।
(ञ) बिषम उदेग आगि लपटे अँतर लागें
कसें कहाें जसे कछू तचनि महा तई ।
(ट) जीवन की मूरि जाहि मार्यो तिन चूरि करी,
खरी बिपरीति दई गई हेरि हौं हिराय ।
(ठ) और जे सवाद घनआनन्द बिचार मौन
बिरह बिषम जुर जीबो कसनो लग ।

प्रीति रीति मे विषमता—इन उदाहरणा को देखन से पता चलता है कि वैषम्य उनके विरह का एक निश्चित अग अवश्य था और उन्ह इस बात का एहसास भी था, जगह जगह वषम्य या वपरीत्यसूचक शब्दो के व्यवहार इस तथ्य के निश्चित प्रमाण हैं । यह विषमता 'प्रीति रीति' म बताई गई है जिसके द्वारा यह सूचित किया गया है कि मेरे लिए तो तुम्ही एक हो तुम्हारे लिए अनेक हो सकते हैं । हित रीति मे विपरीतता' इसलिए भरी है क्योकि सयोग मे पल वृहद्यन हो जाता है और वियोग मे पल कल्पवत । प्रीति रीति म विषमता और भी प्रकार की देखी जा सकती हैं जिन्हें हम प्रेम-वैषम्य की नानाविधि अभिव्यक्तियो मे आग देखेंगे । दूसरी विषमता घनआनन्द ने विरह दशा की बताई है जिसे कहने म वह अपन आपको गूग के समान असमर्थ पाते हैं । इसी प्रकार विरह के विषम वाण उद्वेगो क विषम विशिखो (वाणो) उद्वेग की विषम अग्नि, विषाद क विरह विषम ज्वर कटाक्ष शरा की विषम चोट आदि की बात भी घनआनन्द ने जगह-जगह कही है । चान्दनी के आचरण की विपरीतता, वियोग दशा की विपरीतता और प्रेम पात्र के विपरीत आचरण की भी बात उन्होंने कही है । अपनी प्रेम सम्बन्धिनी विपरीतता मे ही कारण उन्होंने य बातें कही हैं जो अनायास अनुभूति प्रसून हाकर ही आई हैं । ये वैषम्य व्यजक शब्द

सायास रक्खे गये न होकर अनायास आय हुय ही माने जायेंगे, ये वियोग की नाना स्थितियों के निदर्शक मात्र हैं।

कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी इसी तरह घनआनन्द जी लिख गये हैं जिनमें उनके मन की प्रतीति और अधिक स्पष्ट रूप मे मुखर हुई है। ऐसे छन्दों म प्रेम-वैषम्य का भाव और भी स्पष्ट रूप से व्यक्त या कथित हुआ है। उदाहरण के लिए, एक जगह उन्होंने अपने प्रिय के प्रेम न करने या उदासीन रहने की बात को लेकर अनेकानेक उदाहरणों द्वारा यह भाव व्यक्त किया है कि सुजान का मुझसे प्रेम करना वसी ही मुश्किल या असम्भव बात ह जसी कि ससार की अन्यान्य बहुत सी असम्भव बातें हैं। उदाहरण के लिये—

> चन्द चकोर की चाह कर घनआनन्द स्वाति पपीहा कों धाव।
> त्यौं भ्रसरनि के ऐन बस रबि मीन पै दीन ह्व सागर आव।
> मोसों तुम्हें सुनौ जान कृपानिधि ! नेह निबाहिबो यों छवि पावै।
> ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर सु रंकहि ल निज अक बसावे॥

इसी तथ्य को एक अन्य छन्द म इन्होने बिना उदाहरण दिये भिन्न ढग से कहा है—

> तुम तौ निहकाम सकाम हमैं घनआनन्द काम सो काम परयौ।

यहा पर प्रेम वैषम्य की बात और स्पष्ट हो जाती है और उसका एक कारण का भी पता चलता है वह यह कि प्रिय निष्काम है प्रेमी सकाम। पीडा सकाम प्रेमी को ही हुआ करती है, निष्काम प्रेमी को कसी पीडा। यह एक ऊँची बात हुई, इससे तो प्रिय के प्रति सद्भाव और आदर का भाव जाग्रत होता है। इस बात मे उच्चता के साथ साथ गहराई भी है। निष्काम कर्म के समान ही महत्त्वपूर्ण निष्काम प्रेम भी प्रेम का उच्चतम आदर्श माना जायगा। प्रेम मे कामना पर प्राप्ति वक्ष या सुख लिप्सा वृत्ति आदि पर विजय पाना ही प्रेम के चरम सोपान पर पहुँचना माना जायगा। कबीर आदि के इन कथनों म—

> सिर सौंप सोई पिव नहिं तर पिया न जाइ। (कबीर)
>
> अथवा
>
> सीस उतार भुइँ धरै तो पठै घर माहिं। (कबीर)

तथा तुलसी के इस प्रसिद्ध दोहे मे—

> तुलसी चातक के मते स्वातिहु पिय न पानि।
> प्रेम तृषा बाढ़ति भली घटै घटगी कानि॥ (तुलसी)

यही तथ्य अथवा प्रेमादर्श प्रकारान्तर से कथित हुआ है। यही कारण है कि सुजान खूब शिकायत, व्यंग, फटकार आदि करते सुनाते भी दोष कभी प्रिय के मत्थे नहीं मढती। दोष देने की बात जब आती है तब विधाता तो उसका तिलक अपने भाल पर लगाने क लिए सदा तयार रहते ही हैं। पर यह बात कि तुम निहकाम —हम 'सकाम' हैं घनआनन्द ने काफी बाद मे कही होगी प्रेम साधना की काफी

ऊँची भूमिका पर पहुँच कर जब सुजान के दोष उन्हे दोष न दिखाई पडते रहे होगे। वस्तुत सच्चा प्रेमी अपने प्रिय के दोष देखता ही नहीं, सुजान भी चाहे सकाम ही रही हो वह निश्चय ही 'निहकाम न रही होगी, पर घनआनन्द ने सदा उसके गुण ही देखे हैं। फिर भी उसके प्रेम मे विषमता तो थी ही इस बात को कैसे अस्वीकार किया जा सकता है उन्होने स्वत शतशत बार यह बात पुकार पुकार कर कही है। एक साधारण सा उदाहरण लेकर उन्होने इस तथ्य को सामने रखा है कि दुनिया की रीति है कि वह कम देकर बराबर या अधिक ही लिया करती है पर हम अभागिन हैं जो अधिक देकर कुछ नही पाती। नफा तो दूर उल्टे नुकसान सहती हैं—

फल होत दियें समक अधिकै बरन कबि कोबिद यों सबही।
बिपरीति लखी यह रीति अहो परतीति गही मति मोह बही।
उतकों घनआनन्द गौंहै यही इनकी जु सुजान परी सु सही।
दुख द सुख पावत हौ तुम तौ चित के अरपें हम चित लही॥

इस पर भी किसी को यदि घनआनन्द के प्रेम की विषमता मे सन्देह हो, तो उसे घनआनन्द का यह छन्द पढना चाहिये—

मोहिं दुख दोष दोख तोहि तोखै पोख सुख
चिंता मोहिं चूरि तोहि रग्ख निधरक है।
स्वाय क जगाव मोहिं बिहसाव स्वावै तोहि,
तेरें भूल भर मोहिं साल ज्यों करक है।
तोहि चैन चाँदनी मैं सरस हरष सुधा
मोहि जार बारै ह्वै बिषाद को अरक है।
कहूँ घनआनन्द घमेंडि उघरत कहूँ,
नेह की बिषमता सुजान अतरक है।

इन उदाहरणो से कोई अगर चाहे तो यह कह सकता है कि घनआनन्द को प्रेम विषमता सिद्धान्त रूप मे स्वीकार थी विशेष रूप से उपयुक्त अंतिम उदाहरण के आधार पर और इसमे भी सन्देह नही कि प्रेम विषमता का घनआनन्द से बडा पोषक हिन्दी ससार म दूसरा नही। हिन्दी सूफी काव्यो म भी वह प्रेम-वैषम्य कहा जो घनआनन्द के विरह काव्य का प्राण है। 'प्रेम की पीर' और 'प्रेम विषमता' य मानो घनआनन्द के विरह काव्य की मूल्यवान भाव सपदायें हैं इन्हे निकाल देने पर फिर उसम कुछ रह नही जाता। भाषा शैली मे भी जो भगिमा और वक्रता है वह भी इन्ही मूलभूत भाव तत्वो के कारण और ये दोनो चीजें 'प्रेम की पीर' और 'प्रेम विषमता' क्रमश सूफी और फारसी काल की देन बताई गई हैं। प्रेम मे वियोग पक्ष की प्रमुखता और विषम प्रेम का विधान भारतीय प्रेम काव्य धारा मे भी हो चला था जिसका बहुत अच्छा विवेचन आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने घनआनन्द ग्रथावली के वाड मुख म किया है। घनआनन्द की प्रेम-व्यजना के मूल मे यह भाव इस भारतीय परम्परा के परिणामस्वरूप भी निहित हो सकता है। इन प्रभावो का अनुशीलन अध्ययन का एक

स्वतन्त्र ही विषय है, पर जहाँ तक हम प्रतीत होता है ये भाव घनआनन्द के निजी जीवन और प्रेम की विषमताओं के कारण उनके काव्य में स्वयमेव आ गये हैं। इन भावों के ग्रहण के लिए वे परम्पराओं के फेर में नहीं पड़े। ये परम्परायें चाहे सूफी शायरी की रही हों या फारसी काव्यों की अथवा भारतीय प्रेम काव्यों की। परम्परा का अनुसरण करने वाला में घनआनन्द थे ही नहीं। वे अपनी लीक पर चलने वाले कवि थे—क्या शैली की दृष्टि से, क्या भावव्यंजना की दृष्टि से। अतएव हम तो यही कहने के पक्ष में हैं कि उनके काव्य में प्राप्य प्रेम-वैषम्य उनके निजी जीवन में जो प्रेम की स्थिति थी, उनकी जो निजी विरह दशा थी उसी का निदर्शक है।

घनआनन्द जी ने प्रेम-वैषम्य का भाव मुख्य रूप से तीन रूपों में व्यक्त किया है —

(१) प्रिय के असंगत और अनुचित आचरण पर टीका टिप्पणी और शिकायत।

(२) प्रिय के निष्ठुर आचरण के कारण अपनी दशा का वर्णन तथा प्रिय के निष्ठुर एवं विषम आचरण पर भी घनआनन्द की रीझ।

(३) प्रिय से प्रतिकूल या विषम आचरण न करने की नाना रूपों में आग्रह (प्रार्थना उपदेश, व्यंग फटकार)।

**प्रिय के निष्ठुर आचरण पर प्रकाश प्रेम विषमता की स्थिति पर प्रकाश**

**प्रिय के असंगत और अनुचित आचरण पर टीका टिप्पणी और शिकायत—** इस संदर्भ में घनआनन्द ने कहा है कि हे सुजान! मेरे हृदय में आशा जगाकर तुमने उदासीनता अख्तियार कर ली है जिसके कारण जग-हँसाई हो रही है सनेही होकर भी मुझे प्यासा मारे डालती हो और पहिचान भुला बैठी हो। पहले तो प्यार भरी बातों से सींचा अब वियोग की अग्नि में जला रही हो तुमसे ऐसे विश्वास घात की आशा न थी। यदि ऐसा ही करना था तो हम कर के हमारा हृदय क्यों लूटा था और प्रेम करके हमारे मन में प्रेम की लहर क्या दौड़ा दी थी अपनी अमृतसिक्त वचनावली से हमें लौकिक सुख की ऊंची सीढ़ियों पर क्या चढ़ा दिया था। ये पंक्तियाँ अत्यन्त गहरी और तीव्र भावनाओं से ओत प्रोत हैं—

(क) पहिलें घनआनन्द सींचि सुजान कहीं बतियाँ अति प्यार-पगी।
 अब लाय बियोग की लाय बलाय बढ़ाय बिसास-दगानि दगी॥

(ख) क्यौं हँसि हेरि हर्यौ हियरा अरु क्यौं हित कै चित चाह बढ़ाई।
 काहे कों बोलि सुधा सने बैननि चैननि मैन निसैन चढ़ाई॥

देखते ही मेरे हृदय को अपने गुन से बाँध लिया और खेल खेल में उसे उलझा (फँसा) भी दिया अब उसकी याद भी नहीं करती इसी कारण तो दुःख की ज्वालाओं में उद्विग्न होकर जलना मरना पड़ रहा है। प्रेम करके भला अब रुखाई क्यों धारण करते हो तुमसे ही प्रेम करके तो हमने इस अग्निमय जीवन का वरण किया है अब तुम हो कि स्नेह की वर्षा भी नहीं करते। इस तीव्र संवेदना को कवि ने बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है—

नेह लाय रुखे अब कसे हूजियत हाय,
चदही के चाय ज्व चकोर चिनगी चुनै ।

जिस मुह पर हँसी शोभा देती थी उस पर अब हमारे अनिष्ट का भाव क्योकर शोभा देता है प्रेम रस स पोषण करक हमारे जीव को क्या सुखा रहे हो और गुणों म बाँधकर अब दोषो की फाँसी क्यो दे रहे हो। पहले तो मुझे बडे प्रेम स अपनाया था अब हमारी य भीषण दुदशा क्यो की जा रही है—

पहलें अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि तेह क तोरिय जू ।
निरधार अधार दै धार मँझार दई गहि बाँह न बोरियै जू ।
घनआनन्द आपने चातिक को गुन बाधि ल मोह न छोरिय जू ।
रस प्याय क ज्याय बढ़ाय क आस बिसास मैं यो विष घोरियै जू ।।

मीत सुजान प्रीति म अनीति क्यो करती हो ? हे प्रिय ! पहले तो तुमन मुझे खेल-खेल म आकाश म चढा लिया अब अपनी ओर खीचते भी नही, ऐसे निष्ठुर हो गये हो, पतग की तरह मेरी य क्या हालत बना रक्खी है—

आसहि अकास-मधि अवधि गुन बढ़ाय,
चोपनि चढाय दीनौं कीनो खेल सौ यहै ।
निपट कठोर एहा ऐंचत न आप ओर,
लाडिले सुजान सो दुहेली दसा को कहै ।

सुजान ! तुम्हे ऐसा आचरण कैसे शोभा देता है, जिस हितू या प्रिय मान लिया जाता है उस क्योंकर भुलाया जाता है ? तुम्हारा हृदय बडा कठोर है जो तुमने सारी माया-ममता भुला दी है, पहले रिझते हुय अब दूर जाकर के हम मार (या तडपा) रहे हो। जिसे हमन जीवन की जडी (सञ्जीवनी) माना था वही मुझे चूर किये डाल रही है। अपना रूप दिखला कर चाव और उमग बढाकर हसी-हँसी म जिसका हृदय तुम हरण करके ले गई थी अब उसे तुम मौन के साथ बैठ कर चिन्ताओ की चिता मे जला रही हो—

रूप दरसाय चोप चाय सरसाय हाय
ल्याए करि हँस। मैं बिसास हरि तारिय ।
मौजे घनआनन्द बिराजौ निधरक तुम
याहि चिन्ता चिता-बीच ऐसैं अब दाहियै ।

सुजान सुनती भी तो नहीं परवाह भी तो नही करती, कोई कह भी तो कितना—

घनआनन्द जान न कान करैं इनके हित की कित कोऊ कहै ।
उत ऊतर-पायें लगी मिहदी सुकहा लगि धीरज हाथ रहै ।।

---

देखिये पृ० ३५ ४१

प्रिय अजीब निर्मोही है जो अपनी करनी पर स्वप्न म भी विचार नही करता। पहले तो खूब प्रेम का अभिनय किया, अब यह हालत है कि सारा सुख अपने साथ लेकर और वियोग का दु ख हमे सौंप कर चल दिये—

तब ह्व सहाय हाय कसें धौं सुहाई ऐसी
सब सुख सग लै बिछोह दुख द चले।
सींचे रस रग अग-अगनि अनग सौंपि,
अन्तर मे बिषम विषाद बेलि बै चले।

हे प्रिय ! तुम सुध भुला देते हो जान कर भी अनजान बनते हो, कपट से खुल कर भेंटते हो (घोर कपट करते हो) त्याग और मान (रोष) किये बैठे हो उचित कम की जगह अनुचित कम करने मे विश्वास रखते हो और इसी म सुख मानते हो। तुम्हारे व्यवहारो क बारे म क्या कहा जाय मौन रहना ही बेहतर है, विश्वास दिला कर के विश्वासघात करते हो मिठाई का टुकडा दिखा करके विष खिला देते हो—

कहिय सु कहा रहिय गहि मौन अरी सजनी उन जसी करी।
परतीति द कीनी अनीति महा, विष दीनो दिखाय मिठास डरी॥

सब अनुराग तुम्हारा कहाँ चला गया जिसे आँखो मे भर कर हमसे प्रेम जतलाया करते थे और प्रेमपूण निहारे किया करते थ ? तुम्हारी उस प्रकृति ने आलस्य क्यो धारण कर लिया है ? तब तो खूब भुलावे दिया करते थे अगर अन्दर ही अन्दर सम्बन्ध विच्छेद की बातें पका करती थी तो विश्वासघाती प्रेम क्या करन गये थे— कितको ढरिगो वह ढार अहो जिहि मोतन आँखिन ढोरत हो आदि। तुम्हारा चित्त मनका का अभिनय करने म बडा कुशल है हम जब तुम्हारे प्रेम के अभिनय को ही प्रम समझ कर तुम्हारे प्रम पाश म फँस गये हैं तब तुम साँस भी नही लेता (खामोश रहती हो) स्वछन्द मेघो की तरह सवत्र घुमडती रहती हो और जहाँ चाहती हो अपन प्रेम की वर्षा करती हा, तुम्हारी चाल कुछ समझ मे नही आती। प्रेम तो हमसे किया परन्तु अब हमारे ही हृदय म वियोग का बीज बोकर कहाँ जा रहे हो हे वनमाला (वनरक्षक) वह बिरवा तो वट वृक्ष की तरह बढकर फैल गया है अब तुम अनुरक्त होकर कहा जा रहे हो ? जरा उस बिरवे के तले खुद भी तो आ कर बठो—

हम सा हित क कित कौं नित ही चित बीच बियोगहि बोय चले।
सु अखबट बीज लौं फलि परयौ बन माली कहाँ धौं समोय चले।
घनआनन्द छाय बितान तन्यौ हम ताप के आतप खोय चले।
कबहूँ तिहि मूल तौ बठिय आय सुजान ज्यौ खाय क तोय चले॥

भाव की यह अभिव्यक्ति अतिशय सुन्दर है उसकी नवीनता का तो कहना ही क्या ? निवध वृत्ति क घनआनन्द की दृष्टि ही प्रयोगो के ऐस नये नये पथो पर जा सकती थी जितनी ही तीव्र प्रम वषम्य की चेतना है उतनी ही सबल अभिव्यक्ति भी

है। आगे घनआनन्द कहते हैं हे सुजान ! आनन्द के घन होकर भी तुम प्रेम के खेत को क्यो सूखने दे रहे हो। (आनन्द की जीवनदायिनी, हरी भरी करने वाली वर्षा क्यो नही कर रहे।) हे छली सुजान ! तुम्हारा कुछ ठीक नही—तुम कहते कुछ हो करते कुछ और पकडते कुछ हो दिखाते कुछ और—तुम्हारा सारा छल खुल गया है। तुम कैसी सुजान हो जो किसी का दुख दर्द देख कर भी तुम्हें चिन्ता नही व्याप्त होती हमे तो कृत्रिम प्यार के बोल-बोल कर अपना झूठा प्यार जतलाया और अब हमारे बावलेपन की तुम्हे लेश मात्र भी फिक्र नही। सारी पुरानी पहिचान और प्रीति को मिटा कर तुम निष्ठुर हो गये हो—

मीठे-मीठे बोल बोलि ठगी पहिले तौ तव,
अब जिय जारत कहौ धौं कौन याय है।
सुनी है के नाहीं यह प्रकट कहावति जू,
काहू कलपाय है सु कैसे कलपाय है।

स्वय ही तो मेरी ओर प्रेम के चाव मे तिरछी आखो से देख कर हसे थे, अब वे सब बातें तुम भूल गये प्रेम मे ऐसा तो नही करना चाहिये। तब तो हँस कर, मुस्करा कर सुन्दर रूप दिखाकर और आखो मे प्यार झलका कर खूब प्रेम झलकाया था, अब हृदय मे बसा कर के मार रहे हो—

तब तौ दुरि दूरहि तें मुसक्याय बचाय कै और की दीठि हँसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नननि में सुरसे।
अब तो उर माँहि बसाय कै मारत एजू बिसासी कहा धौं बसे।
कछु नेह निबाह न जानत हे तौ सनेह की धार में काहे धंसे॥

घनआनन्द ने अपने प्रिय के प्रेम करने की रीति पर जगह जगह बहुत बार प्रकाश डाला है—प्रिय जहाँ रहता है सदा सुख से रहता है और प्रेम के नये फन्दे डालता रहता है, दुख प्रेमियो के पास भेज देता है और खुद आनन्द-मग्न रहता है—

(क) आनि लई न कछू सुधि हाय, गए करि बेरी वियोगहि सौंपनि।
जाय सुभाय रहे तिन ही जित चाह मई है नइ चित चौंपनि॥

(ख) सुखनि समाज साज सजे तित सेव सदा
जति नित नए हित फदनि गमत हौ।
दुख-तम-पुजनि पठाय द चकोरनि पै
मधाधर जान प्यारे ! भलें ही लसत हौ।

पता नहा प्रेम की यही रीति चली आई है या मेरा उस निर्मोही से नया प्रेम है इसलिए ऐसा लग रहा है, प्रेम का निबाह तो दूर प्रेम करके दुख और दाह नित्य देता है। हृदय मे बस कर भी प्रवासी के समान दूर रहता है न मेरी सुनता है न अपनी कहता है अपनी अजानता (अज्ञान) छिपाने के लिए आनन्द का घन छाया भर

छाय रहता है पर आनन्द की वर्षा नहीं करता पता नहीं हमारा तिरस्कार कर उसे क्या मिलता है ? हम अपने विरह बाणों से वध कर भी पीड़ा का अनुभव नहीं करता, रुदन और संगीत उसके लिए एक समान है (वही भाव है— तुम तो निष्काम सकाम हमैं')। भगवान ! किसी का ऐसे अनाड़ी से साट (प्रेम) न हो। जल या जीवन रूप होकर आनन्द प्रिय किसी की तृष्णा का अनुभव क्या नहीं करता खुद अपने में मस्त और फूला हुआ है तथा अपने प्रेमी को पहचानता नहीं जैसे कोई हरी भरी फुलवारी हो। परन्तु सुगंधि से शून्य स्वयं तो परम रसिक है पर हम जिससे स्वप्न में भी रस की आशा नहीं कर सकते ऐसे निष्ठुर प्रिय को किस विधाता ने रचा है जो अपने ही प्रेमी की हत्या करने से भी नहीं डरता—

> घनआनन्द जीवन रूप सुजान ह्वै पायत क्यों हग प्यास नहीं।
> अरु फलि रहे कुसुमाकर से सु कहूं पहिचान की बास नहीं।
> रसिकाई भरे अपने मन प सपने रस आसहू पास नहीं।
> पचि कौने विरंचि रचे हौ कहौ जु हितूनि हतौ हिय त्रास नहीं॥

चितवन से ही पहिचान कर ली और चाह सी जतला कर हमारा मन मोह लिया भोली भोली बातें सुना करके हमारे भोले प्राणों को भुला लिया (मोहित कर लिया, भुलावे में डाल दिया) और हंसी के सरस किन्तु प्राणघातक पाश में छलपूर्वक बांध लिया, अन्त में यह कलई खुली कि वह प्रेम न था धोखा था, एक वज्र हृदय का निष्ठुर विश्वासघात था देखो न हितैषी होकर भी कैसी जघन्य हत्या उसने की है। अब एक छन्द देखिये जिसमें प्रिय के विषम प्रेमाचरण पर पूरा प्रकाश डाला गया है—

> उघरि बुरे हो नीके मिलत उर हो, गाढ़े,
> रगनि घुरे हो घनआनन्द सुजान जू।
> उर बठे दाहत हौ चाहनि मैं चाहत हौ,
> घात हो निबाहत हौ प्रानन के प्रान जू।
> हंसि हंसि खावत हो छाहौं नहीं छावत हौ,
> जोगि जागि ख्वावत हौ, आप हू तें आन जू।
> सूझत हौ बूझत हौ चाखत हौ भाखत हौ
> रहत हौ रावत हौ मौन हौ बखान जू।

आगे प्रिय अर्थात् सुजान की निष्ठुरता के और भी प्रखर विवरण देता हुआ कवि कहता है कि वह तो महा रूखी है जो मेरे समान प्रेमी को जरा भी नहीं पहिचानती, पूर्णिमा की रात्रि में तो सर्पिणी के समान हमें दाह देती है चन्द्रमा ढर चला है पर चन्द्रमुखी नहीं ढरती (कृपा करती)। अपने हृदय के कागज पर मन अपना प्रेम लिखा है उसके गुणों का स्मरण किया है अपनी प्रेम कथा के अतिरिक्त उसमें और कुछ भी नहीं लिखा गया है ऐसे प्रेम के पत्र को भी उसने फाड़कर

किया पढा तक नही, निष्ठुरता का इससे अधिक ज्वलंत और क्या प्रमाण हो सकता है। वृत्ति की निष्ठुरता की इससे ऊँची और क्या सीमा हो सकती है—

पूरन प्रेम को मत्र महापन, जा मधि सोधि सुधारिहै लेख्यौ।
ताहीं के चारु चरित्र विचित्रनि यौं पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ।
ऐसो हियो हित-पत्र पवित्र जु आन कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
सो घनआनँद जान अजान लौं टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ॥

प्रिय की निष्ठुरता पर कवि जब खीझ उठता है तब उसे वधिक या वधिक से भी अधिक क्रूर कहता है और युक्ति-युक्त रूप से उसकी निष्ठुरता सिद्ध भी करता है। तुमने तो अपनाकर हमें इस तरह तज दिया है कि कुछ समझ में नही आता, बहेलिया अपने क्रूर कर्म के लिए प्रसिद्ध है परन्तु उसमें भी कुछ दया भाव होता है, वह मारने के बाद अपने शिकार की खबर लेता है तुम तो वह भी नहीं करते—

बधिकौ सुधि लेत सुन्यौ हितकै गति रावरी क्यौंहू न बूझि परै।

तुम तो और भी अधिक दुर्दशा करते हो—

अधिक बधिक तें सुजान ! रीति रावरी है,
कपट चुगौ दै फिरि निपट करौ बुरौ।
गुननि पकरि लै, निपाँख करि छोरि देहु,
मरै न जियै सो महा विषम दया छुरौ।

प्रिय के आचरण की निष्ठुरता पर बार-बार प्रकाश डालता हुआ विरही यह भी जानने की चेष्टा करता है कि प्रिय में निष्ठुरता क्यों है ? प्रिय के मन में क्या है ? पर प्रिय के मन की थाह उसे नहीं मिलती—वह प्रिय के मन की उस ग्रंथि को नहीं समझ पाता जिसके कारण प्रिय उसकी सुध भूला हुआ है। प्रिय के जी की बात जानी नही जाती। उसकी गौं या घात का पता नहीं चलता। निर्मोही के हाथो मे पड़े हुए इन प्राणो की उसकी मनोवृत्ति का पता ही नहीं चलता—

प्रान परे निरमोही के पानि सुजानि परै बाकी नाहीं न हाँ है।

उस निडर (निधरक) की गूढ गति विधि समझ में नहीं आती—

वे तौ जान प्यारे निधरक हैं अनन्दघन
तिनकी धौं गूढ गति मूढ मति को लहै।

वह हँस करके प्राण हर लेता है, पता नहीं चलता कि कृपावंत है अथवा निष्ठुर। बहेलिये से भी बुरे उसके व्यवहार का राज नहीं मिल पाता—चारा देकर पकड़ना पकड़ कर पंख कर देना और बेपंख करके छोड़ देना—इसमें उसका क्या स्वार्थ सधता है समझ में नहीं आता—

हौं न जानौं कौन धौं है या मैं सिद्धि स्वारथ की
लखी क्यौं परति प्यारे अन्तर कथा दुरी।

बहेलिया होता है वह भी मारने के बाद अपने शिकार की फिक्र करता है

पर 'गति रावरी क्योंहू न बूझि परें'। हे प्रिय ! तुम्हारी गूढ़ गति क्योंरी नहीं जाती। जैसे भी रहते-करते हो उसका बखान नहीं किया जा सकता। बात यह है कि—

घनआनन्द जान ! रहौ उनए से, नए बरसौ नित नेह झला।
नट नायक लायक मायक हौ गति पाय परै न तिहारी लला॥

प्रिय वह जादू है जो प्रेमी की सारी चेतना पी जाता है इस कारण भी प्रेमी को प्रिय का प्रेम या आचरण अनबूझ पहेली बना रहता है—

चेटक हौ सब भाँतिन जू घनआनन्द पीवत चातिक-चेत हौ।
रावरी रीति न बूझि पर सनक मिलि क्यों बहुत दुख-देत हौ॥

इसके साथ-साथ प्रिय की बातें न समझ में आने का यह कारण तो है ही जो उसकी कथनी और करनी के भेद के रूप में देखा गया है और बीसो बार कहा गया है—

कहौ कछु और करौ कछु और, गाहौ कछु और, लखावत और।
मिलौ सब रंग कहूँ नहिं संग तिहारी तरंग लखें मति बौर॥
गढ़ौ बतियानि मढ़ौ घतियानि डढ़ौ छतियानि निदान की ठौर।
महाछल छाय लुके हौ बनाय, कित घनआनन्द ! घातक दौर॥

इस प्रकार प्रिय के निष्ठुर आचरण पर प्रकाश डालते हुए घनआनन्द जो कुछ कहते हैं उसका केन्द्रीय भाव यही है कि प्रिय (अर्थात् सुजान) का प्रेम पक्का नहीं है न उसमें सततता है न एकनिष्ठता। इसके अभाव में उसका प्रेम छल और धोखा ही है। इस प्रकरण में सर्वप्रथम बात कवि यह बतलाता है कि प्रिय प्रेम और आशा जगा कर उदासीन हो जाता है जिसके कारण हमें संसार का उपहास और लोक की निन्दा सुननी और सहनी पड़ती है चारों तरफ यही चर्चा सुनाई देती है। प्रेम सम्बन्धी प्रिय के इस आचरण के—अर्थात् प्रेम जाग्रत करके उदासीन हो जाने की बात को घनआनन्द ने तरह-तरह से व्यक्त और स्पष्ट किया है। वह कहता है कि प्रिय हमें (१) सींच करके जलाता है (२) अमृत पिला करके विष देता है (३) गुणों में बाँध कर के छोड़ देता है (४) अधमरा या घायल करके छोड़ देता है (५) ऊँचे से जाकर वहाँ से पटक देता है या वहीं छोड़ देता है (६) स्नेह देकर रखाई अख्तियार करता है (७) स्नेह सम्बन्ध जोड़ कर तेहपूर्वक तोड़ देता है (८) मझधार में सहारा देकर डुबो देता है (९) हृदय हर कर चिताओं की चिता में जलाता है (१०) हँसी-हँसी में धोखा देता है (११) रूप दिखा कर दूर हट जाता है (१२) मिठाई का टुकड़ा दिखा कर अलग हट जाता है। ये सारे कथन प्रिय के प्रेम सम्बन्धी एक ही आचरण अथवा तथ्य का पोषण करते हैं और वह यह कि प्रिय पहले प्रेमी के हृदय में विश्वास पैदा करता है फिर *विश्वासघात करता* है। इसी कारण कभी-कभी कवि यह भी कहता पाया जाता है कि हे भगवान ! अमोही से किसी का प्रेम न लगे।[1]

---

१ दैया कहूँ काहू को पटन काम कूर सों
अमोही सों काहू का मोह न लागे।

इसी सदभ म कवि न सुजान के स्वभाव और व्यवहार के बारे म भी कुछ बातें कही हैं जो इस प्रकार हैं—(१) प्रिय के रुख म कडापन है (२) हृदय मे कठोरता है (३) वह सुनता नही और न जवाब ही देता है, न मेरी सुनता है न अपनी कहता है (४) सारा सुख खुद समट बैठा है और दुख इधर (प्रेमी की तरफ) भेज देता है (५) अपनी करनी पर विचार नही करता (६) सुध भुला देता है, सारी पुरानी पहिचान को पीठ दे देता है (७) जान कर (सुजान होकर भी) अजान बनता है (८) कपट करता है प्रेम का प्रपच करता है (९) रोष करता है (१०) अनुचित कम मे विश्वास करता है (११) प्रेम का नाटक करता है कृत्रिम प्रेम जतलाता है (१२) किसी का दुख नहीं समझता—आनन्दघन (जीवन निधान) होकर भी किसी की प्यास नही समझता (१३) पीडा पहुँचा कर भी पीडित नही होता (१४) अनेक से प्रेम करता है या जतलाता है जब जिससे चाहता है (अर्थात् उसके प्रेम मे निष्ठा और अनन्यता नही) (१५) प्रेम करके दूर हट जाता है (१६) किसी का रोना गाना उसके लिए एक बराबर है (ऐसा हृदयहीन है या स्थिर मति ?) (१७) अपने में ही मस्त और फूला रहता है (१८) एसा निधडक है कि अपने प्रेमी की हत्या करने से भी नही डरता (१९) निष्करुण है।

घनआनन्द उसकी निष्ठुरता के नाना दृष्टात देता है तथा क्रूर कर्मा प्राणियों (बधिकादि) स उसकी तुलना करता है और उसे अधिक क्रूर सिद्ध करता है। इतना सब कह जान क बाद यही कह कर घनआनन्द को सन्तोष करना पडता है कि प्रिय के स्वभाव और आचरण क विषय में मौन रहना ही अच्छा।

सब कुछ कह जान क बाद इस सम्बन्ध मे कवि एक बात और कहता है वह यह कि प्रिय जसा है वैसा तो है ही पर कैसा है यह न तो समझ मे आता है और न कहते बनता है। उसकी गूढ गति, प्रीति रीति, निष्ठुरता, घात, मनोवृत्ति, हाँ-ना, स्वार्थ-परमार्थ, मनाग्रथि, हृदय की छिपी क्या रहना-करना (गतिविधि या आचरण) रीझ-बूझ, कथनी-करनी कवि स कहते नहीं बनती। हम आप इतना तो कह ही सकते हैं कि सुजान के प्रेमाचरण म कहीं न कही गभीर प्रवचना और छल विद्यमान है, दिल की सफाई तो है ही नहीं।

**प्रिय की निष्ठुरता या विषम आचरण के कारण अपनी दशा का वणन**

जो प्रेमी इतना निष्करुण है और जिसके प्रति कवि की इतनी अनुरक्ति है उसकी निष्ठुरता या प्रेम विषमता कवि को किन दुर्दशा म ला पटकती है अब यह बात देखन का है। प्रिय क निष्ठुर आचरण स आहत हो घनआनन्द कहत हैं कि हमारा जीव विरह गमार के झकोरो म अधीर होकर गुन्डी (पतग) की तरह उडता रहता है। हे प्रिय ! तुम इतन कठोर हो कि हृदय स सारी मोह ममता मिटा बठे हो और दूर जाकर भी हम पीडा पहुँचा रहे हो जिसका परिणाम यह है कि उद्वेग की अग्नि म जलना पड रहा है चिन्ता स चूर होना पड रहा है, रोम रोम पीडा म

नेह बच सठ नीर मय हठ क बठ प्रेम को नेह निबाहैं।
क्यों घनआनन्द मीजे सुजाननि यों अमिले मिलिबो फिरि चाहैं॥

तूने तो सुन कर भी अनसुनी करने का निश्चय कर रखा है तेरे न देखने के कारण ही मेरी दशा देखने योग्य हो गई है—धैर्य धरते नहीं बनता, बुद्धि ऐसी अशक्त हो गई है हमारी मानसिक दीनता और हीनता का तो कहना ही क्या है—और हमारा पाला किसी ऐसे वैसे से नहीं एक महा निरदई से पड़ा है जिसने अपने कानों में मेरी चीख-पुकारों के लिए रुई डाल रखी है। यह अनोखा नेह प्रिय से लगा है जिसके लगने पर भी तन और मन रूखा पड़ रहा है (स्नेह अर्थात् तेल से तो चिकनाई आनी चाहिये पर यहाँ उल्टी ही रीति चल रही है) यहाँ उसका स्मरण किया जा रहा है विशाल गुण समूहों का कीर्तन हो रहा है वहाँ विस्मृति ही छाई हुई है। मेरे प्राण तो तुम्हारे आचरण के विषय में सोच-सोच कर ही सूखे जा रहे हैं कि हृदय में बस कर भी तुम अपना हृदय नहीं खोलते आँखों में नींद की सपदा के समान विद्यमान रहते हैं (असंभव है जिसकी प्राप्ति) स्वप्न में भी तुम्हें पा सकना मुश्किल है यदि तुम्हें ऐसा आचरण ही अच्छा लगता है तो तुम जानो हमारा वश तो निहोरे और निवेदन तक ही है। विधाता के या कर्मों के आधीन होकर मैं परदेश में पड़ा हुआ हूँ पर प्रेम में यह तो कोई नई बात नहीं जो कुछ मुझ पर बीत रही है वह मुझे सहना पड़ रहा है उसे मैं किससे कहूँ क्योंकि तुम्हारे बिना मुझे संसार शून्यमय प्रतीत हो रहा है सुजान कहीं मिलती नहीं इधर चेतना भी जवाब दे रही है। अपने हृदय की जलन कैसे बतलाऊ? रात दिन चैन का लेश भी नसीब नहीं होता उस निरदई के कारण जीव को जिलाये रखना मुश्किल हो रहा है 'बेदना की बड़वारि' दुराई भी तो नहीं जा सकती काश! ये रसना हमारे दुःख का बखान कर सकती!

इस प्रकार के भावों के अतिरिक्त भी कुछ अन्य भाव आत्मभर्त्सना नियन्त्रण के सन्दर्भ में आये हैं, जैसे पश्चाताप विवशता निष्ठा और अनन्यता, आत्मप्रबोधन आत्मतोष, आत्मविश्वास आदि। एक जगह घनआनन्द ने बहुत ही सुन्दर ढंग से कहा है—हे प्रिय! यदि प्रारम्भ में तुम्हारे प्यार का इतना सुख न मिलता तो हम आज तुम्हारे बिछुड़न का पछतावा न होता। विरही चित्त का यह कितना सुन्दर और सूक्ष्म मनोभाव है। जरा देखिये यह कितने प्रीतिसिक्त ढंग से कहा गया है—

जीवन-मूरति जान सुनौ गति जौ जिय रावरौ प्यार न पावतौ।
सगम रग अनग उमगनि भूमि न आनन्द अबुद छावतौ॥
साहिलो जोबन त्यों अधरासव चोपनि लोभी मन नहिं प्यावतौ।
तौ उर दाहक प्राननि गाहक क्यों भए को परेखो न आवतौ॥

प्रिय की निष्ठुरता जब खल जाती है तब घनआनन्द की गति मति शिथिल पड़ जाती है, उन्हें अपने लिये कम, प्रिय के लिये (उनके आचरण के लिये) अधिक परेखा हो जाता है कि क्यों इतनी होकर भी उसने कैसा व्यवहार किया है? दूसरे

के कर्मों पर खुद लज्जित होने मे जो आत्मीयता और अनन्य प्रीति है उसका सौन्दय यहाँ देखने की चीज है, अपने कर्मो पर पछताना कोई बडी बात नहीं औरो के कम और आचरण पर हमारा पश्चाताप हमार हृदय के प्रसार का सूचक है।

**विवशता**

अनेक स्थला पर विरही कवि ने आत्मदशा निवेदन के अन्तगत अपनी विवशता भी दिखाई है। कभी तो वे कहते हैं—हे प्रिय ! यदि न सुनने की ही तुमने ठान रक्खी है तो हमारा क्या वश है हम तो निवेदन मात्र कर सकते हैं, अपने आचरण की तुम जानो—

मिलन दुहेला सपनेहू इहि भाति भयो,
भली लगै भावते तो तुम जानौ अति है।

कभी वे कहते हैं—हाय दई ! तुम कैसी हो जो हमारी पीडा से अपरिचित हो। यदि तुम्ह मेरे प्रेम के साथ खिलवाड करना ही अच्छा लगता है और मुझसे मुह करना ही अच्छा लगता है तो मेरा क्या वश है मैं सब सहूँगा (यहाँ प्रेम की अनन्यता का भी भाव झलक रहा है)—

ऐसी सुहाई तौ मेरो कहा बस देखिहौं पीठि दुरायहो जो मुख।

हे विधाता ! मैं विरहाग्नि म जलता हूँ अब किसे पुकारूँ, तू भी उसी निदयी सुजान की ही ओर हो गया है—

जरौं बिरहागिनि मैं करौं हौं पुकार कासौं,
दई गयौ तू हूँ निरदई ओर ढरि रे।

तुम यदि मरी भूल कर भी याद न करो तो मेरा क्या वश है मेरे प्राण तो तुमसे मिलने की ही बाट जोह रह है—

औसर आस लगे रहैं प्रान कहा बस जौ सुधि भूलि न लेत हौ।

विवशता की एक दो पक्तिया और देखिये—

(क) एक बिसास की टेक गहाय कहा बस जौ उर और ही ठानी।
एहो सुजान सनेही कहाय दई कित बारत हौ विन पानी॥
(ख) ये मदरात तऊ घनआनन्द जीवनि मूरति जान जहाँ है।
हाय दई न बसाय बिसासो सौं ठौर रहेन की ठौर कहा है॥

निष्ठा या अनन्यता—प्रेम-वपम्य न घनआनन्द के प्रेम को शिथिल करने के बजाय और भी रग दे दिया है। उसम वियोग अमिलन और प्रिय की निष्ठुरता ने 'पानी परे सन' के समान और भी दृढता निष्ठता और प्रीति की अनन्यता पैदा कर दी है—मेरी दृष्टि को दूसरा ठौर नहीं, ये प्राण आपका ही, विश्वास की टेक पकड कर अटके हुये हैं अन्यथा कब के निकल जाते। हे विश्वासघाती ! तेरे दूर भागने पर भी मैं तेरा ही ध्यान करता हूँ। तुझे देखने के लिए ही मैंने दुनियाँ की ओर स आँख बन्द कर ली है, तुझे छोड किसी और से मुझ कोई लगाव नहा, लोकापवाद की विप

मरी कथाओ को अमृत समझ कर पी जाता हूँ फिर भी तू नही देखती। फिर भी तुझे इतनी निष्ठुरता कैसे शोभा देती है ! जीवन प्रान सुजान को देखना ही मेरी एक-मात्र ेक है, दूसरा कुछ मैं जानता नही। तुम्हें मरे अनिगिन्त और नोग भी अच्छे लग सकते हैं, पर मुझे ता तुम्हारे सिवा कोई अच्छा नहा लगता।

आत्म प्रबोध—कभी कवि अपने आपका ही समझाता है कि जो हमारी आहो को सुनकर भी नही कृपालु होता उससे मिलने के लिये जी को क्या जलाया जाय—

नाहि पुकार कर सुनि आहिन को कित ह्वै केहि दोष लगयें।
सगम पै बिछुरे मरियै इनि भाँतिन क्यों जियराहि जरयै॥

प्रिय की और अपनी दशा की तुलना—अनेक बार कवि ने प्रेम विपमता का वर्णन करते हुए अपनी दशा के निरूपण म अपने प्रिय की और अपनी दशा की तुलना की है। ऐसा करने से प्रेम म प्रिय और प्रमी की स्थिति का वैषम्य और भी साफ पता चलने लगता है। यह भी एक अच्छा और स्वाभाविक ढग है। आत्मदशा अभिव्यक्ति की यह पद्धति भी गौर करन की है जिसके पीछे स्वाभाविकता और मनो वैज्ञानिकता निहित है। दूसरे शब्दा म यह भी कहा जा सकता है कि घनआनद न अपनी और सुजान दोनो की मन स्थितियो और वृत्तियो परिस्थितियो और कर्मों आदि की तुलना द्वारा प्रेम वषम्य को अधिकाधिक उभार कर और प्रखर रूप म हमारे सामने रक्खा है। इस पद्धति पर चल कर आत्मदशा कथन करते हुए कवि ने कहा है कि आपका हृदय तो चन का सदन है किन्तु यहाँ तो रात दिन मदन हमारा दहन कर रहा है। मेरे प्राण तुझ चाहते हैं तेरे लिये तरसत हैं मरत हैं, पर तू जरा भी नही उत्साह प्रकट करता। वियोग तेरे लिये तो आमोद का एक साधन है खेल है, पर मेरे हृदय मे तो वह शल्य सा चुभो देता है। हम तो एक तुम्ही से प्रेम करते हैं, तुम अनेक से प्यार जताते हो हम तुम्हारे नाम क सहारे अपने जीव को जिलाये हुये हैं, तुम विश्वासघात का विष दे रहे हो—

हम एक निहारिय टेक धर तुम छैल ! अनेकन सों सरसौ।
हम नाम अधार जिवावत ज्यौ तुम द बिसवास विष बरसौ॥

तुम्हे और भी प्रेमी अच्छे लगते हैं पर मुझे तो तुम्ही अच्छे लगते हो। मैं तुम्हारा मुँह देखने को मरा जाता हूँ तुम्हे हमारी फिक्र भी नही मेरे प्राण तुम्हारे लिये कूक मचा रहे हैं तुम उन्हे मारे डाल रहे हो। तुम सदा से सुखी रह आये हो हमेशा सुख से तुम्हारा समय बीता है हम प्रारम्भ (मूर से ही दुख मे समय काटते आये हैं। मेरा चित्त सुजान को चाहता है पर वह अपने ही ताक म (घात म) रहती है मैं एक रास्ता पकडता हूँ वह दूसरा मरा घर उजाड रहा है वह दूसरो का घर बसा रही है। हे आनद राशि सुजान ! तू तो सुचित्त (निश्चिन्त) है पर हमे तो विरहाग्नि औटा औटा कर मार डाल रही है। तू देखता नही और मरी दशा देखने योग्य (अति दारुण) हो रही है हमारे हृदय म तेरे लिए इतना मोह उमड रहा है और तू अमोही और निर्मम बनी हुई है मैं पुकारता जा रहा हू तू सुन कर भी अनसुना

कर रही है। इस आचरण वपरीत्य का या प्रेमी प्रिय की स्थिति और मनोवृत्ति वैपम्य का सबसे जीवत और समग्र चित्र यह है—

सुखनि समाज साज सजे तित सेवें सदा
जित नित नए हित फंदनि गसत हौ।
दुख तम-पुजनि पठाय दै चकोरनि प,
सुधाधर जान प्यारे ! भलें ही लसत हौ।
जीव सोच सूख गति सुमिरें अनन्दघन,
कितहूँ उघरि कहू घुरि के रसत हौ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावत बसत हौ ॥

प्रिय के निष्ठुर आचरण पर भी प्रेमी की रीझ—सुजान की प्रीति रीति मे, आचरण मे, व्यवहार म इतनी विपमता है इन सबके कारण कवि की इतनी दुदशा हो चुकी है फिर भी घनआनन्द हैं जो उसी के प्रति अनुरक्त हैं। निष्ठुरता उनके प्रेम पन्थ का रोडा नही बन पाती, कवि का प्रेम इतना पक्का है इतना दृढव्रत है प्रिय चाहे न चाहे यह उसके सोचने की चीज है पर घनआनन्द न तो अपना पथ निश्चित कर रक्खा है। रीझे हुए घनआनन्द कहते है कि उसके न बोलन पर तो मैं साक्षात् वाणी (सरस्वती) को ही निछावर कर दूँ और यदि वह बोल द तब तो वे जाने क्या निछावर कर देंगे—

अनबोलनि प बलि कीजिय बानी सु बोलनि की कहियै धौं कहा।

उनकी प्रेयमी उनकी रीझ नही समझा करती थी फिर भी उनका मन उसी पर रीझा रहता था जसा कि व स्वय कहत हैं—'रीझ न बूझौं तऊ मन रीझत'। प्रिय की रुखाई भी उसे भली लगती है और अमोही होकर भी वह उन्हें मुग्ध किय रहता है—

हाय बिसासो सनेह सों रूखे रुखाई सों है चिक्कने अति सोहौ।
× × ×
मोह की बात तिहारी असूझ प, मो हिय कों तो अमोहियो मोहौ।

प्रिय मे कौन-कौन से दोप नही हैं ? अन्त करण उसका साफ नहीं बोलने म प्रेम और उत्साह नही महा निर्मोही है वह छल से भरा है कटुता से ओत प्रोत और आचरण से कपटी, फिर भी वह प्राणो मे धँसता है, आँखो मे पैठता है हृदय को ठगता है रोम रोम को अमृत मे पाग देता है और निपट भला लगता है—

अतर गठीले मुख ढीले ढीले घन बोलो,
सुन्दर सुजान तऊ प्रानंनि खरे खगौ।
साँच की सी मूरति है आँखिन में पठौ आय,
महा निरमोही मोह सों मढ़े हियौ ठगौ।

आनन्द के घन उघरे प छल छाय लेत
कटुताई भरे रोम रोमहि अमी पगो।
चाह-मतवारी मति भई है हमारी देखो,
कपट करेहूँ प्यारे निपट भले लगो।

ऐसा कठोर प्रिय भी क्यो अच्छा लगता है ? क्योकि कवि प्रेमोमग का कवि है उसकी बुद्धि चाह मतवारी है, प्रेम ही उसका मजहब है वह प्रेम करता है प्रेमी करता है या नही इसकी परवाह वह नही करता।

प्रियतमा सुजान की निष्ठुरता ने घनआनन्द को किस स्थिति मे पहुँचा दिया था इस बात को कवि ने बडे विस्तार से अकित किया है। प्रिय की निष्ठुरता कवि क जीव को अधीर कर देती है, आग मे जलाती है, चिंता से चूर करती है, रोम रोम मे पीडा भर देती है, रुलाती है तडपाती है, शरीर को भस्म बना कर उडा देने की वृत्ति जाग्रत करती है। उसके प्राण कलमलाते है, चाय-बावरे होते हैं, उमडत हैं उफनते हैं सहमते हैं। वह अपनी दशा कहे भी न तो क्या करे, अदर ही अदर प्राण घुटते हैं यदि वह उस कहता नही। वह कामात्त होता है बुद्धि उसकी बावली हो जाती है सब तरफ से विरोध और निन्दा के वाक्य सुनने पड़ते हैं, निलज्जता और हल्केपन का अनुभव होता है उद्वेगो की आँच मे अत करण जलता है, हृदय विदीण होता है, मृत्यु भी दूर से ही निरादर करके चली जाती है जिससे दैहिक और मान सिक यातनायें कम नही होती बल्कि और बढती हैं। सुजान की उदासीनता या निष्ठुरता की बर्छियाँ उसे ही अपने हृदय पर झेलनी पडती हैं ऋतुयें भयावनी लगती हैं सब कुछ उजडा-सा लगता है दृष्टि को कुछ सूझता ही नही। उद्वेग की तरगा म पडा हुआ विरही घनआनन्द विकल हाता है स्मृति की आँच मे तपता है, मिलन की आशा मे दग्ध होना है। जीते जी अग्नि दाह की मर्मातक यातना घनआनन्द-सी निष्ठा के बिना झेली भी तो नही जा सकता। घनआनन्द का प्रेम निष्फल है कठ प्रेम है पानी बिलोने के समान है फिर भी वह रीझा रहता है। निमम प्रिय से प्रेम करके उसकी दशा देखने याग्य हो गई है—अधीरता, बौद्धिक अशक्तता, मानसिक दीनता हीनता की दशा को वह पहुच गया है। प्रेमी तो इस दशा को प्राप्त हो रहा है और प्रिय है कि कान म रुई डाले हुए है। कोमल चित्त वाला द्रवणशील प्रेमी प्रिय के अवगुणा के लिए पछताता है। यह उसके रीझ की प्रेम-वषम्य मे भी उसके अनुराग की चरम सीमा है। कवि प्रिय क निरतर स्मरण गुण-कीतन, निहोरे और आत्मनिवेदन म नाना प्रकार मे तल्लीन है उसकी विवशता और आधीनता, जीवन मे व्याप्त रिक्तता, अतर्दाह अन चन वेदना वृद्धि निष्प्राण दशा कही नही जा सकती। विरही कवि जस पीडा का अक्षय आगार हो गया है। कभी वह पश्चाताप करता पाया जाता है कभी तरह-तरह से अपनी बेबसी जाहिर करता है कभी अपनी निष्ठा और अनन्य प्रीति का इजहार करता है, कभी वह अपने को ही समझाता है

और धैर्य बँधाता है और कभी प्रिय से कहता है कि दो आसू तुम भी बहा लो, तुम्हारा ऐसा प्रेमी जनम जनम मे भी तुम्हे नसीब न होगा, यहाँ कवि का प्रेम-गर्व बडे मनोहर रूप म व्यक्त हुआ है— **मेरो दुख देखि रोवौ फिरि कौन रोय है।'** घनआनन्द ने कई बार प्रिय की अन्तर्वाह्य स्थिति से अपनी स्थिति की तुलना करते हुए अपनी दयनीय स्थिति का, प्रेम की और उसके परिणामो की विषमता का स्वरूप प्रत्यक्ष किया है। जो हो, जसा भी हो, प्रिय घनआनन्द के प्राणो की प्राण है सौ बात की एक बात यह कि व उसी पर सौ जान से निसार हैं—वह उसके दोषा को भूला हुआ है और उस पर रीझा हुआ है, दोष भी प्रेमी को प्रिय के अलकारो से प्रतीत होत हैं—**'मो हिय को तो अमोहियौ मोहौ और 'कपट करेहू प्यारे निपट भले लगौ'** आदि कह कर इस तथ्य की उन्हाने स्पष्ट घोषणा कर दी है। प्रिय की निष्ठुरता और प्रेम विषमता से उत्पन्न आत्मदशा निदशन सम्बन्धी इन चित्रो की भी ममस्पर्शिता असाधारण है।

**प्रिय से प्रतिकूल या विषम आचरण न करने का आग्रह**

प्रेम वैषम्य के चित्रण म तीसरे प्रकार की भाव राशि वह है जिसम अपनी प्रिया सुजान से कवि ने यह आग्रह किया है कि वह अपनी निष्ठुरता छोड द, अन्याय न करे, निर्मोही न बने आदि आदि। यह आग्रह नाना रूपा मे किया गया है, कभी सीधे स्पष्ट कथन द्वारा, कभी प्रश्न के रूप मे, कभी प्राथना के रूप म कभी समझा-बुझा कर या उपदेश के रूप म, कभी आत्मीयता के साथ और कभी व्यग के रूप म तथा खीझ और झल्लाहट की स्थिति म धिक्कार और फटकार के रूप मे भी। बात यह है कि यदि प्रिय को अनुचित आचरण से रोका न जाय तो वह भी ठीक नही। प्रेमी सदा से प्रिय को ठीक राह पर लगाता आया है, कम से कम इस दिशा मे उद्योग तो करता ही रहा है। यह उद्योग प्यार-पुचकार, समझाने-बुझाने से लेकर फटकारने तक सभी रूपो म हुआ करता है। जो प्रेम देता है अथवा सवस्व निछावर कर देता है उसे फटकारन का भी पूरा अधिकार है। घनआनन्द ने अपने इस अधिकार को बडी ईमानदारी से कमाया है और इसीलिए उसका उपयोग भी किया है। प्रिय का निष्ठुर आचरण प्रेम माग पर चलकर भी उसका असगत व्यवहार ऐसा ही रहा है जो कडे से कडे शब्दा मे निषेध और फटकार के योग्य था।

**स्पष्ट निषेध**—इस सदभ म घनआनन्द कहते हैं—प्यारे सुजान ! अन्याय मत करो और मोहित कर चुकने के अनन्तर अमोही मत बनो। अपने प्रेमी को जिला कर मारो मत, उसका अनिष्ट मत करो। जिसे प्रेम से अपनाया उसे अलग मत करो उसे रोष से मत हटाओ जिसे मँझधार म सहारा दिया उसे फिर मत डुबोओ जिसे अपने गुणा से बाँधा उसे छोड मत दो जिसके हृदय म जीवन की आशा जगा दी है (अपने प्रेम का अमृत पिलाकर) उसे विष मत दीजिये—ऐसा आचरण ठीक नही, यह घोर विश्वासघात है। मेरे जीव को आदर प्रदान कर उससे मान मत करिये।

आँखें मत फेरिये और प्राणों को वेधने वाला गौन मत धारण करिये, रस-स्वरूप होकर दुःख मत प्रदान कीजिये।

प्रश्न रूप में निषेध—अनेक बार इसी आशय के भाव प्रणय रूप में व्यक्त किये गये हैं जिनमें बड़ी आत्मीयता छिपी हुई है। हे *आनन्दघन जीवन मूल सुजान* ! तुम मुझे प्यासा रख कर क्या मारे डाल रही हो ? हे मीत सुजान ! हँस करके हृदय हर लिया और प्रेम करके हमारे हृदय में प्रेम जगाया तथा अमृत सान वचन बान कर हमें चैन की सीढ़ी पर चढ़ा दिया यहाँ तक तो ठीक है पर यह तो बताओ कि यह अनीति की पाटी (निष्ठुरतापूर्ण आचरण का पाठ) तुम्हें किसने पढ़ाया है ? इन प्रश्नों में निष्ठुर व्यवहार न करने का ही मंतव्य निहित है। अन्य प्रश्न भी इसी आशय को व्यक्त करते हैं। हे आनन्दघन ! पपीहे की पुकार सुनकर भी तुम आलस्य करते हो भला ऐसा क्यों करते हो ? यह प्रश्न देखिये कितना स्नेहसिक्त है—

घनआनन्द मीत सुनो अरु अन्तर दूर तें देहु न देहु हहा।
तुम्हें पाय अजू हम खोयो सब हमैं खोय कहो तुम पायो कहा ॥

इसी प्रकार के आत्मीयता भरे प्रश्न और भी हैं—

(क) रावरी रीझि न बूझि परै तनक मिलि क्यों बहुत दुख दुत हौ।
(ख) हौं घनआनन्द छाय रहे कित यौं असम्हारहिं नाहिं सम्हारत।
(ग) प्राननि प्रान हौ प्यारे सुजान हौ बोलो इते पर पीरक हौ क्यों।
चेटक-चाव दुरौ उघरौ, पुनि हाथ लगे रहो न्यारे गहौ क्यों।
मोहन रूप सरूप पयोद सों सींचहु जौ दुख दाह दहौ क्यों।
नावँ धरे जग मैं घनआनन्द नावँ सम्हारौ तौ नावँ सहौ क्यों ॥

इस प्रकार इन प्रश्नों द्वारा भी प्रकारान्तर से प्रिय को अनुकम्पापूर्ण होने को कहा गया है।

प्रार्थना—प्रिय की नाना प्रकार के निहोरों और प्रार्थनाओं द्वारा भी कठोर आचरण से विरत हो अनुकूल बनाने की चेष्टा की गई है। कवि कहता है—हे प्रिये सुजान ! ऐसा क्या है कि हम तुम्हें चाहते हैं और तुम हम जरा भी नहीं चाहती ? प्रार्थना के साथ दैन्य भाव रहता ही है—

(क) प्रानन के प्रान एहो सुन्दर सुजान सुनौ
कान धरि बात नेकु मेरी ओर चाहिये।
(ख) बरस सुरस प्यास भाँवरे भरत रहौं
फेरियै निरास मोंहि क्यों धौं यौं द्वार त।
(ग) दिनन को फेरि मोंहि तुम मन फेरि डारयौ
एहो घनआनन्द ! न जानौं कसैं बीति है।
(घ) अंतर में बासी पै प्रबासी को सो अंतर है
मेरी न सुनत दैया आपनी यौं ना कहो।

× × × ×

मूरति मया की हा हा सूरति दिखैये नेकु
हमैं खोय या बिधि हो कौन धौं लहा लहौ ।

(ङ) घनआनद मीत सुजान सुनौ तब गौं गहि क्यों अब यौं अरसौ ।
तकि नेकु दई त्यौ दया ठगि ह्वै सुकहू किन दूर हू तें दरसौ ॥

(च) यह रावरीय रस रीति अजू अपढार ढरौ इत यासौं कहौं ।
सुनि ऊतर देत न लौडव कहौं कि तुम्हारे सवादहि कासो कहौं ॥

व्यग—अनेक बार कवि न व्यग्यात्मक उक्तियो द्वारा प्रिय को अनुकूल बनाने की चेष्टा की है। प्रिय तो अपनी निष्ठुरता छोडने वाला नही, पर प्रेमी अपने प्रयासो से क्यो विरत रहे ? कवि कहता है कि खुद मजे करते हो और प्रेमी को चिताओ की चिता मे जलाते हो—ठीक है, बहुत अच्छा करते हो नव प्रेमियो के शिरमौर हो न ! तुम्हारे गुणो की कहाँ तक सराहना की जाय ! एक जगह उन्होने कहा है—हे सुजान है ! तुमने लेना ही जाना है देना नही , दु ख कभी तुमने देखा नही स्वप्न मे भी नही, इसी से सब सोच सकोच छोड कर सुखी घूमती रहती हो, सयोग वियोग कैसा होता है तुम्ह क्या पता जरा अपने आपसे अपने सुखमय जीवन वृत्त से बाहर निकल कर तो देखो—

रूप ही रहे हो सदा मन और को दबो न जानत जान दुलारे ।
देख्यौ न है सपनेहू कहूँ दुख त्यागे सकोच औ सोच सुखारे ।
कसो सँजोग बियोग धौं आहि ! फिरौ घनआनन्द ह्वै मतवारे ।
मो गति बूझि परै तबही जब होहु घरीक हू आपु तें न्यारे ॥

इसी प्रकार व और भी कहते हैं—

काहू परै बहुतायत मैं अकिलैन की बेदनु जानौं कहा तुम आदि ।
[सु० हि० छद ४०४]

हे सुजान ! जो मेरे लिए बर्छी की चोट है वह तेरे लिए खेल है—ठीक ही है, जिस पर जा पड़ेगा उसको वह सहना पडेगा पर तू तो आराम से मौज मना ! तुझे इसमे क्या तकलीफ है ! प्रिय की स्वार्थपरता पर यह करारी चोट है। बढिया बात है सुजान ! तुम सुख से रहो क्योकि तुम सदा सुख से रह आये हो प्रेमी पपीहा के प्राण धन ही खूब जी भर अन्याय कर लो । सुख का समाज सजाकर के नित नये प्रेम के डोरे डालते रहते हो अपने चकोरो के पास दु ख का अधकार भेज कर परम शोभा पाते हो। मेरे लिए तो तुम्ही एक हो, पर तुम्ह तो मरे समान अनेक हैं, चन्द्रमा को भला चकोरो की क्या कमी—

(क) तौहि तौ खेल पै मो हिय सेल सो एरे अमोही निछोह महा दुख ।
जाहि जु लाग सुताहि सहैगो, परयौ लहि तू तौ सदा सुख ॥

(ख) जान सुखारे रहो रहि आए हौ होति रही है सदा चित चीती ।
हैं हम ही पुर की दुख हाई बिरचि निचारि क जाति रचीती ॥

प्रात पपीहन के घन ह्वौ मन के घनआनन्द कौन अनीतो।
जानौ कहा अनुमानौ हियें, हित की गति क्यौं, सुप सा नित बीतो॥

(ग) सुजनि समाज साज सजे नित सेव सदा,
जित नित नए हित फदनि गँसत हौ।
दुख तम पुजनि पठाय द चकोरनि प,
सुधाधर जान प्यारे ! भले ही ससत हौ।

(घ) मोहि तुम एक तुम्हें मो सम अनेक आहि
कहा कछू चदहि चकोरन की कमी है।

(ङ) घनआनन्द मीत सुजान सुनो चित द इतनी हित बात हहा।
जिय जाचक ह्वै जस देत बडो, जिन देय कछू किन लेउ सहा॥

उपदेश—कवि न कभी कभी मधुर और प्रिय लगन वाले उपदेशो का भी सहारा लिया है और प्रिय को अन्याय न करने के लिए समझाया-बुझाया है। उपदेश म माधुर्य तत्व की योजना इसी उद्देश्य स करना पडी है जिससे वह प्रिय के गले उतर जाय, इसके बिना वह उतरता नहीं। व कहते हैं—हे सुजान ! यदि प्रेम से बुलाओगी तो हमारा जीव हुलास के साथ दौडा हुआ तुम्हारे पास जायगा और यदि रोषपूर्वक उसे फटकारोगी तो बेचारा कुछ न कहेगा तुम्हारे ही प्यार स पला है इसलिए तुम्ही इसे कृपापूर्ण दृष्टि स देखो तो काम चलेगा, इसके लिए कोई दूसरा द्वार भी तो नही है—

हित कै हँकारो तो हुलासनि सहित धावै
अनखि बिडारो तो बिचारो न कछू कहै।
पाल्यौ प्यार को तिहारो तुम ही मोकों निहारो,
हा हा जनि टारो याहि द्वार दूसरो न है॥

मेरा मन सुजान के हाथ की बीन है जो उसी के राग से भर कर सदा बजता रहता है भावती के हाथो की मीड मरोर पाकर सौगुन रग स वह बज उठता है। हे प्यारी सुजान ! जिस तार को प्रेम के साथ बजाने के लिये तुम ऐंचती (खींचती) हो उसे तोडकर सुघराई (चतुरता कला प्रवीणता) को लज्जित मत करो—

जान प्रबीन के हाथ की बीन है मो चित राग भरयौ नित बाज।
सो सुर साँच कहूँ नहि छाँडत ज्यौं ही बजावै लियें मन काज।
भावती मीड मरोर दियें घनआनन्द सौगुने रग सों गाज।
प्यार सों तार सु ऐंचि क तोरत क्यौं सुघराइय लावत लाज॥

घनआनन्द कहते हैं—तुम्हारी निष्ठुरता की विष भरी कहानिया को मैं अमृत मान कर पी जाता हूँ जीवन निधान होकर तुम हमारी जान मत लो जिसे जो भजता है उसको उसे नहीं छोडना चाहिए भला अपने हितैषी को मार कर कोई प्रतिष्ठा पा सकता है—

जाहि जो भज सो ताहि तज घनआनद क्यों,
हति क हियनि, काहू कहूँ पाई पति रे ?

यह कहावत तुमन सुनी है या नही—

सुनी है क नाहीं यह प्रकट कहावति जू,
काहू कलपाय है सु कसें कलपाय है।

हे जीवनधार सुजान ! मेरी बात सुनो, प्रेमी की पुकारो पर आनाकानी करना घाव म नमक देन की तरह है नेह की निधि होकर यदि तुम्हीं रुखाई धारण करोग तो भला बताओ बेचारे इन प्राण-पपीहा का और कौन सहारा है—

जीवन-अधार जान सुनिय पुकार नकु,
आनाकानी दबो दया घाय क्सो लोन है।
नेह निधि प्यारे गुन भार ह्व न रूखे हूज,
ऐसी तुम करो तो बिचारन क कौन है।

फटकार—घनआनद विरह सतप्त और खिन्न होकर अपनी प्रिया को फटकारते भी पाये जाते हैं। कभी वे कहते हैं—अब तो मेरा धय भी समाप्त हो चला है। हे बरिन ! बता तूने मेरी यह दशा क्या बना रक्खी है जवाब दे ? तूने त्याग कर मरे प्रेम का अपमान किया है, मुझे ससार मे तृण से भी तुच्छ बना दिया है, सुदर होकर तू शोभा तो बहुत देती है पर निर्मोही प्रेम करके छोड देन की तुझे लेश-मात्र भी लज्जा नही ? हे विश्वासघाती ! सुनता नही ससार मे तेरे नेह की डौंडी बज रही है। दीन-हीन चातक को वियोग के विषैले बाण मारते तुझे दया नही आती , आनदघन होकर तूने चातक बेचारे की पुकार कसे अनसुनी कर दी।

ऐसे दिन दौन पै दया न आई दई तोहि
विष भोयो विषम बियोग-सर मारत।

मुझ सरीखे प्रेमी से ही कठोरता तुझे कैसे शोभा देती है ? यदि प्रेम का निर्वाह करना तुझे नही आता था तो स्नेह की धारा मे धँसे क्यो—

कछू नेह निबाह न जानते हो तौ सनेह की धार में कहा धँसे।

धिक्कार—कही-कही यह खीझ फटकार तो क्या धिक्कार का भी रूप ल लेती है और कवि कहता है कि तुम सरीखे स्वार्थी प्राणियो को किस विधाता ने रचा जो अपने हितपियो की हत्या करके भी निधडक घूमता फिरता है। इस खीझ, फटकार और धिक्कार का उग्रतम रूप इस छद म दिखाई देता है—

नाद को सवाद जानै बापुरो बधिक कहा,
रूप के बिधान का बखान कहा सूर सा।
सरस परस के बिलास जड जान कहा,
नीरस निगोडा दिन भर मखि ऊर सा।
चाह की चटक तें भयौ न हिये खोप जाके
प्रेम पीर-कथा कहै कहा भकभूर सा।

चाहे प्रान चातक सुजान घनआनन्द का
दया कहूँ काहू का पर न काम कूर सो।।

प्रेम-वषम्य के स्वरूप निदशन के कारण आत्मदशा निवेदन के साथ साथ घनआनन्द ने प्रिय को निष्ठुर न होने की सलाह दी है अप्रिय आचरण स विरत रहने का माग सुझाया है। यह पथ प्रदशन या अनकूल होने का आग्रह नाना रूपो म किया गया है जसा कि हम ऊपर दिखा आय है। प्रिय को अमोही होने, अन्याय करने, जिला कर मारने अपना बना कर दूर करने, रोप करने मँझधार स उबार कर डुबाने अनुरक्त का छोडने अमृत पिला कर विष देने विश्वासघात करने, मौन होने रूठने, आँखें फेरने, दुख देने आदि से रोका गया है इन कर्मों से विरत रहने को कहा गया है। प्रिय स यह भी पूछा गया है और बडी आत्मीयता के साथ पूछा गया है कि वह अपने प्रेमी को क्यो प्यासा ही मारे डाल रही है, क्या अनीति कर रही है सुनती क्या नही ? उसे ऐसा करने से क्या मिलता है ? थोडा-सा मिल कर बहुत-सा दुख देती है ? बेसम्हाल को सम्हालती क्यो नही वह आखिर उसी का तो है ? इतनी पीडा क्या पहुचाती है हाथ पकड कर अलग क्यो हट रहती है जीवनदायिनी मनमोहनी पयोद रूप होकर भी हृदय क्यो जलाती है और बदनामी क्यो सहती है ? ऐसे प्रश्नो का एक ही अथ है कि वह अपने इन विपरीत और विगले आचरणो को बदले। उससे प्राथना भी की गई है कि वह अपने प्रेमी की बात सुने निराश न करे, अपने द्वार से न हटाये मन न फेरे प्रिय की बातें सुने और अपनी भी कहे अपनी सूरत दिखा दे और अपने इतने बडे प्रेमी का खो न दे आलस्य न करे दया करके दूर से ही थोडा दशन दे दिया करे। कभी कभी स्नेहसिक्त वाणी म उपदेश देते हुए भी इसी आशय के भाव व्यक्त किये गये हैं कि सुजान अपने प्रेमी का स्नेह-सहित आमन्त्रित करे उसे आदर मान दे स्निग्ध दृष्टि से देखे रोप न करे, अपने दरवाजे से हटाये नही, अपनी ओर खीच कर तोड नही अपने प्रशस्त गुणो को कलंकित न करे लज्जाजनक कार्यों से अलग रहे अपने हितपी की हत्या का जघन्य कम न करे, उसे कलपाये नही, उसकी बातो पर आनाकानी न करे रक्षताने धारण करे प्रेमी को सहारा दे, उसके घाव पर नमक न छिडके आदि। अभी व्यग्य का आश्रय लेकर भी अपना सवस्व समर्पित करने वाले प्रेमी को कहना पडा है कि खुद मजे करना और प्रेमी को तडपाना कुछ अच्छी बात नही लेने के नाम पर आगे जाते हो, देने के नाम पर पीछे हट जाते हो, दुख से तुम्हें क्या लेना देना कभी दुख तो देखा नही फिर परीहा की वेदना उसे क्या मालूम अपनी ही खुशी म मस्त रहने वाले को किसी और की वेदना का क्या पता हो सकता है ? जरा स्वाथ की सकीण सीमा से ऊपर तो उठ ! भरी पीडा ता उसके लिए खेल है यह खेल उसने बहुत दिन खेला है। उसके प्रेम मे निष्ठा भी तो नही नित नये फद डालना ही उसका काम है, चकोरो को दुख के अधकार म झोक कर खुद मस्ती की तरगो म बहना हो तो उसे आता है

यदि उसे देन म सकोच है तो वह लेता क्यो नही आदि आदि एक से एक चुटीली बातें उसे कही गई हैं। खीज के बढन पर कवि को फटकार, धिक्कार और अनुचित शब्दो के प्रयोग तक का सहारा लेना पड गया है। अतव्यथा ही तो ठहरी, अनुरक्ति की प्रगाढता रोष और क्षोभ की गहरी उत्तेजना भी जगाती है। घनआनन्द उसे बैरिन, क्रूर, अपमानकारिणी, निलज्ज, विश्वासघातिनी, बधिक आदि कहकर फट कारते और धिक्कारते भी पाये जाते हैं। वे कहते हैं कि विधाता ने तुम-सी निष्ठुर सृष्टि ही क्यो रची ? भगवान न करे ऐसे जड, बधिक, क्रूर और मक्भूर मूढ उजडडो से किसी का काम पडे।

प्रेम-वैषम्य के इस प्रकार के अनूठे भाव-लोक का सृजन घनआनन्द के काव्य मे किया है।

**७ प्रेम की दृढता और निष्ठता**

सुजान क विरह न घनआनन्द को क्या-क्या यातनायें नही सहने को बाध्य किया था परन्तु उनके प्रेम मे कभी कमी नही आई थी बल्कि विरह की आँच मे तप कर उनके प्रेम न और भी मजिष्ठा राग पकड लिया था। अपने बहुत से छन्दो मे उन्होंने इस प्रेम निष्ठा का कथन किया है। प्रेम की यही एक बहुत बडी खसूसियत हुआ करती है, वह टूट नही सकता, झुक नहा सकता वियोग व्यथा के भभके पा-पा कर और भी गाढा रग पकडता है।

घनआनन्द कहते हैं कि दुख के धुएँ से घिरे हुए प्राण यदि घुट भी जायें तो भी सुजान से हमारा नाता नही टूटेगा और इन सासो म जो आशा बँधी हुई है वह मरने पर भी नही छूटेगी। प्रिय की उससे प्राप्त प्रेमामृत की मनोहरता ऐसी है जो जीवन के अन्तिम क्षण तक प्रेम का कम नही होने देगी इस प्रेम निष्ठा के सामने शारीरिक और मानसिक यातनाओ की क्या बिसात है। सुजान् के रूप को देख कर बावला बना हुआ जीव उमगो के मारे उतावला हो रहा है, वह उसी के वियोग मे जलता है और उसी के द्वार पर पडा रहता है, उसके लिए दूसरा द्वार है भी तो नही। कोई मुँह मोडे, कोई करोडों चुगलियाँ करे, कोई नाता तोड दे और कोई कितना भी शोर मचाये प्रेमोन्मत्त घनआनन्द को किसी की परवाह नही। निंदक कितनी ही निंदा करे और अपना सिर धुने, पर हमारे कवि की टेक टलने वाली नही। इसी एक टेक को पकड कर कवि ने अपना मन अन्य ठौरो से अलग हटा लिया है बस उसी की लगन लगी रहती है, उसके बिना उन्हे यह हरा भरा ससार सूना दिखता है। इस निष्ठा का, इस अनन्यता का, प्रीति की इस दृढता का जीता-जागता बिम्ब इस छन्द मे देखिये—

जब तें निहारे इन आँखिन सुजान प्यारे
तब तें गही है उर आन देखिबे की आन।
रस भीजे बननि सुभाय म रचे हैं तहीं
मधु मकरद सुधा नादो न सुनत कान।

प्रान प्यारी ज्यारी घनआनन्द गुननि कथा,
रसना रसीली निसिबासर करति गान।
अग-अग मेरे उनहीं के सग रग रगे,
मन सिंघासन पै बिराजै तिनही को ध्यान।

कवि बार-बार कहता है कि मेरी दृष्टि को कही दूसरी ठौर नही है, उसी सुजान के विश्वास पर हमारी मति टेक धारण करके टिकी हुई है। वह दूर भागती है तब भी ये उसी को भजते हैं—

(क) हा हा हो बिसासी दूरि भाजत तऊ भजौं।
(ख) दूरि भजौ कितनौऊ तजौ हियरा तें हटै नहिं हाय हितबौ।
× × ×
आँखि बिसासित आस गही न तज इतने पर बाट चितबौ।

उसकी आँखो ने सुजान को देख लेने के बाद से किसी और की तरफ देखना भी बन्द कर दिया है और समस्त विवेक को छोड कर उसी की टक पकड रखी है तथा न जाने कौन सी तृपा और पीडा से भरे हुये हैं कि सदा अश्रु का कोप खाली करते रहते हैं (जरूर ही सुजान का रूप रग, अग-अग का सौन्दय और ससग माधुय ऐसा रहा होगा जो मन को औरो की तरफ लगने न देता रहा होगा। इतना ही नही, औरा की आर से वृत्तियो का उच्चाटन करता रहा हागा, इस आशय के भाव कवि ने कई बार व्यक्त भी तो किये हैं— जान की पीठि लखैं घनआनन्द आनन आन तें होत उचाटी')। इसी टेक के कारण ही तो घनआनन्द प्रेम के पपीहे ये भी—

एहो घनआनन्द सुजान एक टेक ही सौं,
चातक बिचारे को है जीवन बिचारिबो।
यातें निस दिन रस बरस दरस और,
टक जक लाय लोभी करत निहारिबो।

अपने प्रेम की इसी दृढता और अनन्यता के आधार पर ही तो इतने आवेशो मेष के साथ घनआनन्द इतना बोल सके हैं हर प्रकार की भाषा म प्रिय से बहुत कुछ कह सके हैं—प्रेम से भी और रोप से भी दन्य के साथ भी तथा अधिकार के साथ भी। तुम्हीं तक मेरी दौड या गति है दूसरा कोई और नही है तुम्हारी ही आशा में ये प्राण तुम्हारी दुहाई दे रहे हैं तुम्हारे ही गुणो की माला फेर रहे हैं तुम्हारा ही प्रेम ये जोह रहे हैं और तुम्ह ही पुकार रहे हैं, इनका प्रेम का प्रण कच्चा नही है। इसी टेक को पकड कर विरही कवि क्या करने को तयार नही? वह सभी कुछ कर सकता है उसका निश्चित विश्वास है कि उसकी प्रम निष्ठा पत्थर को भी द्रवीभूत करन म समथ हो जायगी प्रेम की सचाई और दृढता की शक्ति देखनी हो तो अग्रोलिखित छन्द देखिये। प्रेमी वेदनाओ म नहीं घबराता कठोर यातनाओ के लिए प्रस्तुत है और असम्भव को सम्भव कर दिखाने के लिए कृत-सकल्प है प्रेम की इस अनन्य निष्ठा के कारण वह शक्ति-पुज प्रतीत हो रहा है—

आसा-गुन बाँधि क भरोसो सिल धर छाती
पूरे पन सिंधु मैं न बूडत सकायहौं।
दीह दुख-दय हिय जारि उर अतर,
निरतर भौं राम रोम त्रासनि तचायहौं।
लाख लाख भाँतिन की दुसह दसानि जानि,
साहस सम्हारि सिर आरे लौं चलायहौं।
ऐसें घनआनद गडी है टेक मन माँहि
एरे निरदई तोहि दया उपजायहौं।

कवि का यह विश्वास अयत्र भी इसी निष्ठा के साथ व्यक्त हुआ है। कवि का जीव या उसके प्राण अपनी टेक क ही कारण तो असह्य वेदना सह रहे हैं, वियोग की विशाल वाहिनी से व अकेने ही जूझने को तैयार हैं चाहे 'उह हेत-खेत-धूरि चूर-चूर ही क्या न हो जाना पडे। कवि की इन उक्तिया म कि 'सुनि निरमोही एक तोही सा लगाव मोही और तेरे देखिव कौं सबही त्यौं अनदेखी करी' मे भी कवि की अनयता याकनी मिलती है, प्रिय के निष्ठुर होने से क्या होता है, प्रिय कैसा आचरण करता है यह प्रिय के देखने की चीज है, प्रेमी को अपने प्रेम की रक्षा करनी चाहिये, अपन प्रेमाचरण को ऊँचे स ऊँचे धरातल पर ले जाना चाहिये, स्वग का यह साम्राज्य (प्रेम सुख) सहज ही नही मिला करता तमाम वेदनाआ की झझा के बीच भी विरहा अपन प्रेम के चिराग का गुल नही होने देता। अपनी निष्ठा को जिसे घनआनद न टेक' कहा है और कमी-कमी आन भी उसक निभाने की बात उन्होंने शतशत बार अनेकानक रूपो मे कही है। इस कथन के लिए इससे साफ और कौन-सी भाषा हो सकती है—

(क) एक आस एक बिसवास प्रान गहैं वास,
और पहचानि इन्हैं रही काहू सौंन है।
चातिक लौं चाहै घनआनद तिहारो ओर
आठौ जाम नाम ल बिसारि दीनो मौन है।
(ख) एहो घनआनद सुजान रावरे जू सुनौ
रावरी सौं और हियें मनसा न दूजिय।
(ग) मन की जनाऊँ ताके मोहन हो हौं हो काहू।

यह आशा यह विश्वास, प्राणो का यह हठ औरों के प्रति यह अयमनस्कता, यह निहारना और यह रट उसी एक तथ्य को सूचित करती है जो प्रस्तुत सन्दभ मे हमारा विवेच्य है—प्रेम की एकनिष्ठुरता। प्रिया सुजान के अतर की ग्रथियाँ जिह वह खालती नही, उसके अनखाय बोन या रोषपूण बचन उसकी निदयता आचरण की कटुता और कपटपूर्णता कवि क प्रेम का शिथिल या विचलित नहीं कर पाते। कवि के प्राणो म तो एक प्रकार का बावरापन है और बावरा अपने धुन का पक्का

हुआ करता है फिर उद्देश्य विशेष को लेकर जो यायना हुआ रहता है उसकी लक्ष्यनिष्ठा का तो कहना ही क्या—

इन प्रानंनि एक सदा गति रावरे बावरे लौं लगिय नित सौ।

कवि के मन म महदी की सी निष्ठा है जो तमाम यातनायें सह कर लाल हो जान म ही अपने अस्तित्व की साथकता समझती है। घनआनन्द अपनी साथकता उसी महदा के समान अनुरक्त हाकर अपनी प्रिया के परा म जा लगने म समझते हैं—यह प्रणति और विनति भी प्रणय के अनन्य भाव का ही द्योतक है। घनआनन्द का प्रम उनके अपने द्वारा निश्चित किय गय प्रेमदर्शों के ही अनुरूप चलन वाला है—वे प्रम म सयानय नहीं चाहते अह भाव नही चाहते, कपट को पसन्द नही करते, लोभ और प्राप्ति को महत्व नहीं देते और अस्थिरता या अनिश्चितता को बुरा समझत हैं एसे प्रेमियो को व स्वार्थी छली प्रम का ढिंढोरा पीटन वाला मुँह चुराने वाला कायर आदि कहा करत हैं। उनकी इस विचारधारा म भी प्रेम की एकनिष्ठता और अनन्यता का महत्व बड उभरे हुए रूप म लक्षित हो रहा है। जिस निष्ठुर प्रिय के आने की अवधि नही और आने की आशा भी नहा उसकी प्रतीक्षा म जो विरही तडपता है उसके प्रेमी की अनन्यता और निष्ठा का कोई क्या पा सकता है—

नहिं आवनि औधि, न रावरी आस, इते पर एक-सी बाट चहौं।

घनआनन्द हृत्पत्र पर जो प्रेम अंकित करत हैं उसम भी प्रियेतर बात नही होती कवि को किसी अन्य की कथा लिखने का अवकाश ही कहाँ हर राम और हर साँस म वही ता भरी हुई है। कवि का प्रेम निश्चय इतनी दृढता लिए हुए है कि सकट समूह भी उससे टकरा-टकरा कर लौट जाते हैं। प्रेम दृढता की यह विवृत्ति हम चार कदम और आग ले जाती है। विरही संकट से क्या डरगा सकटो को विरही से त्रास होता है—

घनआनन्द जान ! सुनौ चित द हित रीति वई तुम तौ तजि कै।
इत साहस सौं घन सक्ट कोटिक आए समाजन को सजि क।
मन के पन पूरन पूरि रह्यौ सु भज क्ति या बिधि सौं भजि कै।
यहं देखि सनेह बिवह दसा अति हीन ह्वै दीन गए लजि क॥

इस प्रकार विरह घनआनन्द की प्रेम भावना को कम करने के बजाय और भी दृढ़ता प्रदान करता है। उसकी आशा छूट नही सकती उसका नाता टूट नहीं सकता। कोई भी यातना उसके प्रेमावेग को दबा नही सकती। उसके लिए दूसरा ठौर नहीं दूसरा द्वार नही, ससार को वह व्यर्थ समझता है और

निन्दकों की परवाह नहीं करता, उसी को देखना चाहता है, उसी का गुण श्रवण करता है, उसी का गुण गान करता है और उसी का ध्यान करता है। सुजान की विरक्ति और निष्ठुरता भी उसे अपने निश्चय से विरत नहीं कर सकती। यही दृढ़ता और प्रेम की निष्ठा कवि में वह सामर्थ्य भर देती है जिससे वह प्रिय के लिए कुछ भी कर सकता है। वह प्रिय की घोरतम कठोरता को भी करुणा में परिणित करने की शक्ति और हिम्मत रखता है। वह प्रेम के मैदान की रज में मिल जाना चाहता है। कवि की दृढ़ता ने उसे प्रेमोन्मादी बना दिया है, उसमें बावले की सी लौ लग गई है। सुजान न भी मिले फिर भी वह प्रेम करना नहीं छोड़ सकता। कवि के प्रेम की दृढ़ता, अनन्यता और एकनिष्ठता का इससे अधिक ज्वलन्त रूप और क्या हो सकता है।

## ८ अभिलाषायें, लालसायें और उत्कण्ठायें

विरह में विरही घनआनन्द की न्यूनतम लालसा है कि प्रेयसी सुजान के दर्शन हो जायें। जिसके देखने के लिए सारी सृष्टि को उसने 'अनदेखी' कर दिया है उसके हृदय की, उसकी आँखों की यह लालसा नितांत स्वाभाविक है—

> तरसि तरसि प्रान जान मनि-दरस कौं,
> उमहि उमहि आनि आँखिनि बसत हैं।
>
> × × ×
>
> निसि दिन लालसा लपटे ही रहत लोभी
> मुरझि अनोखी उरझनि मैं गसत हैं।

यह लालसा कुछ कम नहीं तड़पाती प्राण उमड़-उमड़ कर आँखों में आ बसते हैं लालसा दिन रात लिपटी रहती है बेचैनी मूर्च्छा सब इसी के कारण से हैं। यह लालसा आँखों में प्रिय के आने की व्याकुलता जगा देती है ये नेत्र चकोर मिलन पूर्णिमा की प्रतीक्षा में रहते हैं हृदय में भावों की लहरें उमँड उमड़ कर अपनी हड़बड़ी और उतावली जाहिर करती हैं और प्राण ज्यों-ज्यों सूखते जाते हैं ज्यों-ज्यों रात बीतती जाती है—

> बरसन-लालसा-ललक छलकनि पूरि
> पलकनि लागैं लगि आवनि अरबरी।
>
> सुन्दर सुजान मुखचन्द को उदै बिलोकें
> लोचन चकोर सेवैं आरति-परबरी।
>
> अंग-अंग-अन्तर उमग रंग भरि भारी
> बाढ़ी चोप चहल की हिय मैं हरबरी।

बूडि बूडि तर औधि धाह घनआनन्द यों,
जीव सुवयो जाय ज्यौं ज्यौं भीजत सरबरी ।

सुजान के मुख दशन की लालसा से ही तो आंखो म झडी लगी हुई है। उह की एक 'कौंध (झलक) के लिए तो ये चातक प्राण तडपत-तरसत हैं और आँखें उघ कर बरसती हैं। इस 'दिखसाध' के मारे रात दिन कटना मुश्किल है, पीडाओ क भीड जुटी रहती है और विरह है जो हृदय से हटता नही तथा इन्ही लालसाओ । मारे स्वप्न मिलन म भी सयोग का सुख नही मिलने पाता—

लगिय रहै लालसा देखन की किहि भाँति भटू निस धौस कटै।
करि भीर भरो यह पीर महा बिरहा तन कौ हिय तें न हटै।
घनआनन्द जान सजोग समै, बिसम बुधि एकहि बेर बटै।
सपनो सो टट फिरि सौगुनो चेटक बाढ़त डाढत घोटि घटै॥

घनआनन्द कहते हैं कि इन लगने वाली लालची आंखो म दशन का सुख पा की साध भरी हुई है, ये जो अररा कर तुम्हारे सौन्दय पर गिर पडी हैं इनकी दश देखने योग्य है ये तुम्ही स मिलने क लिए प्रेम की मजबूत कडियो से जकडी हुई हैं तुम नही देखते इसो से तुम्हे देखने को अडी हुई हैं। इनकी व्यथा सयोग वियोग रे परे है, दोनो स्थितियो मे इनकी तडप बनी रहती है। प्रिय के दशन की ललक का लाख-लाख अभिलाषाओ स पूण होने का और सुजान की सुधाधारिणी मूर्त्ति को अपने अक मे बसा लेने की जो उत्कठा आखा म भरी हुई है उसका जीवत रूप इस प्रतीभा व्यजक छन्द म देखिये —

अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं बरुनीन रमाच ह्वै काँपति हैं।
घनआनन्द जान सुधाधर-मूरति चाहनि अक मैं चाँपति हैं।
दृग लाय रहीं पल पाँवडे क सु चकोर की चोयहि झाँपति हैं।
जब तें तुम आवनि औधि बदी तब तें अखियाँ मग मापति हैं॥

फिर भी उस लालसा का क्या कथन कर सकना सम्भव है जो कवि के नेत्र म भरी हुई है—

लालसा ललित मुख-सुषमा निहारिबे की,
बरनी पर न ज्यों भरी है नैन छाय क।

उसका कारण भी कवि ने दिया है कि इन नेनो को दूसरा और ठिकाना नहीं ये और जायें भी तो कहाँ—

दीठि कौं और कहूँ नहि ठौर, फिरी दग रावरे रूप की दोही ।

तथा

ठौर के सकोच दीठि हू कौं आत सोच बाढ़यौ,
बिना तुम्हें कहौ और कहाँ रहै जाय कै ।

दशन-लालसा के साथ-साथ दूसरी प्रबल लालसा है सामीप्य लाभ की, ससग सुख की, जिसे कवि ने तरह-तरह से व्यक्त किया है। इसम केवल रूप तृषा ही नही सभोग तृषा भी है, ऐद्रिक वासना भी है, पर वह किसी छिछले और अनीसित ढग से व्यक्त नही की गई है वह सच्चे और पीडित प्रेमी के अतर की पुकार है और बडे पवित्र ढग से यह आतर प्रीति लालसाओ और अभिलापाओ के रूप मे व्यक्त हुई है—

मूरति सिंगार की उजारी छवि आछी भाँति,
दीठि-लालसा के लोयननि स लै आँजिहौं ।
रति रसना सवाद-पाँवडे पुनीतकारा,
पाय चमि चूमि कै कपोलन सों माजिहौं ।
जान प्रान प्यारे अग-अग रुचि रगनि मैं
बोरि सब अगनि अनग दुख भाँजिहौं ।
कब घनआनद ढरौंही बानि देखें सुख
सुधा हेत मन घट-दरकनि राँजिहौं ।

शृगार की मूर्त्ति सुजान के अगों का ससग प्राप्त कर अपनी आगिक और मानसिक व्यथाओ को शात करने की लालसा यहाँ बहुत स्पष्ट है । इसी प्रकार रोम रोम में काम की जो अनिवारणीय तरग और पुकार है उसी के कारण प्राण आँखा म आ बसे हैं और सुजान की मूर्ति से नैकटय लाभ की कामना करते हैं—

आँखिन प्रान रहे करि आन सुजान ! सुमूरति माँगत नेरो ।
रोम ही रोम परी घनआनद काम को रोर न जाति निबेरी ॥

वे कहते हैं कि वह पुण्यमयी भाग्यभरी घड़ी कब आवेगी जब अपनी प्रिया सुजान से मैं भेंट कर सकूगा और अधरासव पान तथा आलिगन द्वारा मनमथ की मथन पीडा का निवारण कर सकूगा, इतना ही नही मनोज के दप का दलन कर सकूगा—

अमी-ऐन आनन को पान प्यासे नननि सों,
चैननि ही करि कै, वियोग-ताप मेटिहौं ।

गाढे भुजदडन के बीच उर मडन का
धारि घनआनन्द यों सुखनि समेटिहौं।

नि शक भाव स अक म भर कर भेंटने की यह अभिलाषा हृदय मे सतत भरी रहती है और इसी के कारण सोते हुए भी नीद खुल-खुल जाती है। इन उन्मादिनी आशाओ क कारण नीद हराम हो रही है। अनेक बार विरही कवि ने इन अभिलाषाओ और लालसाओ को पूरा करने की प्राथना भी प्रिय से की है—हे रूप उजियारे! विरह के महाधकार का कब रजत ज्योत्स्ना म परिणित करोगे और अपनी अमृत से भी अधिक सुखद हँसी और चितवन पिला कर हमारे जीव को जिलाओगे तथा उद्वेगरूपी यमराज को हनन करोगे वही हमारे भाग्योदय की घडी होगी। हमारे आँखो क सूने घर का कब बसाओगे चिता मूर्च्छित हृदय के उद्वेगो को नष्ट करके कब सुख से सिंचित करोगे और हमारे वियोग ताप को नष्ट करके कब हसाओगे? इसी प्रकार और भी कहा है—

रस रग भरी मदु बोलनि कों कब काननि पान करायहौ जू।
गति हँस प्रससित सों कब धौं ल अखियान में आयहौ जू॥

इन लालसाभिलाषो के साथ वे परम पुनीत प्रेम की अभिव्यक्तियाँ भी देखने योग्य हैं जिनम अभिलाषाओ के अत्यन्त पुनीत उदगार भरे हुए हैं। अनोखी पीडा से आँखें सतत भरी रहती हैं। कवि चाहता है कि कब प्रिय दशन हो और वह उस पर अपन प्राणो को निछावर कर दे, इस अभिलाषा से वह मरा जा रहा है। मेहदी के समान अपनी शाखा (वश परम्परा) से टूट कर, रगीली अभिलाषाओ से भर कर विपत्ति के पत्थरो के बीच पिस कर, प्रिय की कठोरता के जल मे घुलकर, चाहो से सतप्त होकर वेदना की शलाकाओ से बिध कर कवि प्यारी सुजान क परा म लग जाना चाहता है आन्तरिक अभिलाषा का इसस ममस्पर्शी चित्र दूसरा नही हो सकता—

साखा कुल टूट ह्व रगीली अभिलाष भरी,
परि द्व पखान बीच धसनि घनी सहै।
सोच सूखो इते मान आनि क सलिल बूड,
घुरि जाय चायनि ही हाय गति को कहै।
तऊ दुखहाई देखौ छिदति सलाकनि सों
प्रेम को परख दया कठिन महा अहै।
पिय-मानसा लौं वारी मिहँदी अनन्दघन
एरी जान प्यारी नेकु पायनि लग्यौ चहै।

यह चाह और भी तीव्र हो हो कर कवि क मन मे उठती रहता है। कभी वह मिलन की इच्छा से भर कर यहाँ तक अपनी अभिलाषा व्यक्त करता है कि—

घूमत सीस लग कब पायनि चायनि चित्त में चाह घनेरी।

एक जगह बडे सुदर ढग से कवि ने इन अभिलाषाओ का महत्व भी व्यक्त किया है। उसने कहा है कि उस प्रेयसी की अभिलाषा के ही कारण हम इस जीवन को सुरक्षित किये हुए हैं यदि उसकी अभिलाषा न होती तो इसे कब का धो बहा दिया होता।

इस तरह अपनी अभिलाषाओ और लालसाओ को व्यक्त करते हुए कवि ने बडे सुन्दर ढग से विरहावस्था मे अपनी मानसिक दशा का परिचय दिया है अपनी आतरिक इच्छाओ को वाणी देकर जहाँ एक ओर अपने प्रगाढ अनुराग को सवेदित दिया है वही नाना प्रकार की कामनाओ और अभिलाषाओ द्वारा अपनी बेचैनी का इजहार किया है। विरही की सबसे बडी लालसा सुजान के दर्शन की है और इसके लिए उसक प्राणा म अनोखी उलझन है विकलता है। अश्रु वर्षण तडप, तथा कालक्षेप की कठिनता सभी कुछ इसी कारण होता है। प्रिय-दर्शन की ललक लाख-लाख अभिलाषाओ के साथ कवि की आँखो म समाई हुई है साथ ही अनग दु ख भजन की भी अभिलाषा विरही क अतस में विद्यमान है रोम राम म तरगित काम की तरग भी क्षीण पडने वाली नही। ये लालसायें कवि को प्रिय के आगे दीन-हीन करके उसे अनुनय विनय करन को बाध्य कर देती हैं, उसे उसके चरणों पर अपना सिर रख देने की इच्छा जागत कर देती हैं। यही अनुरक्ति और विरह जन्य लालसाओं की और उन लालसाओ को विवश करने वाली शक्ति की पराकाष्ठा देखी जा सकती है। इन अभिलाषाओ के कारण ही विरही इतनी मर्मातक वेदनायें सहकर भी जीवित है।

## ६ सदेश सप्रेषण

विरह मे आत्म-व्यथा को व्यक्त कर अपना जी हल्का कर लेने का एक बहुत अच्छा साधन सदेश सप्रेषण भी हुआ करता है। यह सदेश चाहे जिस माध्यम मे सप्रषित किया जाय—पत्र द्वारा पक्षियो द्वारा, प्राकृतिक उपकरणों मेघ वायु आदि द्वारा दूतादि द्वारा अथवा किसी अन्य प्रकार। इस माध्यम द्वारा भी विरह की अति तीव्र व्यजना कवि लोग कर गये हैं। महाकवि कालिदास न तो एक विरह काव्य ही सदेश सप्रेषण पद्धति पर लिख डाला है और कवि सम्राट हरिऔध ने अपने प्रियप्रवास का एक सर्ग ही सदेश प्रेषण से सम्बद्ध किया है। जब मेघ द्वारा प्रिया को सदेश निवेदन का मार्ग प्रशस्त कर कालिदास ने इस प्रेमाभिव्यक्ति के मार्ग को प्रशस्त कर दिया। उनके परवर्ती कवियो ने मेघ, वायु भ्रमर, हस शुक आदि सदृश उपकरणों द्वारा सदेश निवेदन का मार्ग पकड लिया था। घनआनन्द ने भी इस माध्यम क सहार (थोडे ही छन्दों मे सही) अपना विरह निवेदन बडी मार्मिकता स किया है। सदेश प्रेषण वाले छन्द सख्या में थोडे न होने पर भी, विरह व्यजना की एक पद्धति विशेष

के निदशक तो हैं ही। कवि ने सन्देश भेजने के चार माध्यमो की बात अपने छदो मे लिखी है—१ पत्र २ दूत ३ पवन, और ४ मेघ। प्रथम दो साधन तो कवि के विरह की अतिशयता के कारण व्यथ से ही है, विरह की परम उद्विग्न स्थिति म इतना अश्रुपात होता है, इतना सताप और इतनी टीस पदा हो जाती है कि शरीर बेकाम हो जाता है, आंखो को कुछ सूझता नही और पत्र लिखना असभव हो जाता है—

> बिरहा रवि सों घट ब्योमि तच्यौ बिजुरी सी खिव इक लौ छतियाँ।
> हिय सागर तें दग-मेघ भरे उघरे बरस दिन औ रतियाँ।
> घनआनन्द जान अनोखी दसा, न लखौं दई कसें लिखौं पतियाँ।
> नित साधन दीठि सु बठक में टपकै बरुनी तिरि औ लतियाँ॥

घनआनन्द कहते हैं कि किसी समय स्थिर चित्त से यदि पत्र लिखने या लिखाने की ही चेष्टा की जाय तो भी विरह जागृत हो उठता है प्रिय की स्मृति विरह के तीव्रतम आवेगो को जागत कर देती है, शरीर झनझना उठता है और उगलियाँ पगु हो जाती हैं विरह का सताप पत्र लिखने नही देता। यदि सदेश ही किसी की जबानी भेजने की चेष्टा की जाय तो वह चेष्टा भी चेष्टा मात्र ही होकर रह जाती है क्योकि उन विरहाग्नि ज्वलित सदेशो को हृदय देश स रसना तक ले जाना ही असभव है, फिर उन्हें सुनना तो अकल्पनीय ही है। कवि भावना की भाषा मे बात की जाय तो इसे हम यों कह सकते हैं कि जिनके कान अवाँ के समान हो वे ही ऐसे सदेश सुन सकते हैं और जिनके मुँह भट्टियो के समान हो वे ही ऐसे सदेश कह सकते हैं। इस उक्ति को आचार्य प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने स्वानुभूति निरूपिणी कहकर रीतिबद्ध कवियो की ऊहात्मक उक्तियो से पृथक बतलाया है क्योकि यहाँ नाप जोख नहीं तथा विरही अपनी ज्वाला म स्वय ही भस्म होता है किसी और को भस्म नही करता। दूसरों के लिये इतना हो कहा गया है कि वे ऐसी बात सुन नही सकते—

> पाती मधि छाती छत लिखि न लिखाए जाहिं
> काती ल बिरह घाती कीने जसे हाल हैं।
> आँगुरी बहकि तहीं पाँगुरी किलकि होति
> ताती राती दसनि के जाल ज्वाल माल हैं।
> आन प्यारे जौन कहू दीजिय संदेसो तोऽब
> अवा सम कीजिय जु कान तिहि काल हैं।
> नेह भीजी बात रसना प उर आँच लागें
> जाग घनआनन्द ज्यौ पुजनि मसाल हैं।

इस प्रकार न पत्र लिखे जा सकते हैं और न विरह ज्वाला से जलते हुये सदेश ही भेज जा सकते हैं पीर से पके हुये मन और टकटकी बाँधे जड नेत्र अब सदेश नही भेज सकत—'अब थल सदेसन हू की थकी। सोते हुए भी जगने वाला,

रात मे बररा उठने वाला, आपाद मस्तक विरह से प्रकंपित विरही पत्र नहीं लिख सकता। इस प्रकार दूत द्वारा अथवा पत्र द्वारा सदेश भेजना विरही के लिए असम्भव हो गया है। एक पत्र घनआनन्द ने भेजा भी था जाने किस समय जाने किस प्रकार पर वह पत्र कागज पर नही लिखा गया था। हृदय को ही कागज बना कर उसी पर प्रेम कथा लिखी गई थी पर वह किस प्रकार टूक टूक कर दिया गया था और बाँचा भी नहीं गया था यह बात हम लोग देख ही चुके हैं।

रह जाते हैं दो साधन, दो प्राकृतिक उपकरण—पवन और मेघ। पवन से दो बातें कही गई हैं। एक तो यह कि मेरा सदेशा कौन कहेगा और कौन सुनेगा—छोटों की बात बडे लोग नहीं सुना करते (यहाँ विरही का दैन्य देखने योग्य है) परन्तु पवन की शक्ति देख कर (पर-दुख दल के दलन को प्रभजन हो) और ढरकौहीं बान देख कर विरही उससे इतना निवेदन किये बिना नही रहता कि हे वायु ! तुम हमारी भस्मीभूत दशा का पता प्रिय को यहाँ की थोडी-सी भस्म उडा ले जाकर प्रिय को दे सकते हो। कम से कम प्रेमी की दशा का परिचय तो प्रिय को हो जायगा। दूसरी बात भी कुछ इसी से मिलती जुलती है, उसमे पवन के गुणो की प्रशस्ति करते हुए उसे काम करने के लिए उत्साहित करते हुए और प्रिय की निष्ठुरता का ब्योरा देते हुए विनय की गई है कि वह प्रिय के चरणों की थोडी सी धूल ला दे जो विरही के व्यथा के लिए उपयुक्त जुडी अथवा औषधि का काम देगी, उसके नेत्रो की व्यथा के लिए अजन का काम देगी। पर पवन द्वारा भी कोई प्रत्यक्ष संदेश इधर स उधर या उधर से इधर नहीं भेजा गया है। केवल यही निवेदन किया गया है कि इधर की भस्म उधर ले जाकर अथवा उधर के चरण रज इधर से लाकर विरही के मन को वायु थोडा शांति पहुँचा भी दे। यही बात स्वाभाविक भी थी जब वायु भस्म उडाने का ही कार्य कर सकती है, प्रत्यक्ष रूप से सदेशा वहना उसके लिए सभव नहीं—

> ए रे बीर पौन ! तेरो सबै ओर गौन बीरी
> तोसों और कौन मनै ढरकौहीं बानि दै।
> जगत के प्रान, ओछे बडे सों समान घन
> आनन्द निधान सुखदान दुखयानि दै।
> जान उजियारे गुन भारे अत मोही प्यारे,
> अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहचानि दै।
> विरह बिथाह मूरि आँखिन में राखौ पूरि,
> धूरि तिन पायन की हा हा नेकु आनि दै।[1]

ऐसा ही एक निवेदन पर्जन्य के प्रति भी कवि ने किया है जिसमे सुजान प्रिया तक अपनी दशा को प्रतीकात्मक पद्धति से पहुँचाने की प्रार्थना की है। इस आशय

---

[1] घनआनन्द ग्रथावली वाड मुख, पृ० ३२

का अधोलिखित छ द कदाचित घनआन द का लोक मे सर्वाधिक प्रिय एव प्रचलित छ द है। इस तथ्य से भी सदेश प्रेषण की महत्ता पर काफी प्रकाश पडता है—

पर कारहि देह को धारे फिरो परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सबही बिधि सज्जनता सरसौ।
घनआनन्द जीवनदायक ह्वौ कछू मेरियौ पीर हिये परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मों असुवानि लै बरसौ।

सदेश प्रेषण के छ दो म विरोही की अति सतप्त दशा विकलता अश्रु प्रवाह, अग्नि दाह आदि का चित्रण पर्याप्त मार्मिकता से बन पडा है और वायु तथा मेघ द्वारा अपनी दीन-हीन स्थिति के प्रिय तक सवन्ति करने की और प्रिय के चरण रज को अपने पास ले आने की विनय की गई है।

## १० प्रिय के गुणो का गान गुण कथन

घनआन द ने अपने विरह निवेदन मे केवल सुजान की निष्ठुरता का ही वणन नही किया है उसके गुणो का भी अनेक बार कीतन किया है यह अवश्य है, कि आक्षेप निष्ठुरता और प्रिय की प्रेम विषमता की बातें बहुत बडे पमाने पर असाधारण विस्तार से कही गई हैं। वदना और विरह व्यथा स पीडित चित्त से प्रेम-वैषम्य और प्रिय के निमम आचरण की सविस्तार वणना स्वभाविक ही है पर प्रिय के गुणो से कवि का ध्यान सवथा हटने नही पाया है अनेक बार उसकी गुणावली का स्मरण किया गया है। इस गुण गान के साथ-साथ यह भी निवेदन किया गया है (प्राय अनिवाय रूप से) कि प्रिय विरह पीडा शात करने को कृपा करे। कृपा की याचना करते हुये प्रिय की गुणावली का वणन स्वाभाविक है।

प्रिय अथवा सुजान की गुणावली का स्मरण करते हुए ये बातें कही गई हैं— इतनी उज्ज्वल और अपूव यश चद्रिका ससार मे रात दिन किस दूसरे की छाई हुई है? किसकी ज्योति का दशन कर चकोर नेत्र रस म पग जाते हैं? (अथात किसी की नही) तुम मेरे नेत्रो की ज्योति हो दु ख तम को हटाने वाली हो प्रेम का प्रण पालने वाली हो मेरे नेत्रो की सारिका हो, तुम्हारा ही रूप रस मेरे जीवन का स्वाद है तुम ही मुझ दीन और गुणहीन की गति हो, मति हो पति हो। प्रेम की निधि हो चीन मीन की लालसा हो सब प्रकार सुख और जीवन का दान देने वाली हो, चातको का पोषण करने वाली हो रक के लिए महाधान हो चिन्ताओ से मुक्ति देने वाली सु दर *नेत्रो वाली और पूण काम हो। तुम सदा कृपा की निधि हो क्या कहू सुजान (ज्ञानमयी)* हो प्रेम का मधुर सिंधु हो रीति नीति के निकेत हो जीव के जीवन हो या उसे जिलाने वाले हो अपने नाम को साथक करने हो मेरी अभिलाषाओ की निधि हो चिर जीवी बनो (कवि अ त करण से आशीर्वाद भी देता है), प्रेम की वल्लरी को पल्लवित करने के लिए रस द दे कर हृदय के आलबाल (थाल) को भरती या सीचती रहती हो तथा अपनी कृपाबानिवश स्वयमेव मुझ पर कृपा करती रहती हो। रसिक हो, रसमयी

हो, कृपा करने वाली हो जि दगी बरसाने वाली हो हँस कर देखने और सरस स्पश द्वारा सुख स सींच दने वाली हो, सब प्रकार से याग्य और सुखदायनी हो। हे सुजान ! तुम छविशालिनी हो, प्रेम से भरी हो, हमारी चेतना को लुप्त कर देने वाली जादू हो तुम्हारे रूप और गुण का बखान नही किया जा सकता। मोहने वाली हो, कृपावती हो, शोभायुक्त हो और माधुयपूण हो तथा हृदय को मुग्ध कर लेने वाली हो।

सुजान के इन गुणो का ध्यान कथन और करते हुए उससे कृपा करने को कहा गया है।

## ११ दैन्य भाव प्रिय से दया की याचना

कवि ने कितनी ही बार प्रिय से कृपा की याचना की है, अत्यन्त दीन हीन होकर विनय की है कि वह उसके वियोग सताप का शमन करे। यह याचना भी बीसो बार की गई मिलेगी और तरह तरह से भिन्न भिन्न रूपो म। प्रिय की गुणावली का गान करते हुए प्राय जितने भी छन्द लिखे गये हैं जिनकी चर्चा हम अभी-अभी कर आये हैं उन सभी में दया की याचना के भाव देखे जा सकते हैं। विरही की दया और याचना की भूख सवथा समझ म आने वाली है। विरह उसे परम दीनता की दशा म ला पटकता है।

याचना के स्वर इस प्रकार हैं—हमारे विरह को और दुख के अधकार को कब विदीर्ण करोगे और सुधासने वचन कह कर हमारे श्रवण को अब सींचोगे ? हा हा सुजान ! इस दीन की दशा तो देखो। तुम्ही हमारे सवस्व हो हमारो सुधि लो। हमें सुख का दान दो हमे आपकी ही टक लगी हुई है—

टगी लगी तिहारियै सु आप त्यों निहारिये,
समीप ह्व बिहारिये, उमग रग भीजिय।
पयोद मोद छाइयै, बिनोद कौं बढ़ाइयै,
बिलब छाडि आइय, किधौं बुलाय लीजियै।

तुम सदा जीवित रहो, हमे सुख दो और हमारा मन भाया करो। जिस प्रकार मिलन से वियोग कर डाला है उसी प्रकार वियोग से मिलन की स्थिति पैदा कर दो—

मिलन तें ज्योंही बिछुरन करि डारयौ, वारी
त्यों ही किन बीज हा हा मिलन बिछोह तें।

हे सुजान ! स्नेही कहला कर भी मुझे बिना पानी क्यो डुबो रही हो अर्थात प्यासा ही क्यो मारे डाल रही हो ? मुझ पर कृपा करो न ! हे मेरे प्रेम के निधान ! यदि तुम्ही कृपा करन म आलस्य करोगे तो ये प्राण कसे जियेंगे—

तुम तौ उदार दीन हीन आनि परयौ द्वार,
सुनिय पुकार याहि कौ लौं तरसाय हो।

चातक है रावरो अनोखे मोह-आवरो
सुजान रूप बावरो बदन दरसाय हो।
बिरह नसाय दया हिय में बसाय आय
हाय कब आनन्द को घन बरसाय हो।

तुम्हारे रूप का चारा पाकर ये प्राण पखेरू तुम्हारे लिए तड़प रहे हैं इन पर रहम कीजिए और अपना मुख चन्द्र दिखला दीजिये। तुम्हारे हाथों में यश और बड़प्पन है इधर मुझ साधारण रोग नहीं रोग राज वियोग सता रहा है। मेरी विनय मान लीजिये और मेरा उपचार कीजिये—

हा हा दीन जानि याकी विनती लीजिय मानि,
दीज आनि औषधि वियोग रोग राज को।

हे सुजान! मेरा जीव तुम्हारे ही प्यार से पला है उमगों से यह मतवाला हो रहा है इस झिड़को मत, अपने दरवाजे पर पड़ा रहने दो यही इसके लिए सबसे बड़ा दान होगा। याचना के इस स्वर मे कितना दैन्य है कितनी बेबसी है—

बाल्यो प्यार को तिहारो तुमही सौं निहारो,
हा हा जनि टारौ याहि द्वारो दूसरो न है।
आनन्द के घन हो सुजान आन दियें कहौं,
मान दे न कीजे मान दान दीजिये यहै।

कवि कहता है—हे मेरी सहज लडीली अरबीली! सुन
तेरी अग मग लहैं लाखों लटकात है।

× × ×

आनन्द के घन सों न कीजे मान जान प्यारी
दान दिये पिय सों न मान बाँहीं जात है।

हे सुजान! मुझ अपने पास ही बसा लीजिये और रस की वर्षा करते हुए सुख सरसाइये क्योंकि आपके ललित मुख को देखने की जो लालसा इन नेत्रो मे समाई हुई है वह कहते नही बनती। हे प्राणो के प्राण सुजान! मुझ पर थोड़ी कृपा अवश्य कीजिये चिताओ की चिता मे अब अधिक दग्ध होते नही बनता। मैं अपनी दशा तुमसे क्या कहूँ मेरे अवगुणो पर ध्यान मत दो तुम्हारा गुण गान ही हमारा जीवन है और तुमसे मिलन की प्यास मे ही ये प्राणो की मछलियाँ मरी जा रही हैं। हे रस राशि! इन्हे किसी प्रकार जिला लीजिये—

मोहि मेरे जिय की जनायबो अजानता है
जानराय जानत हो सकल कला प्रबीन।
औगुन बिचारो जो पै तो गुन कहा तिहारो
आप त्यों निहारो पन पारो जू सभारो, दीन।

जतन कहा बनाऊँ तुमही तें तुम्हें पाऊँ,
रावरोई गुन गाऊ बावरे लौं हित लीन।
रहौं लागि आस घनआनन्द मिलन-प्यास,
एहो रसराधि ज्याय लीज ढरि निज मीन।

इन पक्तियों म भी बडी करुणा है दीनता है विवशता और आत्मीयता है अविकल कृपा की याचना है, जीवन दान की प्राथना है दोषों की ओर से आँख मूँद लेने की विनय है, जिस दन्य भाव से भक्त अपने भगवान से कहता है कि मेरे अवगुन चित न धरो, उसी दीनता से घनआनन्द भी कहते हैं 'औगुन विचारौ जो पै तौ गुन कहा तिहारौ एहो रसरासि ज्याय लीजै ढरि निज मीन।' तुम्ही मुझ सरीखे बेसम्हाल को सम्हाल सकते हो, मुझ प्रम के चातक के जीवन पर एक ही दृष्टि है जिससे विचार किया जा सकता है, वह है मेरे प्रेम का प्रण, मेरे प्रेम की टेक उसमे मैं विश्वास दिलाता हूँ तुम्हें कही किसी प्रकार की कमी या खोट न मिलेगी यह बेचारा तुम्हारी रस, वर्षिणी दृष्टि की ओर टकटकी लगाकर लोभी की तरह देखता रहता है। दैन्य भाव दिखलाते समय स्वाथ इतना प्रबल हो जाता है कि प्रेमी या विरही अपने आपको ही भला बुरा कहने लगता है, ओछा या छोटा दीन-हीन कहने लगता है, इसके मूल म यही भाव रहता है कि प्रिय के हृदय मे किसी प्रकार करुणा का उद्रेक किया जाय। जब हम अपने को ही कोसेंगे, भला-बुरा कहेंगे, तो सुनने वाले म अवश्य उदारता जगेगी या करुणा उत्पन्न होगी। इस प्रकार के आत्म कुत्सापूर्ण चरणो म दन्य भावगत विरही की यही मनोवृत्ति काम करती मिलेगी—

एहो घनआनन्द सुजान एक टक ही सौं,
चातक बिचारे को है जीवन विचारिबो।
यातें निसदिन रस बरस बरस ओर
टक जक लाय लाभी करत निहारिबो।

मेरी तुम्ही तक दौड (पहुँच) है दूसरा कोई ठिकाना नही, तुम्हारी ही आशा म ये प्राण तुम्हारी दुहाई बोल रहे हैं और विरह मे अधीर होकर मैं तुम्हें ही पुकार रहा हूँ मुझे दशन दो, मरा पीडा दूर करिये और प्रीति का साका मत बिगाडिये। हे सुजान! अत्यन्त कोमल होकर के भी मुझ दीन के हृदय को क्यो दल रही हो, बेचारा चातक तो केवल पुकार करना ही जानता है, बादल यदि छँट जायें तो उसका क्या वश है, वह उन्हें अपनी आँखो म ब द तो नही कर सकता। यहाँ पर दन्य के साथ बेबसी का भाव है और कृपा की याचना तो है ही—

सुजस मयक हो प लागत कलक बडो
बापुरे चकोर कौं जो त्यागि खोई आवरो।
× × ×
चातिक बिचारो घनआनन्द पुकार जान
मूदि क्यों सकत है बिदरि गए बादरो।

इन दु खिनी और अभागिन आँखो की दशा तो देखिये प्राणो के प्राण तुम्हें देखे बिना इनकी क्या वक्त है (ये किसी भी गिनती मे नही एकदम तुच्छ और हीन हैं)। इनकी दीन और अधीन दशा देखिये इनकी गलतियो पर गौर मत कीजिये—

नीर न्यारे मीन औ चकोर चद हीन हूँ तें
अति ही अधीन दीन गति मति पेखिय ।
हौंजू घनआनन्द दरारे रस भरे भारे
चातिक बिचारे सो न चूकनि परेखिय ।

द य म प्रिय के महत्व का भी भाव होता है प्रेम जिसम जितना अधिक तीव्र होगा उसम दीनता का भाव उतना ही अधिक होगा जिसम लालसा और ललक जितना अधिक होगी उसम द य निवेदन उतना ही प्रखर होगा। देखिये इसी उत्कट लालसा न प्रेमी को किस दीन हीन स्थिति म ला पटका है—

मीन जलहीन लौं अधीन ह्वै अनन्दघन,
जान प्यारी पायनि प कब को हहा कर ।
दई नई टेक तोहि टारें न टरति नेकौ
हार्यौ सब भाति जो बिचारो सो कहा कर ।

जो अपना माशूका पर अब कुछ हार चुका है उसके लिए दूसरा क्या चारा है रोय, गिडगिडाय और अपनी प्राण प्यारी को किसी भी प्रकार मनाये। कवि अपने प्रम की उ मत्त दशा का तरह तरह से निदशन कर तरह-तरह से अपनी दीनता दिखला कर अपनी सुजान का रिझा लेना चाहता है। वह सुजान के चरणो पर अपना तन मन सब निछावर किय हुय है बार-बार उसके परो पर पडता है उसक चरणो को सिर स लगाता है आँखो स लगाता है, प्राणा म रख लना चाहता है आदि-आदि। परम विरही क य समपण और दीनता भरे उद्गार सुनिये, इन भावो को कवि की भाषा से अधिक तीव्र सवेदन शक्ति से कहा ही नही जा सकता—

सीस लाग द्वग छनाय, हिये पै बसाय राखौं
इसे मान मान आव प्राननि मैं ल धरौं।
हरि हेरि चूमि चूमि शोभा छकि घूमि घूमि
परसि कपोलनि सो मज्जन कियौ करौं।
केलि-कला मदिर बिलास निधि मदिर हो
इनही के बल हौ मनोज सिंधु कौं तरौं।
यातें घनआनन्द सुजान प्यारी रीझि भीजि,
उमगि उमगि बेर बेर तेरे पा परौं।

देखिये न परम दीन दशा का पहुचा हुआ विरही अपनी सुजान प्रिया क चरणो की कैसी आरती उतार रहा है कभी उन्ह चूमना चाहता है कभी उनकी शोभा को ही देखते देखते छक जाना चाहता है और उसी के नश म गिर पडना चाहता है, अपने

करोलों से ही उसे मांजना (स्वच्छ करना) चाहता है कभी सिर से लगाने को कभी आंखों से छुआने को कभी हृदय में बसाने को और कभी प्राणों में रख लेने का उसका जी चाहता है वार बार वेग से उमडता हुआ उसका हृदय बार बार उसे सुजान के चरणों पर जा लोटने को प्रेरित करता है।

दैन्य निवेदन के लिए या प्रिय से कृपा करने की याचना के साथ-साथ विरह के कारण अपनी दशा का कथन करना बहुत आवश्यक हो गया है क्योंकि अपनी दशा ही तो वह आधार है जिस पर प्रिय की करुणा की आकांक्षा की गई है। यदि प्रेमी चंगा हो तो उसे किसी की रहम या मिहरबानी की क्या दरकार ! बस इसी कारण दैन्य या याचना प्रधान छंदों में आत्मदशा निवेदन के भाव मिले हुये हैं— दैन्य निवेदन या कृपा की याचना भी तो विरह की ही एक अवस्था विशेष है जिसके चित्रण द्वारा कवि ने अपनी विरह व्यथा ही संवेदित की है। कवि कहता है कि निश्वासों में प्रचुर ताप है, प्राण कब तक रुके रहेंगे, शरीर में इतनी भी शक्ति नहीं कि लोगों की बातों या सवालों का जबाब दिया जा सके, कब तक इस प्रकार सकतों और इशारों में ही उत्तर दिया जाता रहेगा शरीर का रंग उड चला, एक कलकी मुँह भर बच रहा है, चित्र पर तुम्हारी मूर्ति चढ़ी हुई है उसे वहाँ से हटाया नहीं जा सकता। इस विवश स्थिति में एक ही चारा है और वह यह कि हे प्रिय ! तुम कृपा कर दो अब अधिक मत उजाडो—'रावरी बसाय तो बसाय न उजारिय।' अब दीनता का दया की याचना का वह भाव चित्र देखिये जिसमें अतिशय उद्विग्नता के साथ यह सब कहा गया है कि मैं किसकी शरण जाऊँ, कहाँ पुकार करूं, चिन्ताओं में मति खोई जा रही है, आँसुओं से तन भीगता और ताप से तपता सूखता है दिन किस प्रकार बताये जायें मन की वेदना किससे कही जाय जीवन का भी क्या ठिकाना कब यह जीवन फल अपने मूल से गिर पडे, अब भी तो मिहरबानी कीजिये। हे जीवनाधार ! कुछ तो मेरी पुकार सुनिये, यदि आप ही न सुनेंगे तो हमारा और कौन सुनने वाला है। यह हृदय उद्वेगों के कारण उजाड हो गया है इस विरह ने हमें महा दुख प्रदान किया है, इस नीच वियोग को अपने और हमारे बीच से हटा दीजिये जिससे आनन्द के मेघ फिर से छा जायें और रस की वर्षा होने लगे—

मारि टारि दीजे ऐसो नीच बीच भलो नाहिं
बहै रसभीनो घनआनन्द रहै छयौ।

नित्य तुम्हारी ही ओर जिसने लौ लगा रक्खी है अपने उस चातक की तरफ तो देखिये—

उघरौ जग छाय रहे घनआनन्द चातिक ज्यौं तकिये अब तौ।

हे प्रिय ! कुछ मेरी सुनो कुछ अपनी कहो यो जलाओ मत, अपनी माया ममता भरी मूर्ति जरा तो दिखाइये। प्यार सुजान ! मैं जिस प्रकार दुख शूल सहता हूँ उसकी कथा तो सुनो यदि मेरी दशा का कोई कारण पूछे तो मैं क्या जवाब दूंगा, दूर से ही तुम्हारे पर पडता हूं कम से कम यही बता दो—

यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझ तौ ऊतर कौन कहौं ।
जिय नेकु बिचारि क बेहु बताय हहा पिय ! दूरि तें पाय गहौं ॥

हे उज्ज्वल रूप वाले (रूप उजियारे) सुजान ! हमारे विरहाधकार को कब जुन्हैया बना दोगे ? अमृत स भी अधिक सुखदायिनी हास्य मिश्रित चितवन को पिला कर मेरे जीव को कब जिलाओगे ? वह घडी कितनी भाग्यपूण होगी जब तुम हम देखोगे और हमारे हृदय म बसोगे ? हे सुजान ! यदि तुम्ही नहीं दिखाई देती तो इन आँखो को और किसे दिखलाऊँ ? तुम्हारी अमृतसनी बातो के सिवा इन आँखों को और क्या पिलाऊँ ? पीडा के आधिक्य स इस मरे हुए मन को अब और किससे परचाऊँ (परिचित करूँ) ? मुझ पर थोडी कृपा करके अब तुम किस पर कृपा कर रही हो जिसके कारण मेरा मन इतना तरस रहा है । यदि कृपा की वर्षा करनी ही है तो मेरे चातक प्राण को जिला दे—

हाय दई ! ढरि नेकु इत सु कित परस जिहि क्यो तरसे मो ।
चातिक प्रान जिवाय व जान जहाँ घनआनन्द कौं बरसै जो ॥

हे सुजान ! मैं तुमसे क्या कहूँ कि तुम यहाँ मेरे पास आओ क्या तुम मेरे पास से कहीं गये हो (हमारे अतर मे तो समाये हुए हो) पर यह बताओ कि छिपे क्यों हो और छिपकर मेरा हृदय क्यो जला रहे हो हृदय से निकल कर अपनी रूप शोभा का दशन करा कर तुम कब हमारे हृदय मे छा जाओगे ? हे प्रिय ! कृपा करके तुम कब मेरे हृदय मे इस सीधी पद्धति से समाओगे और वियोग की इस दावाग्नि को अपने सयोग द्वारा कब शीतल करोगे ? यह दीन हाथ जोडकर प्राथना करता है कि इसे कब तक या दु ख की ज्वालाओ मे लटकाये रहोगे ? इस जीव रूपी चातक हृदय के सारे खटके (भय आशकायें) हर लो । हे सुजान ! तुम्हारी याद नही भूलती यदि ऐसे याद करने वाले को भुला दोगे तो फिर सँभालोगे किसे ? हे प्रिय कब तक भुलाओगे कभी तो कृपा करोगे ही ? (इतना विश्वास कवि के मन मे बना हुआ है) हे सुजान ! अपनी रस रग भरी मृदु बोलो का रस माधुय हमारे कानो को कब पिला ओगे अपनी गति का सौ दय लिए हुए हमारी आखो म कब बसोगे कब हमारे मन की अभिलाषायें पूरी करोगे और कब हमारी रीझ को सायक करोगे ? हे सुजान ! म तुम्हे देख-देख कर थक गया हूँ, तुम हमारी दु ख दशा देखकर मिलती क्यो नही, मीत होकर भी विश्वासघाती निकले यही नई पीडा है । हे सुजान ! तुम्हारा आलस्य कैसे जागा हुआ है और तुम्हारी कृपा की ढरक क्योकर सोई हुई है—

देखि देखि हूदौं दुख दसा देखि मिलौ हा हा,
मीत ओ बिसासी यह कसक नई करक ।
आनँद के घन हो सजान काल खोलि कहौं,
आरस जग्यौ है कैसें सोई है कृपा ढरक ॥

हे प्रिय ! आँखें मत फेरो, तुम्हारा न बोलना शर के समान तीखा है रसदायक होकर हम दु ख मत दीजिये, मेरी इतनी विनय मान लीजिये कि अपना चित्त भर कठोर न कीजिये, उसको कोमल, कृपापूर्ण बनाये रहिए।

प्रिय से दया की याचना करते हुए कवि को अपनी दीनता हर प्रकार की दीनता और असमर्थता व्यक्त करनी पड़ी है। अपनी विवशता और प्रिय के ही एक-मात्र आश्रय होने और उद्धार कर देने की बात भी कही गई है कवि को अपनी टेक और प्रीति निष्ठा भी बार-बार दुहरानी पड़ी है तथा प्रिय के महत्व को ध्वनित करने वाली बातें पद पद पर कहनी पड़ी हैं। वास्तव म द य भाव के साथ साथ ये अ य भाव इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि इ हें पृथक करके दीनता दिखाई ही नहीं जा सकती और कृपा की याचना भी की ही नहीं जा सकती। जिसने अपना सवस्व निछावर कर दिया हो उसे जीने के लिए याचना के सिवा और माग भी क्या बच रहता है—"**हारयो सब भाँति को बिचारो सो कहा करैं।** याचना इन बातों की गई है कि प्रिय विरही की याद करे, उसे सुख का दान दे सुखी करे उसका मन भाया करे, वियोग को मिलन मे परिणित कर दे, आलस्य, उदासीनता और निष्ठुरता छोड़ कर जल दे, रस दे जीवन दे, तरसाये नही बल्कि अपने मोह-आवरो' प्रेमी को दशन देकर आन दघन की वर्षा करे प्राण चकोरो को अपना मुख च द्र दिखलाये रोग का उपचार करे, झिड़के नहीं, अपने द्वार पर ही शरण दे, मान न करने का दान दे, प्रेमी के अवगुणो को न देखे अपने पास मे ही बसा ले, तड़फते हुए प्राण मीनो को जिला ले, अपने प्रेमी की टेक को देखे बेचारे चातक की चूकों को नहीं, अब इतनी वेदना सह लेने के बाद उजाड़े नहीं, कृपा कर उसकी पुकार सुने, वियोग को बीच से हटा दे, अपने चातक की ओर ध्यान दे विरह के तम को ज्योत्स्ना म परिणित कर दे, सुधापूर्ण हँसी और चितवन से जीव को जिला दे, उसकी ओर स्निग्ध भाव से देखे और उसके हृदय म बस जाये छिप कर हृदय न जलाये बल्कि बाहर आकर अ दर (हृदय में) छा जाय, विरह की दावाग्नि को अपने सयोग द्वारा शीतल करे, जीव रूपी चातक की सारी आशकायें उसके मन के सारे खटके हर ले, भुला न दे वरन कृपा करे अपनी रस रग-पूर्ण मृदु वचनावली का माधुय उसके कानो को पिलाये अपनी गति की सु दर शोभा को लिये हुए उसकी आखा में बसे और प्रिय के हृदय की सारी अभिलाषायें पूरी करे, उसकी रीझ का साधक करे आलस्य करने और विश्वासघात के बजाय अनुकूलता प्रदर्शित करे, आलस्य को सुला दे और कृपाढरक को जगा दे, प्रिय की विनय मान ले और उसके प्रति कोमल आचरण करे। प्रिय के प्रति दीनता प्रद शित करते हुए इस प्रकार के भाव व्यक्त किये गय हैं—इस दीन की दशा तो देखो इसे आपकी ही टक लगी हुई है, यह हीन जीव आपके द्वार पर पड़ा हुआ है आपके मोह मे व्याकुल यह आपका ही चातक है देखिय न यह बेचारा राग राज वियोग का सताया हुआ है यह आपके ही प्यार का पाला हुआ है हा हा ! इसे अपने दरवाज

यह देखि अकारन मेरी दसा कोऊ बूझ तौ ऊनर कौन कहौं ।
जिय नेकु बिचारि क देहुँ बताय हहा पिय ! दूरि तें पाय गहौं ॥

हे उज्ज्वल रूप वाले (रूप उजियारे) सुजान ! हमारे विरहांधकार को कब जुन्हैया बना दोगे ? अमृत से भी अधिक सुखदायिनी हास्य मिश्रित चितवन को पिला कर मेरे जीव को कब जिलाओगे ? वह घडी कितनी भाग्यपूर्ण होगी जब तुम हम देखोगे और हमारे हृदय म बसोगे ? हे सुजान ! यदि तुम्ही नहीं दिखाई देती तो इन आँखो को और किसे दिखलाऊ ? तुम्हारी अमृतसनी बातो के सिवा इन आँखों को और क्या पिलाऊँ ? पीडा के आधिक्य स इस मरे हुए मन को अब और किससे परचाऊँ (परिचित करूँ) ? मुझ पर थोडी कृपा करके अब तुम किस पर कृपा कर रही हो जिसके कारण मेरा मन इतना तरस रहा है। यदि कृपा की वर्षा करनी ही है तो मेरे चातक प्राण को जिला दे—

हाय दई ! ढरि नेकु इत सु कित परस जिहि क्यो तरस मो ।
चातिक प्रान जिवाय द जान जहाँ घनआनन्द कों बरसै जो ॥

हे सुजान ! मैं तुमस क्या कहूँ कि तुम यहाँ मेरे पास आओ क्या तुम मेरे पास से कही गये हो (हमारे अतर मे तो समाये हुए हो) पर यह बताओ कि छिपे क्यो हो और छिपकर मरा हृदय क्यो जला रहे हो हृदय से निकल कर अपनी रूप शोभा का दशन करा कर तुम कब हमारे हृदय मे छा जाओगे ? हे प्रिय ! कृपा करके तुम कब मेरे हृदय म इस सीधी पद्धति से समाओगे और वियोग की इस दावाग्नि को अपने सयोग द्वारा कब शीतल करोगे ? यह दीन हाथ जोडकर प्राथना करता है कि इसे कब तक यो दु ख की ज्वालाओ मे लटकाये रहोगे ? इस जीव रूपी चातक हृदय के सारे खटके (भय आशकायें) हर लो। हे सुजान ! तुम्हारी याद नहीं भूलती, यदि ऐसे याद करने वाले को भुला दोगे तो फिर सँभालोगे किसे ? हे प्रिय कब तक भुलाओगे कभी तो कृपा करोगे ही ? (इतना विश्वास कवि के मन मे बना हुआ है) हे सुजान ! अपनी रस रग भरी मृदु बोलो का रस माधुय हमारे कानो को कब पिला ओगे अपनी गति का सौ दय लिए हुए हमारी आँखो म कब बसोग कब हमारे मन की अभिलाषायें पूरी करोगे और कब हमारी रीझ को साथक करोगे ? हे सुजान ! म तुम्हे देख-देख कर थक गया हूँ तुम हमारी दु ख दशा देखकर मिलती क्यो नही, मीत होकर भी विश्वासघाती निकले यही नई पीडा है। हे सुजान ! तुम्हारा आलस्य कसे जागा हुआ है और तुम्हारी कृपा की ढरक क्योकर सोई हुई है—

देखि देखि ढूढ़ौं दुख दसा देखि मिलौ हा हा,
मीत ह्वै बिसासी यह कसक नई करक ।
आनंद क घन हो सुजान काल खोलि कहौं,
आरस जग्यो है कसें सोई है कृपा ढरक ॥

हे प्रिय ! आँखें मत फेरो तुम्ह रा न बोलना शर क समान तीखा है, रसदायक होकर हम दु ख मत दीजिय, मेरी इतनी विनय मान लीजिये कि अपना चित्त भर कठोर न कीजिय, उसको कोमल, कृपापूण बनाये रहिए।

प्रिय स दया की याचना करते हुए कवि का अपनी दीनता, हर प्रकार की दीनता और असमथता यक्त करनी पडी है। अपनी विवशता और प्रिय के ही एक मात्र आश्रय होने और उद्धार कर दने की बात भी कही गई है कवि को अपनी टेक और प्रीति निष्ठा भी बार-बार दुहरानी पडी है तथा प्रिय क महत्व को ध्वनित करने वाली बातें पद-पद पर कहनी पडी हैं। वास्तव म दैन्य भाव के साथ साथ ये अय भाव इस प्रकार जुडे हुए हैं कि इन्हे पृथक करके दीनता दिखाई ही नही जा सकती और कृपा की याचना भी की ही नही जा सकती। जिसने अपना सवस्व निछावर कर दिया हो उसे जीने के लिए याचना के सिवा और माग भी क्या बच रहता है—"हार्यो **सब भाँति को बिचारो सो कहा करें।** याचना इन बातों की गई है कि प्रिय विरही की याद करे, उसे सुख का दान दे सुखी करे उसका मन भाया करे वियोग को मिलन मे परिणित कर दे, आलस्य, उदासीनता और निष्ठुरता छोड कर जल दे रस दे, जीवन दे, तरसाये नही बल्कि अपने मोह-आवरो प्रेमी को दशन देकर आनन्दघन की वर्षा करे प्राण चकोरों को अपना मुख चन्द्र दिखलाये, रोग का उपचार करे, झिडके नहीं अपने द्वार पर ही शरण दे, मान न करने का दान दे, प्रेमी के अवगुणो को न देखे अपने पास मे ही बसा ले, तडफते हुए प्राण मीनो को जिला ले अपन प्रेमी की टेक को देखे बेचारे चातक की चूको को नहीं, अब इतनी वेदना सह लेने के बाद उजाडे नही कृपा कर उसकी पुकार सुने, वियोग को बीच से हटा दे अपने चातक की ओर ध्यान दे, विरह के तम को ज्योत्स्ना मे परिणित कर दे सुधापूण हँसी और चितवन से जीव को जिला दे, उसकी ओर स्निग्ध भाव से देखे और उसके हृदय म बस जाये छिप कर हृदय न जलाये बल्कि बाहर आकर अन्दर (हृदय में) छा जाय विरह की दावाग्नि को अपने सयोग द्वारा शीतल करे, जीव रूपी चातक की सारी आशायें उसके मन क सारे खटके हर ले, भुला न दे वरन कृपा करे अपनी रस रग-पूण मृदु वचनावली का माधुय उसक कानो को पिलाये, अपनी गति की सुन्दर शोभा को लिये हुए उसकी आँखो में बसे और प्रिय के हृदय की सारी अभिलाषायें पूरी करे उसकी रीझ को साथक करे आलस्य करने और विश्वासघात के बजाय अनुकूलता प्रदर्शित करे आलस्य को भुला दे और कृपाढरक को ढरा दे, प्रिय की विनय मान ले और उसक प्रति कोमल आचरण करे। प्रिय के प्रति दीनता प्रदर्शित करते हुए इस प्रकार के भाव व्यक्त किये गय हैं—इस दीन की दशा तो देखो इसे आपकी हा टक लगी हुई है यह हीन जीव आपके द्वार पर पडा हुआ है आपके मोह मे व्याकुल यह आपका ही चातक है दखिये न यह बेचारा रोग राज वियोग का सताया हुआ है, यह आपके ही प्यार का पाला हुआ है हा हा ! इसे अपने दरवाज

से हटाशा मन इसके निए दूसरा द्वार ही नहो है चिन्ताओं की चिता म अब अधिक जलते नहो बनता इसके अवगुणों को लेकर तुम्हें क्या करना है य प्राण जलविरत मछलिया के समान हो रहे हैं। हे रसराशि ! य आपकी ही मछलियाँ हैं। जरा इसकी टेक पर तो विचार कीजिये यह नामी जब टक लगाकर आपकी ही ओर निहारा करता है तुम्ही तक इसकी पहुँच है यह तुम्हारी हो दुहाई बोल रहा है अपनी अनन्त अधीरता म तुम्हे ही पुकार रहा है तुम यदि कृपा न करो उसे त्याग हो दो तो उस का क्या वश है तुम्हे वह स्वेच्छानुकूल कुछ करने को बाध्य तो नहीं कर सकता, बस तुम्हारी कृपा (ढरक) का ही सहारा है इन अभागिन आँखो की क्या दशा है, ये बेचारी तो किसी भी गिनती म नही तुम्हारे बिना तो य एक दम तुच्छ और हीन हो गई हैं। हे रस भर ढतारे (ग्यानिधान) ! इस चातका की चूक पर मत ध्यान दीजिये और नीर प्यारे मीन औ चकोर चन्दहीन हू तें अति हो अधीन दोन गति मति पेखिये प्रिय के लिए लालसा और ललक जितनी तीव्र होती गई है दीनता उतनी ही अधिक परिमाण म उतनी ही अधिक तीव्रता स व्यक्त हुई है जो बेचारा अपना सब कुछ तुम्हारे उपर निछावर कर चुका है वह रोने गिडगिडाने के सिवा और क्या कर सकता है ! हमारा मन करता है तुम्हारे परो पर गिर पड़ू तुम्हारे चरणो को अपने सिर से लगाऊँ आँखो स स्पर्श करूँ हृदय और प्राणो म बसाऊँ, चूमू और उनकी शोभा देख देख कर अपने नयनो को उन्हें स्वच्छ करता रहूँ। ये निश्वास तप रहे हैं ये प्राण कब तक रुकेंगे अब किसी की बातो का उत्तर देने की भी शक्ति नहीं रह गई है इशारो से कब तक बातें करता रहूँगा शरीर म शोक विवशता छाई हुई है एक कलकी मुँह ही बचा हुआ है अब बहुत उजड चुका हूँ अधिक उजड़ने की सामर्थ्य नही। किसकी शरण जाऊँ कहाँ पुकार करू चिन्ताओ मे मति खाई जा रही है शरीर ताप म तपता है आँसुओ स भीगता है मीजनि दहिन साथ-साथ चलता है जीवन का क्या ठिकाना कब इसस भी वचित हो जाऊ। हृदय उद्वेगो के कारण उजड चुका है मन मर-सा गया नीच वियोग मार डाल रहा है दूर से ही तुम्हारे पर पडता हू यही बता दो कि मैं किसी को क्या जवाब दूँगा ? इन आँखो को किसका रूप दिखलाऊँ ? इन कानों को किसके वचनामृत पिलाऊँ ? इस मरे मन को किसे परिचाऊँ ? मैं हाथ जोड कर, परो पड कर प्रार्थना करता हूँ मुझे आप बता दें कि मैं क्या करू ?

दीनता और विवशता ने इस प्रकार के भावो का ज्वार कवि के हृदय म उमडा दिया है। परम बेबसी बेचैनी हीनता की अनुभूति उसे भिखारी से भी बदतर हालत मे ला पटकती है। सब कुछ हार कर निछावर करके जो कगाल हो जाता है उसी की-सी हालत कवि की हो गई है—हारियौ सब भाति जो बिचारो सो कहा करै —यही क्या करने वाली स्थिति बेचारे घनआनन्द की हो गई है।

### १२ प्रिय के हित की कामना

प्रेमी प्रिय को लाख बार बुरा भला कहे उसकी निष्ठुरता की शिकायत करे

उसे उपालम्भ दे, उसकी कठोरता के प्रति हजार प्रकार की बातें करे पर वह प्रिय का अनिष्ट कभी नही चाह सकता, अनिष्ट तो दूर उसका अहित और बाल बाँका होना भी नहीं चाहता। भारतीय प्रेमी का तो कम से कम यही आदश रहा है, सूर आदि की गोपियो ने 'ब्याहो लाख धरौ दस कुबजा अ तहिं का ह हमारो' अथवा 'जह जहँ रहो रा करो तहँ तहँ लेहु कोटि सिर भार। सूरदास हम देति असीसहि हात खस जनि बार' आदि कह कर इसी ऊचे भव्य और दीप्ति प्रेमादश को सामने रखा है। परवर्ती हि‍न्दी कवि भी प्रेम की इसी ऊँची भावना को व्यक्त करते रहे हैं।

प्रिय के दोपा स अवगत होकर भी सच्चा प्रेमी उसका अहित कभी नही चाहना उससे बदला लेन का भाव अपने मन म नही रखता इतना हा नही भविष्य मे उसके विषम आचरण की सभावना हान पर भी उसका हित ही चाहता है। यह बहुत ही उदात्त भाव है प्रम की तीव्र अनुभूति रखने वाले से हार के हर सच्चे प्रेम के चित्रकार ने यह भावचित्र अवश्य प्रस्तुत किया होगा।

विरही घनआन भी कहत हैं —हे सुजान! भूलना ही तुम्हें याद रह गया है और जान कर भी अजान बनी हुई हो, त्याग (प्रेमी को छाडने) का आदर करती हो और मान (उससे रोष) करने की वृत्ति को सम्मान देती हो इम प्रकार के अनौचित्य को हृदय मे स्थान देकर सुख का अनुभव करती हा पर हम तुम्हारे विरुद्ध कोई आचरण नही करने वाले तुम हमारे प्रेम का थाला हा—तुम जहाँ भी रहो जैसे भी रहा, सुख से रहो हमारी यही कामना है। इस कामना म बडा करुण भाव विद्यमान हैं। प्रिय न मिलेगा प्रेमी अन त काल तक तडपेगा कोई बात नही प्रेमी सब कुछ सह लेगा प्रिय तो सुख से रहे एक का सुख दूसरे का सुख है। घनआन द क प्रेम मे विषमता है। यहाँ पर प्रेमी तो कम से कम यही चाहता है प्रेम पात्र चाहे ऐसा चाहे चाहे न चाहे—

जहाँ जब जसैं तहा तब तसैं नीके रहौ,
सब बिधि प्रान प्यारे हित आना बाना हौ।

तुम्हारी दी हुई यातनायें हमने सिर आखों स्वीकार कर ली हैं हम पर कृपा न करो न सही (प्रेम वैषम्य इतना और इस स्थिति को पहुँचा हुआ है जरा देखिये) पर तुम जहाँ रहो भले रहो हमारी यह मगल कामना सतत तुम्हारे साथ है—

नित नीके रहो तुम्हें चाड कहा प असीस हमारियौ लीजिय जू।

चित हमारा तुम्हारा विरह वेदना से भले ही चूर हो गया है और हे सुजान! तुम आज भी हमे दु ख पहुँचाने से बाज नही आती आज भी तुम्हारा विरह हमें पीसे डालता है, वियोग का शल्य हृदय मे बेतरह कसकता है और साँस लेना भी दूभर हा रहा है आड से चोट करने हो फिर भी हम तुम्हें रात दिन यही आर्शीवाद देते हैं कि तुम अच्छी तरह रहा—

चूर भयो चित पूरि परेखन एहो कठोर! अजौं दुख पीसत।
सास हियें न समाय सकोचनि हाय इते पर यान कसीसत।

ओटनि चोट करी घनआनन्द नीके रहौ निस द्योस असोसत ।
प्राननि बीच बसे हौ सुजान पै आँखिनि दोस कहा जु न दीसत ॥

कवि कहता है—हे सुजान ! तुम सदा सुख से रही आई हो और सदा तुम्हारे चित्त की अभिलषित बात ही होती रही है इसलिए तुम सुख से ही रहो और सदा जैसा करते आये हो (अन्याय) वैसी ही अनीति जितना चाहो करते रहो तुम्हारे लिए सातों खून माफ हैं, प्रिय दोषी नहीं होता प्रेमी का दोष हुआ करता है यह तथ्य मान कर ही उत्कृष्ट प्रेमी चला करता है, उसका मन सब प्रकार से कृष्णार्पित हो चुका रहता है वह सब कुछ सहने को और फिर भी कुछ न कहने को तैयार रहता है—

आन गुमारे रहो रहि आप हौ होनि रही है सदा चित चीती ।
है हमरी पुर की दुहाई बिरंचि बिचारि कै जाति रचीती ॥
प्रान पपीहन के घन हौ मन कै घनआनन्द कौन अनीती ।
जानौ कहा अनुमानौ हियें, हित की गति कौं सुख सौं नित बीती ॥

× × ×

पत ओर भए पन-प्यास भरी अकुलानि महा हिय पीसति है ।
दुख दोंनि परी न इतै पर प्यारे तिहारियै अलनि बीसति है ॥
घनआनन्द प्रान बिसोनि हमारो हमैं दुख बान कसीसति है ।
नित नीके रहौ हित मूरति जू मनसा दिन रात असीसति है ॥

ऐसा भाव इसलिए उत्पन्न होता है कि प्रिय आखिर तो प्रेमी का प्राण होता है प्राण को यदि कोई आघात पहुँचे तो प्रिय को आघात पहुँचता है प्रेमी इसीलिए स्वयं तो पीड़ा सहता है, जितनी भी पीड़ा उसे उसके प्रेम के कारण मिले सहने को तैयार रहता है परन्तु यह कभी नहीं सह सकता कि उसके प्राण को कोई किसी प्रकार की पीड़ा पहुँचाये । उसे कोई पीड़ा देने के इरादे से छुए भी यह उसे पसन्द नहीं । वह किसी को अपने प्राणों के समान प्रिय की निन्दा करते भी नहीं सुन सकता जैसा कि एक जगह घनआनन्द ने ही लिखा है—

मन माग्यौ बियोग मैं जारिबो जौ तौ निहारौ सौं मीचैं जरै न मरै ।
पै तुम्हैं यदि कोऊ कहो हित हीन सु या दुख बीच अमीच मरै ॥

प्रिय प्रेमी को चाहे जितना सताये या जलाये पर कोई उसे प्रेमहीन या निष्ठुर कहे यह बात प्रेमी को सह्य नहीं । प्रेमी का भाव यह है कि किसी को हमारे प्रिय से क्या मतलब ? उससे किसी को क्या लेना देना ? वह हमें मार काटे चाहे टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दे । प्रेम का व्यापार दो के सिवा किसी तीसरे की अपेक्षा नहीं करता किसी और का बीच-बचाव या मध्यस्थता सह्य नहीं यह प्रेम के गूढ़ अभिलाष के सिद्धान्त के विरुद्ध जाता है जिसके कारण झगड़ा भी हो सकता है, इसी से प्रेमी प्रिय को स्वयं निष्ठुर कह कर भले लिया और न यह सुनना नहीं चाहता कि उसका प्रिय

(प्रेम पात्र) प्रेमहीन है। प्रिय जहाँ चाहे वहाँ रहे जसे चाहे वसे रहे, वह प्रेमी का है। वह प्रेमी के प्रेम का थाला है, थाल की मिट्टी यदि किसी प्रकार खराब होने पाई तब तो प्रेम का बिरता ही उखड जायगा, इसलिए प्रेमी प्रेम के बिरते पर झझायें सह सकता है पर उसके मूल पर (प्रिय पर) नही। इसीलिए कहा गया है—

जहाँ जब जैसें तब तसें नीके रहौ
सब विधि प्रान प्यारे हित आलबाल हौ।

प्रेम के इसी भाव को प्रिय के हित की निरन्तर कामना की इस वृत्ति को घनआनन्द की गोपिका ने एक जगह बडी सुन्दर रीति से व्यक्त किया है बडी युक्ति युक्तता के साथ—

लगगी तुम्हैं हूँ, कहू कबहूँ सनेह चोट,
मेरी सो दुहेली पीर अन्तर पिरायहौ।
कहा जानौं ऐसो दिन होयगो कब धौं दया
विषम बिछोह द्यौस रातिहि बितायहौ॥
छल व्रजमोहन छबीले घनआनन्द जू,
मोहिं फिरि आपनहू दुखनि दुखायहौ।
तात तुम सुखी रहौ हौं हो दहौं, कहौ कब,
लपटनि ताती छाती लपटि सिरायहौ॥

बहुत सुन्दर है यह छन्द, बडा मनोहर है इसका भाव, रीतिबद्ध कवि इस तक वितक पद्धति से अन्तर के स्वरो को कभी मुखर ही नहीं कर सकता, पीडा का पूरा भार झेले बिना ऐसी आह निकल नही सकनी प्रम का पूरा पथ पार किये बिना अन्तर से ऐसे कामल भाव कुसुम खिल ही नही सकते, सुकुमार भावो की ऐसी झाँकी सामने लाई ही नही जा सकती। कवि कहता है—कवि क्यो कृष्ण की एक प्रेमिका गोपिका कहती है—यदि कभी तुम्हें भी प्रेम की चोट लगी (हालाँकि उसकी सम्भावना बहुत कम है फिर भी यदि लगी) तो मेरे ही समान असह्य पीडा से तुम्हारा हृदय पीडित हो उठेगा। क्या जाने ऐसा दिन भी कभी आयेगा जब विषम वियोग से पीडित हो तुम भी रात दिन व्यथा म काटा करोगे—जब तुम्हारा प्रिय तुम्ह न चाहेगा, तुम्हारे पास न आयेगा और तुम उसे पाने के लिए तरसोग (जसे कि आज हम तुम्हारे लिए तरस रहा हैं) ईश्वर करे एक बार ऐसा दिन आ जाय पर नही वह भी तो ठीक नहीं। तुम जब किसी की पीडा से तडपोगे तब भी तो हम सुख न मिलेगा। तुम्हारा वियोग दुख दखकर हमसे सहते न बनेगा, हम वियोग की पीडा को जाननी है हम नही चाहती कि यह अग्नि-ज्वाला किसी को सहनी पड, फिर तुम्ह सहनी पडे यह तो हम स्वप्न मे भी नहीं चाह सकती। इसलिए हम यही चाहती है कि तुम सुखी रहो, सदा सुखी रहो जहाँ भी रहो जसे भी रहो। हम दुख सहती हैं बस हमी दुख सहती रहें तुम क्यो सहो। यहाँ भी प्रेम वैषम्य का सौन्दय देखने लायक है कृष्ण गोपियो की वेदना देख सकते हैं गोपियाँ कृष्ण को वन्ना सहते नहीं देख सकती। यह भावोदय और भाव

शान्ति कितनी मधुर है, कितनी मनोवैज्ञानिक है अन्तःकरण की एक स्थिति विशेष का कैसा जाग्रत रूप उपस्थित करती है। गोपिका एक बार चाहती है प्रिय भी जरा हमारी तरह वियोग के दुःख झेल ले तो मजा आ जाय, उसे भी पता चल जाय कि वियोग की पीडा कैसी होती है फिर अपना आचरण सुधार लेगा, फिर हमें कभी दुःख न देगा। प्रतिकार के इस कटु भाव का पहले तो उदय हुआ, शीघ्र ही फिर दूसरा भाव आता है मन मे सद्विचार जगता है—नही नहीं ! ऐसा क्यों हो ? हमारे प्रेम के लाल बाल का पीडा क्यों पहुंचे। उसे पीडा पहुँचेगी तो हम क्या सुखी रह सकती हैं। हमारे सुख का दारोमदार तो वही है वही यदि कष्ट पायेगा तो हमारा अन्तःकरण उस पीडा से विरत कैसे रह सकता है आखिर वह भी तो हम झेलनी होगी इससे अच्छा है कि प्रिय सुख से रहे हम जल रही हैं वह यथा हम झेल सकती हैं हम ही झेलती रहे। मानो क्यों दुःख पायें कम से कम एक तो सुखी रहे और विशेषकर वह जो हमारे प्राणों का प्राण है जिसे हम इतना चाहती हैं। उसके मंगल की कामना की यह वृत्ति कितनी मार्मिक है कितनी अन्तःस्पर्शिणी है और कितनी निश्छल है। इस भावाभिव्यक्ति के टक्कर के छन्द अन्य कवियों में ढूंढने पर नही मिलेंगे। प्रिय के मंगल की कामना मे यद्यपि अन्ततः अपना ही सुख निहित है फिर भी यह भावना कितनी निर्मल और पवित्र है सच्ची और मनोवैज्ञानिक है।

## १३ अपना ही भाग्य खोटा है प्रिय का क्या दोष

प्रेम पात्र की निष्ठुरता के बावजूद भी प्रेमी उसे चाहता तो है ही, उसे निर्दोष भी बताता है। विधाता ने ही हम दोनो के भाग्य भिन्नता रख दी है प्रिय का दोष नही यह एक विशेष भाव है जो अनेक बार कवि ने व्यक्त किया है—

> कैसें घनआनन्द अदोषनि लगाय खोरि,
> लेखनि लिलार की परखनि मुरति है।

प्रिय को दोष न देकर प्रेम विषमता जनित पीडा की बहुत सी जिम्मेदारी विधाता पर डाल दी गई है। इस प्रकार के कथनो मे थोडा भावभेद अवश्य देखा जा सकता है कहीं उक्ति विवशता जन्य है कहीं पीडा की अधिकता और असह्यता से उत्पन्न है कहीं खाय अथवा व्यंग्य से मिश्रित है। उदाहरण मे विवशता की झलक देखी जा सकती है—

> इस बाट परी सुधि रावरे भूलनि कैसे उराहनो दीजिय जू।
> अब तो सब सीस चढाय लाई जु कछू मन भाई सु कीजिय जू॥

यही भाव इस पंक्ति मे भी व्यक्त हुआ है जब सुजान की न्यारी प्रीति रीति की चर्चा करते हुए कवि कहता है—

> कैसें घनआनन्द अदोषनि लगाय खोरि
> लेखनि लिलार की परेखनि मुरति है।

व्यथातिरेक अथवा उसकी असह्यता व्यंजित करने वाले 'गरल गुमान की गरावनि दसा को पान ' छन्द में कवि अपने से ही कहता है कि भीषण सताप तो तू अपने भाग्य में ही लिखा लाया है, अब तू हिम्मत से काम ले, यह दाह तो तुझे सहना ही पड़ेगा। इस उक्ति में व्यथा की असह्यता भी व्यंजित है, अपने ओछे भाग्य के प्रति भर्त्सना भी और हल्का-सा प्रिय के प्रति व्यंग्य भी भरा हुआ है। भीषण कष्ट *सहने के कारण अपने भाग्य के प्रति खीझ या आक्रोश भी व्यंजित है ही—*

तिहूँ यों सिराति छाती तोहिं व लगति ताती,
तेरे बाँटे आयौ है अँगारनि पै लोटिबो।

× × ×

रैन दिन चैन को न लेस कहूँ पैये
भाग आपने ही ऐसे दोष काहि कौं लगाइये।

खीझ रोष और व्यंग भरी एक ऐसी ही उक्ति और देखिये जिसमे कहा गया है कि तुम जैसे हो भले हो (अर्थात् तुम्हारा कोई दोष नहीं) हमी ने अपने भाग्य मे जो कुछ था सब पूरा का पूरा पा लिया है इन आंखों का ही सारा दोष था अजी तुम तो गुणों के खजाने हो। यहाँ व्यंग्य का भाव भी साफ झलक रहा है —

हौ सु भले हौ कहा कहिये हम आपने पूरन भाग लहे हो।
आँखि निगोडिन ही यह दोष अजू तुम तौ गुन-गाँस-गहे हो॥

व्यंग के साथ ऐसी ही उक्ति एक और भी है जिसमे आत्म-दैन्य का भी भाव मिला हुआ है- -

जान सुखारे रहौ, रहि आए हौ होति रही है सदा चित चीती।
हैं हम ही धुर की दुखहाई बिरंचि बिचारि कै जाति रचीती।
प्रान-पपीहन के घन हौ, मन द धनआनंद कीज अनीती।
जानौं कहा अनुमानौ हियें हित की गति कौं सुख सौं नित बीती॥

प्रेम विषमता का एक मनोवैज्ञानिक कारण

एक छन्द में कवि ने बड़ी आत्मीयता के साथ प्रिय को निर्दोष बतलाते हुए कहा है कि यदि प्रिय ने मन से हमें स्वीकार किया होता, हमे सचमुच पाया होता तो हम कभी न भुलाते, हमारी सुधि अवश्य आती। सच तो यह है कि उसने हमे प्यार ही नही किया। जब प्यार नही किया तब याद क्यो आये इस तरह उसका निष्ठुर होना ही स्वाभाविक है और जो कुछ हो रहा है वह यदि छल छोड़कर हृदय के भीतर आता तो इसके बाहर एक क्षण के लिए भी नही जा सकता था, यदि उसे मेरे गुन अच्छे लग होते तो वह हमारा गुन अवश्य गाता। जब यह सब हुआ ही नही तो बेचारे सुजान का क्या दोष—

सुधि होती सुजान सनेह की जौ तौ कहा सुधि यौं बिसरावते जू।
छिन जाते न बाहिर जौ छल छूटि कहूँ हिय भीतर आवते जू।

घनआनन्द जान न दोष तुम्हैं गुन भावते जो गुन गायन ज।
कहिये सु यहा अब मौन भलो नहीं खोवा जो हमे पावते जू॥

कवि कहता है—हे प्रिय ! जब मरा हा नीव मुझे मार डालता है तब तुमस क्या कहूँ अर्थात् तुम्हें क्या दोष दूँ ? आँखें भी अब उन्हें (जिनने इतना प्यार किया) नहीं पहचानता। लगता है ऐसा ही कुछ हमारे भाग्य में है—

मेरोई जीव जो मारत मोहिं तो प्यारे कहा तुम सों कहनो है।
आँखिनिहूँ पहचान तजी कछ एसोई भागन को लहनो है॥

एक जगह प्रिय के रूप और गुण के कारण अपने भाग्य में पुकार रहे और तद्रूप का भाव कवि ने व्यक्त किया है—

सुनि के गुन रावरे बावरे सों उरहानि सुरूप की बानि परी।
× × ×
रसदानि सुनो इन प्रान पपीहनि बाँट पुकारनि आनि परी।

इस प्रकार अपने भाग्य को दोष और प्रिय को निर्दोष अनेक कारणों से कहा गया है। इन उक्तियों के पीछे दीन-खीझ बेबसी, क्षोभ व्यग बहुत कुछ छिपा हुआ है। सतत वेदना सहते सहते भी एसी प्रतीति होन लगती है कि सुख तो हमारे भाग्य में ही नहीं। यहाँ पीडा का आधिक्य और विवशता बहुत स्पष्ट है। यहाँ कहा गया है आपको जो अच्छा लगे कीजिये हमने तो सब कुछ शीश चढ़ाकर अंगीकार कर लिया है यहाँ भाग्याधीनता के साथ साथ व्यग छिपा हुआ है इसी प्रकार उन वचनों में भी जिनसे ये आशय निकलते हैं—निर्दोषों को क्या दोष दिया जाय अर्थात् वे तो जन्म से ही विधाता के कृपा-पात्र है, विधाता ने सृष्टि गुण-दोष मय रची है केवल उन्हें ही निर्दोष बनाया है अथवा यह कथन कि तुम तो गुणों की खान हो जैसे हो भले हो हमारा ही भाग्य निकम्मा है जिसका हम पूरा भाग भाग रहे हैं अथवा यह उक्ति कि हे सुजान ! तुम्हारा समय तो सदा सुख से बीता है सदा मन चीता होता रहा है, तुम सुखी रहो हम ही चिर दुखी हैं प्रारम्भ से दुखी हैं विधाता ने हम दुखियो की जाति ही विचारपूर्वक बनाई थी आप जितना जी चाहे अन्याय करें आपका जन्म ही इसीलिए हुआ है—इन वचनों में अतिशय क्षोभ विवशता से पीडित हो तीक्ष्ण व्यग के रूप में फूट पडा है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रिय के दोष पर पर्दा उतना नहीं डाला गया है अथवा उसे निर्दोष उतना नहीं ठहराया गया है जितना व्यग द्वारा उसे मर्माहत किया गया है (बशर्ते वह व्यग समझे)। एकाध जगह पर बडे सुन्दर ढंग से इसी संदर्भ में प्रेम-वैषम्य के कारण की खोज की गई है और यह कहा गया है कि प्रिय ने हमे कभी प्यार नहीं किया बस इसी कारण वह हम याद नहीं करता हम ही इस मुगालने में थे कि उसके दिल में हमारे लिए चाह है। हमने प्रेम किया बस इसी कारण अंधे होकर हमने यह मान लिया कि उसे भी हमसे मेल है और बस लगे इसी आधार पर उलाहना, शिकायतें और विरह के नाना भावो

का अवार खडा करने । यह एक अच्छी सूझ है और सही बुद्धि है । अपन ही भावा के घटाटोप से जब निकले तव सत्य उजागर हो गया । इस अनुभूति मे गहरा तथ्य ज्वलत रूप से विद्यमान है । भावाकुल व्यक्ति भी कभी तो सोचता है और जब सोचता है तब सत्य सामने आता है । यही बात उक्त भाव के छद 'नहीं खावत जो हमें पावते जू' म विद्यमान है और यही भाव प्रकारातर स इस प्रकार की स्वानुभूति निरूपिणी उक्तियो म भी देखा जा सकता है—

होत कहा हेरें रक मानि लीनों मेल सों ।

अनेक अनुभूति प्राण क्षणो मे कवि ने अपने को घोर भ्रम मे पडा हुआ देखा है ।

१४ मन को सम्बोधन मन के प्रति कथन

कुछ छदा म कवि ने मन, जीव अथवा चित्त को सबोधित करत हुए भी कुछ उक्तियाँ की हैं । एस छदा मे अन्त करण की उक्त सत्ताओ का प्राय फटकार भी बताई गई है । उसके पीछे मूल भाव यही है कि मन पहले तो बिना समझे-बूझे पूछे ताछे प्रिय के पीछे लग गया था । अब यातना का जीवन यापन करना पड रहा है तब विकल हो हाकर रो रहा है । कवि का कहना है कि यदि रोना ही था तो पहले क्यो नही सोचा ? नही जानते थे कि यह प्रेम है कोई खिलवाड नही ? अब मन न मूर्खता की तो वही भुगते । ऐसी उक्तियो मे क्षोभ डाँट-फटकार आत्म प्रताडन आदि वृत्तियाँ ही मुख्य हैं ।

जीव को सबोधित करता हुआ कवि कहता है—हे जीव ! मन मेरे किस दोष के कारण मुझे छोडकर या मुझसे उदास होकर रोष के साथ चला गया था ? तुझे उस मन को उसी समय रोकना चाहिये था पर तब तो तूने रोका नहीं अब क्यो व्याकुल हो रहा है और विरह अग्नि के बीचो बीच पडा हुआ दु ख की ज्वालाओ म जल रहा है ? एक तरफ वह प्रमी है जो अपनाकर त्यागे हुए हैं और मारता ऊपर स है, दूसरी तरफ तू है जो हठपूर्वक उन्ही के द्वार पर दात लगाये हुए है—

बिरच्यौ किहि दोष न जानि सकौं, जु गयौ मन मो तजि रोष नत ।
जिय तो बिलयौं अब चातुर क्यौं तब तौ तन को बिरमायौ नत ।
घनआनन्द जान अमोही महा अपनाय इते पर त्यागि हन ।
अधबीच परयौ दुख ज्वाल जर सठ ! को सुख कौं हठि द्वार दतें ।।

यहाँ पर प्रेम वैषम्य व्यक्त हुआ है प्रिय की अतिशय निष्ठुरता और प्रेमी की हठ भरी अड के साथ-साथ उसके शारीरिक दहन और आन्तरिक सताप का वर्णन हुआ है और जीव के आचरण मन की रीझ आदि पर जीव को फटकार भी बताई गई है उसे प्रकारातर से लोभी कामी मूर्ख तो कहा ही गया है प्रत्यक्ष रूप से शठ भी कहा गया है । यहाँ एक प्रकार की झुझलाहट है, चिढ चिढापन है प्रेम करने जाकर प्राप्त किये हुए कष्टो के कारण जो बेचारे जीव पर उतारा गया है ।

एक बार मन को उसकी मूखता के लिए (प्रेम करने के लिए) फटकारा गया है। इसका यह अभिप्राय यदि ले लिया गया कि घनआनन्द प्रेम को मूखता मानते थ तब तो हो चुका। एक अन्तवृत्ति है एक क्षणिक भाव है जो मन की एक स्थिति विशेष मे उठता है और अपनी सौन्दय छटा दिखाकर चला जाता है। देखिये कवि क्या कहता है—

**विष लै बिसारयौ तन क बिसासी आप चारयौ,**
**जान्यौ हुतौ मन ! त अनेह कछु खेल सो।**
**अब ताकी ज्वाल मैं पजरिबो रे भली भाँति**
**नीकें सहि असह उदेग सुख सेल सो।**

मन से कवि कहता है—ह मन ! तूने सनेह को कुछ खेल समझ रक्खा था क्या जो बिना सोचे विचारे उसमे उलझ गया। जरा मुझसे पूछ तो लिया होता, अब तेरे इस अनुचित और मनमान आचरण मे सारा शरीर वदनाओ के अतिरेक से विषाक्त हो उठा है। अब भोग अपने किये का फल अच्छा हुआ तुझे अपन किय का मजा मिल गया। वियोग क आ जान से सुख सारे समाप्त हो गये। उन्होन जरा सा तेरी तरफ देख लिया और तू समझ गया कि उन्ह तुझस प्रम है। इसी धोखे और *मूखता का तो अब फल मिल रहा है।*

इसी प्रकार का भाव एक अन्य छन्द म भी कुछ हल्के ढग स कहा गया है। इसमे तीक्ष्णता कम है पर आत्म दशा की विवृत्ति अधिक है—प्रेम की गाठो मे उलझ कर सुलझने का माग नही मिलता। शरीर प्रकपित हाता रहता है आहो की थाह नहीं मिलती जीवन कठिन हा गया है प्रेम की भीषण लहरो के बीच पडा हुआ है यदि पहले ही सोचा होता तो आज सताप का अवसर क्या आता। हे जियरा (जीव) ! देख यह सौदा कितना महँगा पडा है—

**आगें न विचारयौ अब पाछें पछिताएँ कहा**
**माने मेरे जियरा बनो को कसो मोल है।**

यहाँ पर प्रमी स्वय अपने हृदय का विवक सिखला रहा है। यह भी एक प्रकार की आत्म प्रताडना या आत्म भत्सना ही है, एक मनस्थिति विशेष जिसम बेकाबू हुआ मन तरह-तरह की कल्पनायें किया करता है।

**१५ कुछ अन्य मनोदशायें कुछ स्फुट भाव**

अब हम कुछ अन्य ऐसे भावा की चर्चा करते हैं जो घनआनन्द के विरह काव्य अथवा सुजानहित अथवा सुजान प्रेम के काव्य मे फुटकल रूप मे पाये जाते हैं। अन्यान्य शीषका के अन्तगत आने वाले भाव कितनी ही बार आय हैं और कवि की प्रेम अथवा विरह सम्बन्धी एक दृष्टि विशेष अथवा अनुभूति विशेष को प्रकट करते हैं। वे ऐसी गाढी अनुभूतियाँ हैं जो बार-बार आई हैं और कवि क विरह काव्य की एक विशेष प्रवृत्ति बन गई हैं। यहा पर हम एसे प्रासगिक या फुटकल भावो पर

थोडा प्रकाश डालना चाहते हैं जो उनके विरह वणना की प्रधान प्रवृत्तियाँ नही कही जा सक्ती किन्तु फिर भी जिनका अपना वशिष्ट्य है और जिनकी उपेक्षा नही की जा सकती।

**वियोग मे सब कुछ उलट जाता है**—एक भाव तो यह है कि वियोग म सब कुछ फिर जाता है (उलट जाता है), हर वस्तु की प्रकृति बदल जाती है। गुण दोष हो जाता है, औपधि ही रोग वर्धक हो जाती है और इसी प्रकार और भी बहुत कुछ हो जाता है। इसीलिए वियोग के आगमन को कवि ने भाग्य का विपरीत हो जाना कहा है—

> सुधा तें स्रवत विष, फूल मैं जमत सूल
> तम उगिलत चन्दा, भई नई रीति है।
> जल जारैं अग, और राग करै सुर भग,
> सम्पति बिपति पार, बडो बिपरीति है।
> महागुन गहै दोष औषधि हू रोग पोष
> ऐसें जान ! रस माँहि बिरस अनीति है।
> दिनन को फेर मोहि तुम मन फेरि डारयौ,
> एहो घनआनन्द ! न जानौ कसें बीति है॥

प्रेम म आया हुआ वपम्य प्रेमी और विरही के जीवन और जगत का वैषम्य हो जाता है, अनुकूल वस्तुयें और स्थितिया प्रतिकूल हो जाती हैं।

**उपाय से रोग बढता है**—दूसरा भाव यह है कि विरह की इस दुदशा का कोई इलाज नही। यही नहा इलाज या उपाय करने से रोग बढता है। यह रोग कोई साधारण रोग नही, एक जगह कवि ने इसे सवश्रेष्ठ (अत्यन्त असाध्य रोग) कहा है और इस प्रकार इसे 'रोग राज' की उपाधि दी है, इसकी औषधि प्रेम-पात्र के ही पास मिलती है अन्य कोई वैद्य इसका इलाज नही कर सकता चाहे वह धन्वतरि ही क्या न हो। यह मज ही साधारणत लाइलाज है ऐसा सबने कहा है—दर्दे दिल की दवा नहीं हुआ करती। महा विरही घनआनन्द एक कदम आगे जाकर कहते हैं कि इस मज की जितनी दवा की जाती है यह मज उतना ही बढता जाता है—'औपधि हू रोग पोष' वाली बात होती जाती है। कई स्थला पर यह भाव आया है—

(क) भए कागद नाव उपाव सबै घनआनन्द नेह नदी गहर।
*बिन जान सजीवन कौन हरै सजनी बिरहा बिप की लहर॥*

(ख) कसे धरौं धीर बीर ! अति ही असाधि पीर
जलन ही रोग याहि नीकें करि टोह की।

(ग) ऐसो बढो घनआनन्द बेदनि दया उपायतें आव तँवारो।
हौं ही मरौं इक्लो, कहौं शन सो, जा बिधि होत है साँझ सवारो॥

(घ) गुपुत लपट जाकी तम ही प्रगट कर
जननिनि बाढ़ै, गुरु लोग अरव रहे।

वारिद सहाय सों दवागिनि दवति देखो
बिरहन वागिनि तें नना झरक रहे ॥
(ड) जतन बुझो हैं सब जाकी झर आग, अब
क्वहूँ न दब भरो भमक उमाह की।

ये सभी छद सपूर्ण रूप से देखने योग्य हैं और इनमे विरह वर्णना की अत्यन्त तीव्र अभिव्यक्ति हुई है। ये अभिव्यक्तियाँ भी अत्यन्त विकल कर देने वाली अतिशय भीषण विरह दशा का चित्रण करती हैं। एक एक म जो तड़प है वह अवर्णनीय है। विरही स्वय व्याकुलता के हाथो पडा हुआ है मन कही भी खुश नही होता, चित चाव की भाँति आकर्षण के कारण घूमता रहता है नेह की गहरी नदी म इस मनो दशा वाला प्राणी डूबा चाहता है एक सजीवन सुजान ही है जो विपत्ति लहरो के थपेडो से निजात दिला सकती है। दूसरे उपाय व्यर्थ हो गये हैं। विरह म पडे प्राण का चैन कहाँ दिन कैसे बीतता है और रात किस प्रकार कटती है यह तो विरही ही जानता है रोग को दूर करने का उपाय करने म मूर्च्छा अलग आती है—यह अशक्तता देखिये। हृदय म सदा आग लगी रहती है विरह की लपटें उपाय करने से बढती हैं आग तो वर्षा के कारण दब जाती है पर यहाँ विरहाग्नि के कारण आँखें झडी लगा रही है। अतर म एसी ज्वाला है ऐसा अटपटी दाह है कि पता नही चलता वह कहाँ स उठती है उसम धुआँ नही आता शरीर ठडा पडता जाता है आदि आदि सारे विपरीत कर्म होते चलते हैं और वह लपट या झार एसी है जिसे बुझाने के लिए आग बढकर यत्न स्वय बुझ जाते हैं (नाकाम हो जाते हैं) ऐसी होती है प्रेम की अनोखी चाह। इन सभी छदो म एक ही भाव आया है कि यह प्रेम विरह की ज्वाला ऐसी होती है जिसका कोई इलाज नही इसका एक ही इलाज है प्रिय की कृपा उसका मिलन। उसके सिवा और कितने ही उपाय किये जायें वे कागज की नाव की तरह व्यर्थ हो जाते हैं यत्न ही रोग का कारण हो जाता है, उपाय करने स मूर्च्छा आती है वह ज्वाला यत्नो से बढती है यत्न स्वय बुझ जाते हैं रोग औषधि पाकर दबता नही भडकता है। यही भाव उर्दू शायरो ने इस ढग से व्यक्त किया है—

मर्ज बढ़ता ही गया ज्यो ज्यों दवा की।

अनोखी चाह—इसी वैचित्र्य अथवा विपरीतता के कारण कवि ने बार-बार विरह को प्रेम को प्रेमी की रहनि को, चाह को अनोखा कहा है। घनआनन्द ने बार बार कहा है कि अजीब है यह प्रेम जिसम दर्शन अदर्शन मिलन अमिलन दोनो स्थितियो म एक सी दशा रहा करती है। प्रिय सर्वत्र दीखता है फिर भी अजीब पीडा है विरह की जो उठा ही करती है विरही को हारना पडता है पीडित होना पडता है, उसकी समस्थिति रहती है, मिलन-अमिलन दर्शन-अदर्शन दोनो स्थितियो म मन वही अटका रहता है—

(क) आनन्द के घन लखें अनलखें दुहूँ ओर,
दई मारी हारी हम आय हौ निरदई।

(ख) देखें अनदेखें तहाँ अटक्यो अनन्दघन,
ऐसी गति कहौ कहा चुम्बक औ लोह का।

(ग) घनआनन्द जीवन प्रान सुनौ, बिछुरे मिले गाढ-जँजीर-जरीं।
इनकी गति देखन जोग भई जु न देखन मैं तुम्हैं देखि अरीं॥

तरह-तरह से कवि ने इस भाव को अंकित किया है—सोने में जगना और जगने में सोना बना रहता है, इसी प्रकार हँसी मे रुदन, रुदन में हँसी, लाभ मे हानि और हानि मे लाभ निसर्ग रूप से व्याप्त है। ये विरोधाभासात्मक उक्तियाँ विरही की अत्यन्त विचित्र, कठिन और दुर्भर स्थिति की द्योतन करने के लिए ही दिखलाई गई हैं।

इसी से मिलता-जुलता भाव है वियोग में संयोग का। जिस प्रकार संयोग में वियोग की खटक रहा करती है उसी प्रकार वियोग में भी संयोग की विद्यमानता कही गई है। हृदय मे तो प्रिय रहता ही है, आँखों में तो वह झूला ही करता है, स्मृतियाँ तो उसका मानस संयोग कराया ही करती हैं भले ही वह पार्थिव रूप से वियुक्त अथवा दूर है। स्मृति और तड़प प्रिय को स्वप्न में ला मिलाती हैं पर वह मिलन दुःख को और भी बढ़ाने वाला होता है—

घनआनन्द जान-सञोग-सम ,विसम बुधि एकहि बेर बटै।
सपनो सो टर फिरि सौगुनो चेटक बाढ़त-डाढ़त घोटि घटै॥

घनआनन्द की इस उक्ति में कि 'कौन वियोग भरे अँसुवा, जु सँजोग में आगई देखन धावत'—वियोग के ही अन्दर संयोग की स्थिति दिखाई गई है। इस प्रकार अन्यत्र भी संयोग वियोग की जहाँ एकत्र स्थिति की चर्चा हुई है प्रायः वहाँ वियोग दशा के ही मानस अथवा स्वप्न संयोग की बात कही गई है।[1] यह मानस अथवा स्वप्न मिलन भी अन्ततः दुःखदाई होता है। इसीलिये कवि ने मिलन न मिलन दोनो दशाओं मे प्रेमी की एक ही स्थिति होने की बात कही है। विरही या विरहिन स्वप्न मे भी प्रिय का निरापद संयोग सुख नहीं प्राप्त करने पाते क्योंकि कभी मनोरथों की भीड़ जुट जाती है, कभी वैरिन पलकें खुल पड़ती हैं, कभी आँसू आगे आ जाते हैं—इसी प्रकार की कोई न कोई बाधा सामने आ जाती है। जो हो, प्रिय हृदय से, मन से दूर थोड़े ही हुआ करता है। पवित्र प्रेमी के निश्छल चित्त से ही ये उद्गार उद्गीर्ण हो सकते हैं—

जल मे बसै कुमोदिनी चंदा बसै अकास।
जो जाही को भावता सो ताही के पास॥ (कबीर)

कहा भयो जो बीछुरे, मो मन तो मन साथ।
उड़ौ जाय कितहू गुड़ी, तऊ उड़ायक हाथ॥ (बिहारी)

---

[1] देखिये 'सुजानहित', छन्द,७२, २१४, ५७

विरही घनआनन्द भी प्रिय को स्वप्न मे देखते हैं न स्वप्न मे देखें मन में देखते हैं आंखो म देखत हैं, स्मृति म पात हैं जहां-तहां सवत्र वही छवि उस झूलती दिखाई देती है। एक जगह उन्होंन कहा भी है कि हे प्रिय ! तुम हमारे हृदय से दूर गये ही कहां हो—

घेरयौ घट आय अतराय पटनि पट प,
ता मधि उजारे प्यारे मानुस के दीप हौ।
लोचन-पतग सग तजै न तोऊ सुजान
प्रान हस राखिबे कौं भरे ध्यान सीप हौ।
ऐसें कहौ कैसें घनआनन्द बताऊं दूरि
मन सिंहासन बठे सुरति महीप हौ।
बीठि आग डोलौ जौ न बोलौ कहा बस लाग,
मोहिं तौ वियोग हू मैं दीसत समीप हौ।

भला ऐसा प्रिय जो मन के सिंहासन पर ही विराजमान हो स्मृतियो का राजा हो और दृष्टि के आगे सतत डोलता फिरे उसे बिछुडा हुआ और दूर कहने का साहस कसे किया जा सकता है।

**विरह की अन्तिम दशा**—कुछ छन्दो मे विरह की अन्तिम दशा का कवि ने चित्रण किया है। वसे तो अनेकानेक छन्द हैं जिनमे वियोग की तीव्रतम व्यथा का अत्यन्त प्रखर रूप से चित्रण किया गया है परन्तु वियोग का आधिक्य उस बार-बार मृतक की सी स्थिति मे पहुचा देता है—मरणासन्न प्राणी की सी व्यथा कृशता कण्ठावरोध श्वास रुद्धता विवणता, आखो का पथरा जाना आदि बातें विरही मे भी पाई जाती हैं। कभी उसके प्राण प्रिय मिलन की आशा म बेतरह विकल रहते हैं और अधरो पर आ लगते हैं और अब गये तब गये की हालत को पहुँच जाते हैं—

(क) बहुत दिनान के अवधि-आस-पास परे
खरे अरबरनि भरे हैं उठि जान कौं।
अधर लग हैं आनि करिक पयान प्रान,
चाहत चलन ये सँदेसो ल सुजान कौं।

(ख) अवधि सिराएँ ताप ताते ह्वै कलमलाय
आपु चाय बावरे उमहि उफनात हैं।
× × ×
जानि अनखौ बानि लाडिले सुजान की सु
फरि हूँ पयान प्रान फरि फिरि जात हैं।

सतत जगत रह कर सतत इच्छा करत रह कर सतत वियाग सहत रह कर प्रमी इस दशा को पहुच जाता है कि वह अपन प्राणो का भी दान कर दना चाहता

है, बस इसीलिये कि प्रिय से एक बार भेंट हो जाय। विरग्ध कवियों ने इसी प्रकार के भाव व्यक्त किये हैं—

अब घनआनन्द सुजान प्रान दान भेटौ,
बिधि बुधि आगर प जाचत वहै घरो।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तो जरा और भी आगे गये हैं—

मुए हू प आखें ए खुली ही रहि जाइँगी।

विरही मृत्यु की कामना करता है, प्राणों की बलि चढाकर प्रिय को पाना चाहता है पर दो में से क्या एक भी सम्भव हो पाता है ? नहीं, उसे न प्रिय मिलता है और न परमाकांक्षित मृत्यु ही—

क्यों करि बितय, कैसें कहाँ धौं रितय मन
बिना जान प्यारे कब जीवन तें चूकियें।
बनी है कठिन महा, मोहिं घनआनन्द यौं,
मीचौ मरि गई आसरो मे जित ढूकिये॥

बहुत वेदना सहता है पर विरही मरता नहीं, मरेगा तो वेदनाओं से उसकी मृत्यु हो जायगी। इसीलिए वेदनाओं के लिए ही पैदा हुए विरही का और तो और मृत्यु भी निरादर करके चली जाती है—

फूटि फूटि टूक-टूट ह्व क उडि जाय हियो,
बचिवो अचभो, मीचौ निदरि कर गई।
आनन्द के घन लखें अनलखें दुहूँ ओर,
दई मारी हारी हम आप हौ निरदई॥

विरही प्रिय को ढूँढ़ता-ढूँढ़ता बावला हो जाता है उसकी मति खो जाती है, वह कहाँ जाय, उसे कहीं भी ठिकाना नहीं वह घर को उजाड करके वन में जा छिपता है (ऐसी हालत हो जाती है)—जीवन को नींद आ जाती है और मरण दशा कुछ बहुत दूर नहीं रहती—

बनी आनि ऐसी घनआनन्द अनसी दसा
जीबौ जान प्यारे बिन जागें गयौ सोय है।
जगत हँसत सौं जियत मोहि तातें नन !
मेरो दुख देखि रोवौ फिरि कौन रोय है॥

विरही की ऐसी मरणासन्न स्थितियाँ भी अंकित हुई हैं जिनमें अंत-अंत तक प्रिय की आशा की तरंग उठती दिखाई गई है।

**एक रीति-परक छन्द**—एक ऐसा भी छन्द मिलता है 'सुजानहित' में तो नहीं पर घनआनन्द के फुटकल (प्रकीर्णक) छन्दों में जिसमें जाने-अनजाने रस शास्त्रों में वर्णित सभी काम दशाओं का कवि ने नामोल्लेख किया है। वे विरही की स्थिति का तो निरूपण करते हैं परन्तु मुक्तककार का वहाँ प्रयोग हुआ है इसका निषेध नहीं

किया जा सकना। इसके आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि घनआनन्द को काव्य रीति का निश्चित और अच्छा ज्ञान रहा होगा। परन्तु तब यह भी प्रश्न उठेगा कि रीति के इतने बडे जानकार ने रीति को छोडा क्यो और कसे ? पर सच तो यह है कि मात्र इस एक ही छन्द के आधार पर यह समस्या कुछ बहुत बल नही पकड सकती। हाँ इस छन्द की प्रामाणिकता अवश्य स्वतन्त्र रूप से विचारणीय हो जाती है। वह छन्द इस प्रकार है—

लाख अभिलापन को चिंता गुनकथनन
सुधि करि दीन की उदेग दसा दहियौ।
लाप के प्रलाप उनमाद के सताप व्याधि,
पापिन की आप नेकु बेगि सुधि लहियौ।
जडता कहो न जात ज्यो तौ अति अकुलात
सनन कही है बात मेरी ओर चहियौ।
जानी दिलजान सों जु मानी वा सुजान सों,
निसानो द कै प्रान सों निदान प्रान कहियौ॥

---

## ६
# घनआनन्द की भक्ति

घनआनन्द प्रेमी होने के साथ-साथ परमोच्च कोटि के भक्त भी थे। भक्ति उनके उत्तरकालीन जीवन मे परिस्थितियों की विवशता के कारण आई। प्रेम ही उनका जीवन सर्वस्व था, परन्तु उस क्षेत्र में अपार नैराश्य और कोरे अधकार ने कालांतर में उनके जीवन की धारा ही मोड दी थी।

**प्रेम का वैराग्य और भक्ति मे परिणति**

वियोग और क्लेश के आतिशय्य से घनआनन्द मे जगह जगह वैराग्य का भाव पाया जाता है। जब सारा जीवन वियोग की वेदना का स्तूप-मात्र ही रहता है तब अंतिम समय में या बहुत दुःख झेल लेने के बाद कवि के मन मे यह भाव आता है कि मन इन चक्करों मे फँसा ही क्यों ? इसमे प्रेम का हल्कापन नहीं है वरन् दीर्घ-जीवन काल-व्यापी वेदना की यह तो एक अनिवार्य परिणति मात्र है। कवि को अपने मूल्यवान जीवन को यों ही विरह मे तड़पते हुए बिता देने का कोई खेद नही है पर वह अंतिम समय में निराश हो भगवदोन्मुख हो गया अवश्य लगता है। 'सुजानहित' मे ही उनके जीव को प्रबोधन देने वाले वैराग्य-परक छन्द मिलते हैं जिनके पढ़ने से ऐसा लगता है जैसे विरक्तिमूलक भाव विरह व्यथा से ही उत्पन्न हो।[1] 'सुजानहित' के उत्तरवर्ती अंश में इस आशय के कई छन्द हैं। उनके द्वारा वैराग्य के साथ-साथ भक्ति-भाव परक छन्दों के लिखे जाने का भी यही रहस्य है प्रेम जब लौकिक से हटा तो अलौकिक में समा गया। आखिर घनआनन्द के जीवन का सबसे मूल्यवान तत्त्व प्रेम ही तो था, व अपनी समूची सत्ता को प्रिय के प्रति अशेष रूप से समर्पित कर देने वाले प्राणी थे। लौकिक प्रिय की अप्राप्ति में उन्होंने अपना सर्वस्व कृष्णार्पित कर दिया था। 'सुजानहित' में अंतिम छन्दों तक आते-आते समूची भाव-धारा ही बदल गई है। प्रेम कृष्णोन्मुख हो गया है। लौकिक प्रेम की अलौकिक प्रेम में यह परिणति असाधारण है। घनआनन्द का प्रेम उनके जीवन में ही पूरी तरह व्याप्त था, कुछ

---

१ घनआनन्द ग्रन्थावली (सं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र), सुजानहित छन्द ३९९, ४०० ४०१ ४१७, ४३५ ४४०, ४४८, ४५५ ४८५, ४९४ प्रकीर्णक छन्द ८६ कृपाकंद छन्द १२

आरोपित नही। उस ओर सफलता न मिलने से वह अनुराग भडार कृष्णार्पित हो गया। वे स्वय लिखते हैं कि अपने प्रेम को सब ओर से खीच कर कृष्ण म केन्द्रित करना मेरे लिए आवश्यक हो गया था—'सब ओर तें ऐंचि के कान्ह किसोर मैं राखि भलौं थिर आस कर'। उनकी कृष्ण भक्ति परक रचनायें 'सुजान प्रेम' वाली रचनाओ से स्पष्ट भिन्न हो गई हैं। यह अवश्य है कि सुजानहित म भक्तिमूलक रचनायें परिमाण मे कम हैं परन्तु अन्य ग्रन्थो म उनकी भक्ति का स्वरूप और अधिक विकच रूप मे देखा जा सकता है।

**निम्बाक सम्प्रदायानुसारिणी भक्ति**

निम्बाक सम्प्रदाय मे भगवान कृष्ण की चरण सेवा का ही महत्व सर्वोपरि है, ब्रह्मा शिव सभी उनकी वदना करते हैं। अचिन्तनीय शक्तियो वाले कृष्ण अपने भक्तो का दुख दूर किया करते हैं। कृष्ण की प्राप्ति भक्ति द्वारा सभव है जो इन पाँच भावो मे पूर्ण होती है—शान्त, दास्य, सख्य वात्सल्य तथा उज्ज्वल। उज्ज्वल रस के भक्त हैं गोपी तथा राधा। निम्बाक सप्रदाय म उज्ज्वल अथवा मधुर भाव को सर्वोत्कृष्ट स्वीकार किया गया है। श्री निम्बार्काचाय ने युगल उपासना के साथ भगवान कृष्ण की माधुर्य एव प्रेम शक्ति राधा की उपासना को विशेष महत्व दिया था क्योकि उनका विश्वास था कि राधा म भक्तो की कामनाओ को पूर्ण करने की अक्षम सामर्थ्य है—

> अङ्गे तु वामे वृषभानुजा मुदा विराजमानामनुरूप सौभगाम।
> सखी सहस्रै परिसेविता सदा, स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम्॥

निम्बाक मत म साधको के लिए किसी विशेष भाव को ही स्वीकार करने का आग्रह नही किया गया। इसीलिये श्री भट्ट जी तथा श्री हरिव्यासदेवाचाय आदि ने जो माधुर्य रस के ही मान्य उपासक कहे जाते हैं दास्य, वात्सल्यादि भावो से भी भक्ति निवेदन किया है। भक्ति सम्बन्धिनी यह भाव विविधता घनआनन्द मे भी पाई गई है। फिर भी इतना अवश्य है कि इस सम्प्रदाय म प्रेम लक्षण अनुरागात्मिका परा भक्ति को ही सवश्रेष्ठ स्वीकार किया गया है। भक्ति क्षेत्र म राधा को महत्व देने वाले इस निम्बाक सम्प्रदाय से ही वृन्दावन मे राधावल्लभीय एव हरिदासी मतो का उद्भव हुआ। वृन्दावन के सखी सम्प्रदाय का सम्बन्ध स्वामी हरिदास स ही जोडा जाता है। वे भगवद् प्राप्ति के लिए गोपी भाव की भक्ति को ही सर्वोत्कृष्ट साधन मानते थे। उनकी इस भावना का बडा प्रचार हुआ और भक्ति के क्षेत्र म गोपी या सखी भाव का पुष्कल साहित्य लिखा गया। घनआनन्द की भक्ति भावना पर भी गोपी या सखी भाव की भक्ति की छाप देखी जा सकती है।

घनआनन्द ने अपनी भक्ति भावना का निवेदन राधा और कृष्ण के प्रति किया है। वे दोनो एक स एक बढ कर भक्ति के आलम्बन है, जितना भावावेश घनआनन्द ने कृष्ण के प्रति भक्ति निवेदन मे दिखलाया उससे कम आवेश राधा के प्रति भक्ति निवेदन मे नहीं। निम्बाक सम्प्रदाय म भक्ति के सभी भावो के लिए

अवकाश था इसी कारण घनआनन्द के भक्ति काव्य म भी एकाधिक भावो की भक्ति देखी जा सकती है। मन जब जैसी वृत्ति कर लेता था तब उस भाव की भक्ति व्यक्त करता था। घनआनन्द की भक्ति के आलबन राधा और कृष्ण ही नही उनका निवास एव लीला भूमि भी है इसीलिए शतशत रूपो मे कवि ने कृष्ण के ब्रज, गोकुल वृन्दावन, राधा के बरसाने आदि के प्रति अत्यन्त भक्ति भावापन्न पंक्तियाँ लिखी हैं। उसके जीवन मे इस समूचे ब्रज प्रदेश का ही अक्षय महत्व है।

**ब्रज**

ब्रज के माहात्म्य का, वहा के सुख और वैभव का, उस चिर अभिलाषित पावन भूमि के प्रति अटूट प्रेम का वणन कवि ने बार बार अनेकानेक कृतियो मे किया है—'ब्रजप्रसाद', 'ब्रजस्वरूप', ब्रजविलास', 'धाम चमत्कार', 'ब्रज व्यवहार' आदि मे उक्त भावनाओं का अनूठा प्रकाश देखा जा सकता है। जिस भक्ति भावापन्नता के साथ कवि ने अपने आपको व्यक्त किया है वह सहृदय व्यक्ति को डुबो देने वाली है, बहा ले जाने वाली है, उसके चित्त में भक्ति की पुनीत भावना का उद्रेक करने वाली है। कवि के हृदय म ब्रज के प्रति अपार अनुराग और पूज्य भाव है। उन्होने जिस ढग से उसका वणन किया है उसकी ध्वनि यही है कि हर प्राणी को इस ब्रजमण्डल म आकर रहना और अपने जीवन को सार्थक करना चाहिये। श्रीकृष्ण और राधा की इस लीला भूमि के विषय म काफी कुछ कह लेन पर भी उन्ह यही अनुभव होता रहा है कि यहाँ की शोभा, पवित्रता, महिमा आदि शब्दो म कथित नही हो सकती—

(क) यह सुख मुख ह्वै को उच्चरै। सुख ही निज सुख बरनन करै॥
(ख) गोकुल छवि आँखिनि ही भावै। रहि न सकै रसना कछु गावै॥
(ग) सब तें अगम अगोचर ब्रजरस। रसना कहि न सकति याको जस॥

ब्रजमडल की शोभा क ये वणन नितान्त सरल निर्व्याज, भक्ति भावापन्न महिमा गायन की शली पर लिखे गये हैं जिसमे वण्य के स्वरूप को प्रत्यक्ष कराने की अपेक्षा उसकी अनिवर्चनीय महत्ता का भाव मनोगत कराने का प्रयास किया गया है। आसक्त हृदय से उत्पन्न ये वणन पाठक के हृदय मे ब्रज-देश के प्रति सम्मान भावना और पूज्य बुद्धि जगाने म समर्थ हैं।

**ब्रज प्रसाद**

इस रचना म घनआनन्द ने अत्यन्त भक्ति विह्वल भाव से ब्रज का महात्म्य गान किया है और अत्यन्त हर्षोत्फुल्ल हो अपने और ब्रज के ससग की बात कही है। यह ब्रज ससार मे उज्ज्वल और प्रकाशित है क्योकि यह ब्रज लोचना के तार श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय है। ब्रज का प्रसाद शुक सनकादि ऋषि भी चाहते रहते हैं। ब्रज प्रसाद से सब दुख दूर होते हैं तथा तन मन परमानन्द स परिपूर्ण हो जाते हैं। ब्रज में नन्द, यशोदा, कीर्ति और वृषभानु रहते हैं जो ब्रज को अपने प्राणों क समान पालते और उसकी रक्षा करते हैं। इनके घर म नित्य

त्योहार-सा रहता है तथा ब्रजवासियों में परस्पर आत्यंतिक प्रेम व्यवहार गोचर होता है। वहाँ सभी के अभिलाष पूरे होते हैं। ब्रज के सरस सरोवरों और यमुना के तट पर कान्हा बलवीर के संग सदा विहार करते हैं। गाँव गाँव में श्रीकृष्ण-पहुँचते हैं और उनके साथ-साथ मोद और विनोद भी पसरता चलता है। ब्रज की बीथियों और बाग एक एक ठौर यहाँ तक कि ब्रजवासियों के नेत्र और मन श्याममय दिखाई देते हैं, वहाँ पर लोगों में कृष्ण के प्रति अनूठा प्रेमोन्माद दिखाई देता है। कवि का ब्रज के प्रति जो असाधारण रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो गया है उसकी शत शत रूपों में परिपूर्ण व्यंजना प्रस्तुत रचना में देखी जा सकती है। जो भाव विभोर हृदय इतना अधिक काव्य से उतरा है उसकी वास्तविक ब्रज प्रीति और प्रेम मग्नता कितनी रही होगी ? सचमुच ये छोटी छोटी कृतियाँ जैसे घनआनन्द के मधुर हृदय-खंड हों—

> यह ब्रज नित सुख सिंधु कलोलै। ब्रज को चन्द सदा ब्रज डोलै॥
> अँखिन को सुख ब्रज दरसन है। आनन्दघन बरसन सरसन है॥
> अहो भाग या ब्रज को लखौं। ब्रज की सींव न कबहूँ नखौं॥

**ब्रजस्वरूप**

ब्रज परम प्रेम से पूर्ण प्रदेश है शेष महेश जिसके रज की वन्दना करते हैं। ब्रज धाम निरवधि आनन्दमय है जहाँ श्यामसुन्दर अपने प्रेम पुंज परिकर के साथ सदा निवास करते हैं और लीला सुख-सम्पदा का भोग करते हैं। नन्द और यशोदा की अत्यन्त कान्तिशालिनी और रमणीय ब्रज वसुन्धरा का क्या वर्णन किया जाय। ब्रज के ईश में अनुरक्त ब्रज वसुमती की द्युति देखने में अद्भुत है। नन्द गाँव तथा अन्य गाँवों में गोपसमूह निवास करते हुए अत्यन्त शोभा देते हैं। सभी गोप ग्वालों में परस्पर बड़ा स्नेह है गोधनों के ठाट का क्या कहना अपरिमित परिमाण में धन और धान्य सुलभ है, घरों के पास में ही खरिक होती है, घरों के बगल में स्वच्छ गलियाँ और गलियारे हैं। घर घर में मंगल गीत होता रहता है और नित्य उत्सव का सा दृश्य गोचर होता है। ऊँचे ऊँचे प्रकाशयुक्त चौसाल और ललित चौहट्ट देखते ही बनते हैं। चारों ओर शुभ और सुन्दर वृक्षावलि हैं निकट ही साँवले सरोवर हैं जो मानो ब्रजमोहन की छवि देखने के अमल दर्पण हैं। श्याम के सुभग अंगों की पावन गंध से ब्रज-वन सदा महकता रहता है उसके सुख का क्या वर्णन किया जाय। जमुना के किनारे कदम्बों की छाँव में केलि के अनुकूल सुन्दर और निर्जन स्थान है। जैसा आनन्द चौमासे में बरसता है वैसा ही आनन्द वर्ष भर बरसता रहता है। ब्रज में अभिराम श्याम बसते हैं इसलिए सारे सुख, सारी विभूतियाँ ब्रज में पानी भरती हैं हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। इस तरह ब्रज में होने वाले आनन्द का शत धन रूपों में कवि ने वर्णन किया है। वह कहता है कि ब्रजवासियों का आनन्द मेरे चित्त में चढ़ा हुआ है ब्रजमोहन और ब्रज वधू का विलास देख कर मेरी सारी आशायें पूरी हो जाती हैं—कवि की यह भावना मधुरा भक्ति की भावना के नितान्त मेल में है जिसमें राधाकृष्ण के प्रेम और संयोग सुख में ही भक्त अपनी तृप्ति समझता

है। ब्रजवासियो का सत्सग लाभ कर कवि अपना जन्म सफल समझता है, वह ब्रज का है ब्रज उसका है।

**ब्रजविलास**

इस रचना म दो बातें मुख्य रूप से कही गई हैं। एक तो ब्रज के ठौर-ठौर की विभूति और सौदय का वर्णन, दूसरे राधा की कृष्ण प्रीति का वणन। ब्रज भूमि के कण-कण से कृष्ण की प्रेम क्रीडाओ की स्मृति जुडी हुई है। ब्रजनाथ की कृपा से ही ये नेत्र ब्रज भूमि का दशन पा सकते हैं और हृदय ब्रज-वन के माधुय का अनुभव कर सकता है। वे नन्द, ग्वाल-बाल, गोधन आदि महाभाग हैं कृष्ण जिनके प्राणो के आधार हैं। कृष्ण न ब्रज प्रदेश को अपनी प्रेम दृष्टि की अपरिमित वृष्टि से सीच कर चिरकाल के लिए हरा भरा बना दिया है। इसके बाद स्वय राधा के ही मुख से राधा और कृष्ण की प्रीति का वर्णन कराया गया है। राधिका कहती है कि रात दिन मेरे कानो मे कृष्ण की मुरली की ध्वनि रमी हुई है और आँखो मे उनकी मूर्ति, मेरे अग अग उन्ही के मोह की छाक स जके हुए हैं। घूँघट की ओट होन पर भी दृष्टि उधर ही जाती है हृदय का धैय खो गया है और हर समय एक ही अभिलाषा रहती है—**'जागति हौं बतराति हौं सग सोवन की पीर'**। कृष्ण का विरह कवल राधा का ही दुख नही है समग्र ब्रज की व्यथा है। ब्रज का यही अमल, अगाध रस कवि के प्रेम का विषय है और उसका मन उसी म डूबता-उतराता रहता है उसका मन मोहन-पद अकित ब्रज की रज मे सदा लोटता रहता है तथा ब्रज और ब्रजमोहन के माधुय एव रस लाभ की लालसा कभी मिटती नही।

**धाम चमत्कार**

इस रचना म ब्रज के वनो के सुख का वणन हुआ है जो कृष्ण की लीला एव विहार की भूमि है। वहाँ रहन से हृदय म अपरिमित ओज, माधुय और उत्साह का सचार होता है। इसके स्थान स्थान की रुचिर शोभा अकथनीय और विस्मयकारी है। इसकी रज म जसे परम तत्व का सार समाया हुआ है जिसे पान के लिए शिव, ब्रह्मा शेष सनकादि लालायित रहते हैं। धन्य भाग हैं वे ग्वाल-बाल जो कृष्ण के परिकर बने हुए हैं। इस ब्रज वनस्थली की अतुल अभूत माधुरी से शकर अवधूत भली भाँति परिचित हैं। इस धाम के समस्त आनन्द तक पहुँच सकने की क्षमता मन भी नही रखता तथा श्रीकृष्ण की यहाँ पर होने वाली अद्भुत लीलायें अधिकारी भक्तो की बुद्धि को भी चकित कर दने वाली हैं। ब्रज-वन की अनेक बहुरगी शोभायें हैं जिनका ओर छोर नही। अत्यन्त भाव विह्वल हो कवि कहता है कि मगलनिधि गोपाल-उपासी ब्रजवासी धन्य हैं यहाँ के नित्य मगलचार और व्यवहार धन्य हैं। देखने पर नेत्रो को हर्षातिरेक से आत्मविस्मृत कर देने वाला ब्रज का सुख, वहाँ सतत छाये रहने वाले विनोद कुँवर शाह के हृदय को हर लेने वाली ब्रज की वनश्री और वन सम्पदा का कथन नही किया जा सकता—

या ब्रज सौं यह ब्रज ही आहि । ब्रज को पटतर दीज काहि ।।
ब्रज बन्दावन की भलि जय । ब्रज बन्दावन लीला मय ।।
ब्रज देखिन की कृपा मनय । याही तें यह ब्रज रज पयै ।।

यमुना यमुना यश

प्रगाढ भक्ति भावना स प्रेरित हो घनआनन्द न यमुना का भी यशोगान किया है । यमुना जग की अपूव काति उसकी मधुरता स्वाद की अकथनीयता धारा की अगाधता, उसके रूप की रम्यता लहरो की रुचि रोचकता उसके जल की त्रिताप हारिणी और परम पद दायिनी शक्ति चितामणि उपमित मनोकामनापूरक शक्ति उसक स्पश की हर्षोत्तेजकता उसकी परमाथ साधन सक्षमता और मगलमयता आदि का कवि ने उत्साहपूवक वणन किया है । यमुना के तट पर गोपाल बाल क्रीडा करते हैं यहा अगम ब्रह्मानन्द की उपलब्धि होती है इसमे स्नान करक श्रीकृष्ण अपूव सुख का अनुभव करत हैं, इसक रमणीय कुजो म नित्य विहार होता है भानुनन्दिनी कहलान के नाते यमुना श्री राधाजी को अत्यन्त प्रिय है, इसके मनोरम तट पर प्रीति के अकुर नित्य प्रकट होते हैं, इसके दशन-मात्र से सासारिक भ्रम बाधायें दूर होती हैं और दुख तिमिर का नाश होता है । श्यामवण और गम्भीर गुणो वाली यमुना कृष्ण और बलराम की गाचारण भूमि है यह श्रीकृष्ण क अग रागो के रस से पगी है, इसके पुलिन पर लीला का अखण्ड आनन्द उपजता है । कवि ने यमुना के प्रति अपने हृदय का तादात्म्य स्थापित करते हुये कहा है—

या जमुना को भाग निकाई । मति अति रीझि विचार बिकाई ।।
या जमुना को हौं ही गाऊँ । या जमुना को सुदरस पाऊँ ।।
या जमुना में नित हो न्हाऊ । या जमुना तजि कहूँ न जाऊँ ।।

गोकुल गोकुल-गीत

गोकुल की महिमा घनआनन्द ने वणनातीत बताई है जहा नन्द महर के द्वार पर गोप और ग्वालो की सतत भीड लगी रहती है । कुँवर कन्हाई जहाँ सबके जीवन प्राण हैं और बडभागिन यशोदा अपने सत्कर्मों और पुण्य का फल अपन ही सामने देखे ले रही है । उसक समान भाग्यशालिनी और महिमामयी कौन है जिसके पुत्र के प्रेम मे सारा ब्रज ही पगा हुआ है । नन्दराय का भाग्य कहने योग्य नही जिनके लाडले लाल मोहन का खेलना, हँसना, चलना, गाना प्रत्येक जन के जीवन म रस की वृष्टि करता है । यमुना तट पर बस गोकुल गाँव की शोभा न्यारी है , वह नेत्रो का विषय है वाणी का नही । वहाँ कमल नयन की चितवन सभी को आनन्दित किये हुये हैं । गोकुलवासियों के लिए सोते जागते एक ही सुख है, कृष्ण के साहचय का सुख जिसके आगे त्रिलोक की सम्पदा तृण के समान त्याज्य है । यहाँ के लोग कृष्ण-लीलाओ म ही विभोर और पुलकित बने रहते हैं । इस गोकुल की छवि सदा नेत्रों में बसी रहे यह घनआनन्द की कामना है ।

**वन्दावन व दावन मुद्रा**

वृ दावन का माहात्म्य-गायन तथा उसके प्रति अपनी पूज्य भावना का प्रकाशन करते हुए घनआनन्द लिखते हैं कि अब मैं राधा जी के वृ दावन का गुण गान करता हूँ। कैसा वह वन है जिसमे व्रजमोहन मन ही मानो सतत रमण करता रहता है। यहीं राधा और मोहन नित्य प्रेम क्रीडा करते रहते हैं, दोनो के नेत्रो म वृ दावन पुतलिया की तरह बसा रहता है। वृन्दावन म यमुना की तरल तरगें शोभा देती हैं। यमुना के तीर पर ही यह वन स्थित है। इसके गुण-गान से तो मेरी वाणी भी सरस हो गयी है— **तीर भूमि बनि रह्यौ सदा बन। जै जमुना ज जै व दावन'** ॥ गौर श्याम युगल सतत एक रस हो यहा विहार करते रहते हैं। यहा ललित लतालियो के सग रस वलित वृक्ष महामधुर फलो से परिपूर्ण हो शोभा देते हैं सुखद सरोवर हैं, पवन मह मह करता हुआ परिमल वहन करता है। राधा और कृष्ण अपनी प्रेम क्रीडाओ से वृ दावन म जगमग करते हैं और वृन्दावन की अलौकिक आभा के बीच छिप भी जाते हैं। वृ दावन और यमुना-तट पर शोभा की नित्य भीड लगी रहती है। प्रिय और प्रिया का आना-जाना देखते ही बनता है। यहा का मोद माधुय त्रिलोक से न्यारा है यह राधा प्रिय के प्रेम को पुष्ट करने वाला है तथा पवित्र रुचि को सब प्रकार से सहज ही तुष्ट करने वाला स्थान है। वृ दावन मे कु जो का परिकर है तथा यमुना पुलिन की रेणु तो मानो चि तामणि चूण है। इस अकथ अगम्य और अलौकिक वन में कौन है जो किसी प्रकार का दोष पा सके ? मैं वृ दावन का हूँ वृ दावन मेरा है मैं इसका रखवाला हूँ यहा महामधुर रस की धारा बहती रहती है।

**गोवधन गिरि पूजन**

कवि लिखता है कि सारे ब्रजवासियो को अत्यन्त प्रिय लगने वाला गोवधन पूजन का दिन आ गया। गोधन पूजन के उत्साह का क्या कहना घर घर कडाह चढे हैं और नाना प्रकार के पक्वान बन रहे हैं। दोर, गाडिया और वहँगियाँ भर भर कर और हृदय म गोधन परिक्रमा के परम सुख की कल्पना से भर भर कर सारे गाँव के लोग जब कृष्ण के साथ गोवधन पवत की ओर चलने लगते हैं उस समय की शोभा कही नही जाती। जब दीपदान का समय आता है तो इतने दीपक जल उठते हैं कि सभी दिशाओ की चमक फीकी पड जाती है। गोपी ग्वालो की भारी भीड जब परिक्रमा करने लगती है उस समय जो कोलाहल होता है उसे सुन कर ससार विस्मृत हो जाता है। कृष्ण माताओ से अपने वस्त्रो म पक्वान भरा लेते हैं और अपने सखाओ को बाँटते हैं तथा मधुमगल नामक अपने सखा को पकड पकड कर नाचने हैं। इस प्रकार रुचिपूवक व गोवधन की परिक्रमा करते हैं थका हुआ जान कर नन्द जी उन्हें कभी कभी गोद म भी ले लेते हैं लेकिन उतर कर फिर पाय-पाँय चलने लगते हैं उनके हृदय में गोवधन की महिमा का भाव रहता है। कृष्ण का पदल चलना और ललित स्वर से वशी बजाना, उनके चरण नखो की ज्योति के सामने चन्द्रमा का भी मन्द

पड़ जाना आदि देख कर यशोदा माता और व्रजवासी सभी अपना भाग्य सराहते हैं। गोवर्धन की पूजा के अनन्तर सब लोग घर लौटते हैं घर घर आनन्द और मंगल-गीत होते हैं। लोग बलराम और कृष्ण को आशिष देते हैं जिनके कारण अपरिमित सुख का यह संयोग घटित होता है।

बरसाना

व्रज मंडल में बरसाना नाम का एक परम पवित्र पर्वत है जहाँ गोर शरीर वाले हरि प्रेमी महाराज वृषभानु का राज्य था। उसी पर्वत के नाम से यह गाँव प्रसिद्ध था जो उसके समीप ही बसा था। बरसाना गाँव की शोभा का तो कहना ही क्या और उस भाग्यशालिनी धरती की महिमा का क्या वर्णन किया जाय— मानिनि भरी भूमिरस भीनी। काहू कर बिरचि रचि कीन्हीं॥ प्रेम में रसमगी कीर्ति कुमारी राधिका वहाँ अपनी सखियों के साथ खेला करती थीं। अपनी-अपनी आलियों (कांछ) में जा क्या भर भर कर सब हँसती थीं हिलती मिलती और गीत गाती थीं गोचारण भूमियों गलियों एवं कुंजों में विचरण करती थीं और जब मन की उमंग के साथ वचनोच्चार करती थीं तो ऐसा लगता था कि उनकी वाणी के अमृत से सारा वन ही सिंचित हो उठा है। इस प्रकार अपनी सखियों के साथ पर्वत-वन बाग-तड़ागों में राधा सुखपूर्वक हँसती और विविध प्रकार के कौतुकों में रसमग्न होती रहती थी। सखियाँ फूलों के आभूषण बनाती हैं और जहाँ जाती हैं अपने वदन चन्द्र की चन्द्रिका से सब कुछ को प्रकाशित करती चलती हैं। अचानक छबीले छैल आ निकलते हैं और न जाने कौन सा जादू डाल-डाल में कर जाते हैं कि सब के मन और नेत्रों को अपने हाथ में ले लेते हैं। मुरली की सम्मोहक तान हर ग्वालिन के हृदय में अनोखी लगन जगा देती है रसिक शिरोमणि की चितवन सभी के लिए सम्मोहन अस्त्र का काम देती है। यह प्रीति माधुरी बरसाने में नित्य हुआ करती है—

रूप माधुरी पीवत प्यावत। व्रज जीवन कों जीव जिवावत॥<br>
नित यह घुरस रहत बन गह्वर। सच्यो रहत आनन्दघन को हर॥

मुरली मुरलिका मोद

कृष्ण के मादक अधरों पर विराज कर मुरली वन में बज उठती है। उसकी ध्वनि को सुन कर लोग छक जाते हैं वह प्राणों में मँडराने लगती है उसके स्वर हृदय का धैर्य से रिक्त कर देते हैं और वह हृदय में विषम पीड़ा जगा देती है। नटवर की मुरली की ध्वनि वन वल्लरियों के बीच भर उठी है यमुना की गति तो कहते नहीं बनती उसके दोनों तट जैसे वेणुनाद से पट उठे हों उसमें जल के स्थान पर मानो मुरली स्वर की ही धारा बहने लगती है। कुंजों के पुष्प-समूह मुरली का स्वर को सुनकर झर पड़ते हैं। चराचर सृष्टि चेतरह द्रवीभूत हो जाती है। पक्षी टकटकी बाँध कर दंग रह जाते हैं और वेणुनाद के श्रवण में ही जीवन का चरम लाभ मानते हैं। कृष्ण ने ऐसी विषम रागिनी अलाप दी है कि उसकी ध्वनि थावर-जंगम' सभी के

अन्तर मे व्याप्त हो गई है। उसके स्वरो की अनी कानो की साले टालनी है। उसकी अनुगूँज सतत कानो को सुनाई पडती है—

> बिन बाजेहूँ बजनि रात दिन। कौन भाँति की गहन गही इन ॥
> घायल प्रान घूमि घुरि मूझे। सुर सामुहो धरनि घिरि जूझे ॥
> विष की लहरि सुरनि सग सरस। तीखीताननि सरस बरसै ॥
> मुरली कित को वैर बिसाह्यो। कियो विधाता याको चाह्यो ॥
> जग आप अरु हमें जगाय। तातो धुनि उर आग लगावै ॥
> क्यों ब्रज बस कौन विधि जीव। विष सौं नाद अमत लौं पीव ॥
> बिसवासी काहो बम याक। कछु न विचारत या रस छाके ॥

इस मुरली ने ससार को मोहने वाले कृष्ण को मोह लिया है फिर भला किसका हृदय है जो इसके वशीभूत न हो। यह कृष्ण के अधरो से क्षण भर भी न्यारी नही होती। इस घरघाती ने कितने घर बर्बाद कर दिये हैं! धन्य है वह वश जहाँ इसने अवतार लिया। इसने तो सभी सुख अपने वश कर रक्खे हैं! ब्रजनायक तक जिसके प्रति अनुरक्त रहते हैं ऐसी मुरली तो पर पूजने लायक है। हे सखी! वशी तो मिलाप रचाती है और तरह तरह के नाच नचाती है वृदावन मे यमुना के तीर कल्प वृक्ष की छाया म मुरली महामान्दायी रास का विधान कराती है जिसम सभी अपना मनोवाछित रस प्राप्त करते हैं। ऐसी प्राण प्रन मुरलिका चिरजीवी हो।

**भक्ति के विविध भाव पदावली और कृपाकन्द**

घनआनन्द ने भक्तो के रग-ढग पर चल कर सूर, तुलसी और मीरा के समान गेय पदों की भी रचना की है जो सख्या म सहस्राधिक हैं। इन पदो मे मुख्यत तो गोपियो तथा राधा के कृष्ण प्रेम को ही नाना रूपो मे व्यक्त किया गया है किन्तु वह कुछ साधारण प्रेम नही भक्ति की कोटि को पहुँचा हुआ परा प्रेम अथवा अनुरक्ति है जिसमे घनआनन्द की निजी कान्ता भाव की उज्ज्वल भक्ति भावना ही सवलित हुई है। घनआनन्द के भक्ति जिन अन्यान्य रचनाओ म मुखर हुई है उनमे कृपाकन्द का स्थान महत्वपूर्ण है इसी प्रकार पदावली भी भक्ति की दृष्टि से देखने योग्य है। हम देखते हैं कि घनआनन्द ने दास्य, सख्य और कान्ता भाव से अपनी भक्ति का निवेदन किया है। कान्ता, सखी या गोपी भाव की भक्ति निम्बार्क सप्रदाय मे विशेष प्रचलित तो हुई परन्तु अन्य भावो से भगवद् भजन का निषेध न था इसलिए भक्ति की भावना के क्षेत्र म ये कवि अपनी चित्तवृत्ति के अनुसार अपना भाव निवेदन किया करते थे।

**दास्य भाव**

दास्य भाव के पदो म घनआनन्द लिखते हैं—हे हरि! अब मेरा स्वार्थ परमार्थ सभी तुम्हारे हाथ है तुम्ही से हमारी याचना है। तुम्हारे गुणो का मैं क्या गान करूँ, तुम तो अपार गुणो की खान हो। तुम्हारे अपरिमित चरित्र के समुद्र को तो देखते ही मैं विस्मय की तरगो म डूबने लगता हूँ, तुम्हारी कृपा के वाहित्र द्वारा

ही मैं उसे पार कर सकता हूँ। हे गोपाल ! मैं तुम्हारे ही गुणो का गाता हूँ मैं सिर नवा कर विनय करता हूँ कि मुझ दीन जन पर कृपा करो। तुम्हारी कृपा के मेघ जब बरसगे तभी य प्राण पपीहे जीवन लाभ करेंगे। हे हरि ! मैं झूठा हूँ और तुम सच्चे, मुझे भी सच्चा क्या नहीं बना देते ? इस ससार के चक्करो मे पड कर मैं बहुत नाचता फिरा—

जग जजार असार लोभ लगि नाचि थक्यौ बहु नाचौ।
अब आनदघन सुरस सींचिए लग महाँ दुख आँचौ॥

इसी तरह स जाने कितन दिन बीत गय य नत्र आपके दशन के बिना रिक्त से इधर-उधर भटकते फिरते है। इस प्रकार अपन कृत्य पर पश्चाताप, अपने दोषो की स्वीकृति, ईश्वर के सवशक्तिमान होने म परिपूण विश्वास अपने दोषो को दूर करन की भव-बध स छुडान की कृपा करने की याचनाय कवि करता पाया जाता है—

(क) आयौ सरन बिकार भरयौ।
तुम सरबज्ञ अज्ञ हौ बहु बिधि जु कछु न करिबे सु कछु करयौ।
(कृपाकन्द)

(ख) भूल भरे की सुरति करौ।
अपनो गुन निधानता उर धरि मो अनेक औगुन बिसरौ।
या असोच कौं सोच कीजिय हा हा हो हरि सुदर ढरौ।
कपाकन्द आनन्द कन्द हौ पतित पपीहा-तपति हरौ॥
(कृपाकन्द)

अपने सम्बध म कवि कहता है कि अपने मन की असाध्य स्थिति हे अन्तर्यामी ! मैं तुमसे क्या कहूँ—

असुचि असोच पोच प गुनि सुनि उरझत सुरझत पतित सकामी।
सरसि दरसि बरसौ परसौ जू आनदघन चातक हित नामी॥
(कृपाकन्द)

कृपाकन्द क छन्दा म कवि लिखता है कि उसकी भक्ति कृष्ण के प्रति अनन्य है, अपने आराध्य की सामथ्य और कृपा क प्रति उसका पूण विश्वास है वह उन्हीं की शरण है और उसके लिए उनका कृपा स बढ कर ससार म कुछ नही। कम धम, हानि लाभ लोक परलोक सभी कुछ की वे अवहलना कर देते हैं क्योकि उन्ह कृपापूण दृष्टि से देखन वाले का आसरा है—

परे रहौ करम धरम सब धरे रहौ,
डरे रहो डर कौन गन हानि लाहे कौं।
ऐसी रस रासि लहि उसह्यौ रहत सदा
कृपा दिखवया काहू दिसि देखें काहे कौं॥

घनआनन्द न ईश्वर की कृपा क प्रति हो दृष्टि लगा रखी है और ससार की शष वस्तुओ क प्रति पीठ कर दी है। कभी वे कहत हैं—हे माधव ! मेरी पुकार

पर कब ध्यान दोगे और कब मेरे हृदय के आगन म अपनी मपूण ज्योति के साथ पधारोगे ? भक्त की ईश्वर सानिध्य की अभिलाषा देखिये—

> जिहि जिहि ठौर जाहि जाहि भाँति जानराय,
> जुगनि जुगनि जगमग हौ जनन कौं।
> पूरन-कृपा पियूष पालत रहे हौ सदा,
> प्रानन तें प्यारे अपनन के पनन कौं।
> गोबिंद गुसाईं त्यौं ही माँगत हौं गोद-मेह
> गिरा अगराई गुन गरिमा गनन कौं।
> मन घनआनन्द तिहारी चोप चातक ह्वै
> चाहत है सनिधि सवादनि सनन कौं ॥

**सख्य भाव**

अनेक पदो और छन्दो मे घनआनन्द ने ईश्वर के साथ मत्री अथवा बराबरी के भाव से बातें की हैं और अपन भावो का निवदन किया है। ऐसे अवसरो पर उन्होने कहा है कि तुम मुझे भी रास्ते से क्यो नही लगा देते ? मेरा भी उद्धार क्यो नही कर देते ? तुम कैसे हो जो अपनो की इतनी भी चिन्ता नही करते ? मुझ सोते हुए को प्रबुद्ध और जाग्रत क्यो नही करते ? परन्तु सख्य भाव के कथनों की सख्या अत्यन्त सीमित है।

**मधुर अथवा कान्ता भाव पदावली**

सूर और मीरा के पदो मे जो भावुकता पाई जाती है वही घनआनन्द की पदावली मे भी देखी जा सकती है। गोपियो का जसा प्रेम कृष्ण के प्रति सूर आदि दिखा आये हैं वैसा ही प्रेम भाव घनआनन्द ने भी दिखाया है। इन पदो म शुद्ध और वासनाहीन, पुनीत प्रेम भाव की झलक मिलती है। उज्ज्वल रस का इन छन्दो मे भी बडा सुन्दर परिपाक हुआ है। ये पद अन्तत घनआनन्द की मधुराभक्ति (जो निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्ति के मेल मे है) का ही पोषण करते हैं। कान्ता भाव की भक्ति गोपियो के कृष्णानुराग वणन के ब्याज से सुन्दर और अपेक्षित रूप मे व्यक्त की जा सकी है। सखी या गोपी भाव स मानो घनआनन्द ने ही कृष्ण का ध्यान किया है, उनसे प्रेम किया है और उनकी लीलाओ म भाग लिया है। उनके ससग का मानस सुख प्राप्त किया है।

मधुर भाव की भक्ति घोषित करन वाले पद और छन्द बहुत बडी सख्या म लिखे गये हैं जिनम कहा गया है— ह ब्रजनाथ ! समय बीत गया और तुम नही आये हम अपनी चेतना नहीं रह गई है। हम होश कौन दिलाये मन भी तुम्हारे साथ चला गया है। तुम्हारी बाट जोहत-जोहत दृष्टि भी मन्द पड चली है और रसना भी तुम्हारे गुणो की गाथा गाते-गात थक गई है। तुम हमारी सुध कब तक लाग ? ह जान मनि ! समय बीता जा रहा है बाद मे यदि आय तो क्या लाभ—

हमारी सुरति कब धौं तुम लहौ ।
अवसर बीत्यो जात जानमनि बहुरि आय कहा कहौ ।।
आनन्दघन पिय चातक कूक थक पछितायोई महौं ।। (पदावली)

हे मेरे प्रियतम ! अब मेरा तुमसे स्नेह हो गया है। हे रूप उज्यारे ! हगतारे ! प्राननि प्यारे ! हमसे कुछ कहते नहीं बनता और कहे बिना रहते नहीं बनता तथा दिल पर जो बीत रही है उसे सहते नहीं बनता तुम अपना प्रण क्यों नहीं निभाते ? घनआनन्द कहते हैं—

मोरे मितवा तुम बिन रह्यो न जाय।
विषम वियोग जराव जियरा सह्यो न जाय।
निपट अधीर पीर बस हियरा गह्यो न जाय।
आनन्दघन पिय बिछुरन को दुख कह्यो न जाय ।।

हे प्रिय ! मेरे हृदय में तुम्हारी लौ लगी हुई है तुम कब मेरे नेत्रों के पाहुने बनोगे ? कब मैं अपने आँसुओं के जल से तुम्हारे चरणों को धोकर भाग्यशालिनी बनूँगी ? इस प्रकार के प्रेम की तड़प से भरे शत शत सहस्र सहस्र कान्ता भाव की भक्ति के उद्गार घनआनन्द व्यक्त कर गये हैं जिन्हें हम उनकी पदावली में विशेष रूप से देख सकते हैं। देखिये भक्तिभाव की कैसी मंगलमयी आरती कवि उतार रहा है—

नेह सों भोय सजोय धरी हिय दीप दसा जु भरी अति आरति।
रूप उज्यारे अजू ब्रजमोहन सौंहनि आवनि ओर निहारति।
रावरी आरति बावरी लौं घनआनन्द भूलि वियोग तिवारति।
भावना धार हुलास के हाथनि यौं हित मूरति हेरि उतारति ।।

**राधा के प्रति भक्ति निवेदन सखी भाव की भक्ति**

अपनी अनेक कृतियों में घनआनन्द ने राधा के प्रति अपनी भक्ति और अनन्य निष्ठा का परिचय दिया है। निम्बार्क सम्प्रदाय की भक्ति भावना के अंतर्गत राधा की अविकल प्रतिष्ठा थी ही क्योंकि वे भक्तों के मनोरथ पूर्ण करने की अक्षय से सम्पन्न मानी गई हैं। कवि ने उसके प्रति अपनी उत्सर्गपूर्ण निष्ठा का बारम्बार प्रकाशन किया है। घनआनन्द के निम्बार्क सम्प्रदायानुयायी होने की बात विदित ही है किन्हीं शेष ने इन्हें परम्परा की रीति का नाम भी करा दिया था तथा सम्प्रदाय में प्रचलित सखी भाव की उपासना पद्धति इन्होंने अंगीकार कर ली थी। सखी भाव से उपासना करने वाले महात्मा भक्ति-साधना का बहुत पथ पार कर चुकने के बाद ही साम्प्रदायिक सखी नामों से पुकारे जाते हैं। घनआनन्द का भी 'बहुगुनी' नाम रखा गया था जिससे यह सिद्ध है कि ये भी भक्ति साधना की ऊँची भूमिका पर पहुँच चुके थे तथा महात्माओं की कोटि में परिणित होने लगे थे और सम्प्रदाय में सखी भाव का इनका बहुगुनी नाम प्रचलित भी हो गया था। साधकों और सिद्धों से भी उच्चतर भक्ति-साधना करने वाले घनआनन्द सुजानों की कोटि में

ले लिये गये थे। इनकी सखी भाव की भक्ति का प्रकाशन करने वाली रचनायें अनेक हैं। उन्ही के आधार पर धनआनन्द की सखी भावना का परिचय दिया जा रहा है।

**वृषभानुपुर सुषमा-वर्णन**

इस रचना मे बरसाने मे रहने वाली श्रीकृष्ण की परम प्रिया श्रीराधिका जी की दासी अथवा सखी बन कर कविवर घनआनन्द ने उनके साथ अपने रहने की बात कही है। वे अपने को राधिका जी की 'बहुगुनी' नाम की सखी बताते हैं और बरसाने का ही अपना सुन्दर खेडा (गाव) कहते हैं। वे आगे लिखते है—मैं उनका सब काम करती हूँ उनकी दृष्टि की कोर निहारती रहती हूँ और सदा उनकी इच्छा का अनुगमन करती हू उन्ह सब प्रकार की सीख मैंने ही दी है (जरा यह नैकट्य भाव देखिये) और सब प्रकार का रसोत्तेजक शृगार मैंने ही किया है नाना प्रकार स उनकी कवरी या वेणी मैं ही बाधती हूँ और इसी से श्रीराधा जी ने मरा नाम बहुगुनी रख छोडा है। उन्ह मैं अच्छे-से-अच्छे तान सुनाती हूँ खुद भी रीझती हूँ और उन्ह भी रिझाती हूँ। अनुभूति भरे स्वर स प्रेम की उमग से सने छन्द और कवित्त मैं उन्हें सुनाती हूँ। श्रीकृष्ण की मुरलिका की स्वर लहरी उन्ह बहुत प्रिय है उसी स्वर का अनुसरण कर मैं भी कुछ मधुर स्वारालाप करती हूँ जिससे उनकी प्रीति की गाठ कुछ खुलती है। इस प्रीति की रस रीति म पारगत समझकर ही श्रीराधिका जी न मुझे अपनी लाडिली लौंडी' बनाया है। उनकी परम प्रिय दासिया ललिता विशाखा और सहचरियाँ मुझे बहुत मानती हैं तथा मरे कार्यों को पसद करती हैं। व मेरे मस्तक पर अपना हाथ रखती हैं तथा श्रीराधा जी के सामने मरे कार्यों की सराहना करती हैं और मैं भी उन्ह श्रीराधा जी के ही समान मान देती हूँ तथा उन्ह प्रसन्न रखती हूँ। उन्ही की कृपा से मैं श्रीराधा जी को भी अत्यन्त प्रिय हूँ। ये सारी बातें सखी भाव की भक्ति भावना और परम्परा के ही अनुरूप हैं।

**प्रिय प्रसाद**

प्रिय प्रसाद मे कवि ने अपनी ठकुरानी और वृन्दावन की रानी श्रीराधा की स्तुति और महिमा का गान किया है तथा उनकी अपने प्रति कृपा एव अपनी उनके प्रति भक्ति और निष्ठा का परिचय दिया है—**राधा अतुल रूप गुन भरी। व्रजबनिता कदय मजरी॥'** ऐसी राधा मदनगोपाल को प्रिय है, वे अपनी बाँसुरी म उसी का नाम बजाते रहते हैं। घनआनन्द कहते हैं कि सोते-जागत रात दिन हर समय मैं राधा की ही वदना करता हूँ। राधा ही मरी सच्ची स्वामिनी है और उनके लिए ही मैं नृत्य करती हूँ। यही से सखी भाव की भक्ति उमडने लगती है और कवि कहने लगता है कि राधा जो कुछ कहती है मैं वह सब करती हूँ महल म उनकी टहल परिचर्या आदि सभी कुछ। उन्ही का रिझान क लिए मैं गीत गाती हूँ नाना प्रकार के राग सुनाती हूँ और तरह-तरह की बातें करती हूँ। मैं राधा क चित्त म चढी हुई उनकी 'चटकीली चेरी' हूँ और सदा

उनके निकट रहती हूँ उनकी रुचि का अनुसरण ही मेरा एक मात्र कम है। राधिका के रूप की उजियाली को मैं सदा देखती हूँ और यह मेरा सबसे बडा सौभाग्य है। राधा को मैं सब प्रकार से प्यार करती हूँ और उसके रीझने पर मुझे उनसे पा जान का सा आनन्द मिलता है। देखिये कैसे सुकुमार भाव हैं—

चाँपत चरन तनक झुकि जाऊँ। छुव सीस राधा के पाऊँ ॥
चरन हलाय जगाए जगौं। बहुरि औंधि नित पांयनि लगौं ॥
राधा धरयौ बहुगुनी नाऊँ। टरि लगि रहौं बुलाए जाऊँ ॥
राधा की जूठनि ही जियौं। राधा की प्यासनि ही पियौं ॥
राधा को सुख सदा मनाऊँ। सुख द द हौं सुख ही पाऊ ॥

राधा के साथ जब श्याम को देखती हूँ तो समयोचित सुखदायिनी सेवायें करती रहती हूँ। राधा प्रिय को मैं व्यजन झलती हूँ तथा उनके श्रम बिन्दुओ का निवारण कर उस सेवा के रस म मैं अपने आपको डुबो देती हूँ। मैं ललना और लाल दोनो को सुख पहुचाती हूँ। मैं राधा का स्वभाव पहचानती हूँ वह अपने मन की बात मुझसे ही कहती हैं। मैं कीर्त्ति की घरजाई चेरी हूँ और राधा की मनभावती लौंडी हू। राधा के उतरे हुए चीर पाकर मैं अपने को अतिशय भाग्यशालिनी मानती हूँ। मैं ही उनके पावो का मलती हूँ और मैं ही उनमे महावर लगाती हूँ। राधा श्याम के बिना नही रहती। दोनो की रगीली जोडी को यमुना के तट पर मैं तरुवेलियो की ओट से देखती रहती हूँ। ऐसी राधा ही मेरी सम्पदा है और जीवन मूल है। मुझे राधा के अतिरिक्त और किसी की चाह नही।

**मनोरथ मजरी**

इस ग्रन्थ मे भी साम्प्रदायिक सखी भाव से अपनी भक्ति और निष्ठा निवेदित करत हुए घनआनन्द लिखते हैं—मैं राधा और मदनगोपाल की सेज सजाती हूँ। मैं बहुत प्रकार से उनकी टहल करती हूँ तथा उनके सुख भोग के सारे साज एकत्र करती हू। मै ऐसे सारे काय करती हू जिससे राधा और मोहनलाल मे प्रेम का रस अधिकाधिक बढ। मैं रस रीति की बातें कह-कह कर दोनो का मिलन कराती हूँ तथा एक की छलता और दूसरे की सलज्जता देख देख कर अपनी आँखें शीतल करती हूँ। मैं उन्हे समयानुसार रस भेद की बातें बताती हूँ। भीतर की बातें मैं क्या जानूँ क्योंकि दोनो के सम्भोग के समय मैं उठ कर बाहर आ जाती हूँ। जब वे मुझे पुकारती हैं तो हुलास के साथ दौड जाती हूँ। यदि वे एक दूसरे के कान म लग कर कुछ बातें करते रहते हैं तो उन्हे सुन कर अपने प्राणो को प्रसन्नता की अनुभूति कराती हूँ और इसी मे अपने जीवन का चरम सुख मानती हूँ। ऐसी सुख की सम्पदा को मैं किसी क समक्ष उद्घाटित नहा करती, उसे मन म ही छिपाकर रखती हूँ। उनकी आपस की रसमसनि मैं किसी को क्यो बताऊ? उनकी रस भेद की बातो को मैं सुन समझ कर भी अनसुना और अनसमझा कर देती हूँ। उनके मुख पर काम का मद देख कर

मैं प्रसन्न हो जाती हूँ और उनकी तुष्टि को देख स्वत तृप्ति का अनुभव करती हूँ। उनकी इच्छा जान कर सरस सुगन्धित पान का बीडा खिलाती हूँ और कभी कभी सकोच के साथ दोनो को फूलो की माला भी पहना देती हूँ। कभी कृष्ण प्रिया का अचल खीचते हैं तो मैं उसे थोडा छुडा देती हूँ और कभी मुझ पर कृष्ण की कृपा हो जाती है तो मैं लज्जा का अनुभव करती हूँ—'मोंहि भुज भरें छकनि सों जिय समझि लजाऊँ।' जब प्रिय प्रिया प्रीति क्रीडा मे तन्मय होत हैं उस समय हट जाती हूँ और छिप कर उनकी बातें सुनती हूँ तथा उनकी 'नही' और 'हाँ' सुन-सुन कर अपने प्राणो को सीचती हूँ, सुख और तृप्ति का अनुभव करती हूँ। कभी मैं उनके लिए मगल गीत गाती हूँ और अपनी जगह से ही बठी-बैठी मृदु वीणा बजाती हूँ। सखी भावना की भक्ति के अन्तगत आने वाले ये भाव कितने मधुर और सुकुमार हैं। इस प्रकार और भी अनेकानेक सूक्ष्म भावनायें कवि अकित करता गया है—

(क) केलि रसमसे मिथुन कों सुख नींद अनाऊँ।
    या विधि मनभायो करौं जगि रनि बिताऊँ॥
(ख) बडे भोर अनुराग सों भरवो जमाऊ।
    अति रति-मतवारेन कौं नव प्रात जताऊँ॥
(ग) आरस भरी जँभानि प चुटकीनि चिताऊँ।
    अलक तिलक-सेवा समै आरसो दिखाऊँ॥
(घ) निरखि डगमगी डगनि कों भुज गहि सम्हराऊँ।
    नित नूतन रसरीति की चित चोंप बढ़ाऊँ॥
(ङ) फिरि फिरि पट लाल तऊ बहुर्यो अहुराऊँ।
    निकट जाय पग चाँपि कै हित हाय जगाऊँ॥
(च) तिहँ रुच सोई करौं रसियानि रसाऊँ।
    मिलि बिछुर बिछुर मिल हौं कहा मिलाऊँ॥
(छ) बासती नव कुसुम ल रचि रुचिहि रचाऊँ।
    नव पराग भरि भाव सौं तिन पर बगराऊँ॥

## ७

# घनआनन्द पर फारसी प्रभाव

घनआनन्द के काव्य पर फारसी भाषा काव्य और वातावरण तीनो का काफी प्रभाव पड़ा है और यह प्रभाव उनकी भाषा, शैली और वक्तव्य तीनो पर लक्षित किया जा सकता है। फारसी शासको की भाषा थी। मुहम्मदशाह रँगीले के दरबार का वातावरण उसी भाषा और सस्कृति से ओत प्रोत था। ये उनके 'मीर मुशी या खासकलम' थे फिर तो इनके तौर-तरीके तहजीब भाषा बोल चाल सभी पर फारसीयत का प्रभाव स्वाभाविक था। फारसी शब्दावली का प्रयोग या तो उनकी सभी कृतियो में थोड़ा-बहुत मिलता है किन्तु इस दृष्टि से उनकी 'इश्कलता' दर्शनीय है जिसमे व्यवहृत फारसी शब्दो के उदाहरण इस प्रकार हैं— जानी दिलजान हुस्न आसिक चस्म यार खूबी निसानी महबूब, चिमन, बेदरद करद (छुरा) बेपीर जहर तक्सीर (चूक अपराध) मगरूरी हजूरी सराबी गरीब अरज जिगर पाक बेनिसाफ (बिना साफ) दिलगार, तलब इलम खुसी, सहर, कहर करेज तीर, अजूब, खूनी, तलक्त जुलम, मगजदार, बेपरवाही, जाहर चमक नोक, नजर नसा कसीस (खिचना) आदि। घनआनन्द के समस्त काव्य म यो फारसी शब्दावली परिमाण मे अधिक नहा फिर भी फारसी काव्य की प्रवृत्तियो की छाप इनकी रचना शैली पर बहुत स्पष्ट है। फारसी की शैली का प्रभाव दिखलाने के लिए 'इश्कलता' के साथ-साथ 'वियोगबेलि' का भी नाम लेना पड़ेगा जहाँ शैली का प्रभाव बहुत स्पष्ट है और जसा कि फारसी शब्दो के प्रयोग के सम्बन्ध मे कहा गया है। फारसी शैली की अभिव्यक्ति भी इन्ही दो कृतिया तक सीमित नहीं है सभी कृतिया में लक्षित की जा सकती है। 'वियोगबेलि' ब्रजभाषा मे लिखित होने पर भी फारसी छन्द म लिखी गई है।[1] कुछ पक्तियाँ देखिये—

रँगीले हो छबीले हो रसीले। न जू अपनीन सों हूज गसीले॥
तुम्हैं बिन क्यों जिय तुम ही बिचारो। बच कसें कहो तुम ही जु मारो॥

---

१ डा० राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी रीतिकालीन कविता एव शृगार रस का विवेचन, पृष्ठ ३८७

लगी नीके सबै बिधि प्रान लगी। तिहारी मौन हैं प्यारे हरैगी॥
रही नीके अजू घनस्याम प्यारे। हमारे हौं हमारे हौं हमारे॥
चढ़ाई भूह अब पायनि परैगी। कहौ जोई अजू सोई करैगी॥
तिहारी ह्वै कछू क्योंहू जियैगी। बिरह घायल हियो ज्यौं-त्यौं सियैगी॥
छबीले छल तुमकों धीर काकी। बिथा की कथा तें छतियाँ जु पाकी॥
सजीवन साँवरे कबधौं ढरौगे। मरै राधा बिरह बाधा हरौगे॥
(वियोगवेलि)

यहाँ कृष्ण को रँगीले, छबीले और रसीले कहने में फारसी शैली की ही अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार फटे हुए या विरह से घायल हृदय का सीया (सला) जाना, विरह की ज्वाला मे छाती का पक जाना आदि फारसी प्रभाव ही समझना चाहिये। फारसी म प्रेम या विरह का वणन करते हुए जिस प्रकार की अत्युक्तिपूण शलो का प्रयोग किया जाता है वैसा ही घनआनन्द न भी किया है। बिजली के समान माशूक की झलक भी न मिलना, विरही क छुर स हृदय का क्षत विक्षत होना, कलेजे का माँस खाण्ड-खाड कर निकालना, दिल म जहर घालना आदि का वर्णन फारसी शायरी का ही प्रभाव है क्योंकि भारतीय काव्य परम्परा म प्रेम-व्यथा का ऐसा जुगुप्साजनक चित्रण नहीं किया जाता— फारसी की शायरी मे माशूक की याद मे कभी दिल मे आग लगाई जाती है कभी जिगर के टुकडे किये जाते हैं, कभी कलेजे की किरचें निकाली जाती हैं।[1] प्रम की व्यजना म इस प्रकार के कथन घनआनन्द म खूब मिलेंगे—

(क) घूरे घटा चहुँधा घिरि ज्यों गहि काढ़े करेजो कलापिन कूकें।
(ख) कारो कूर कोकिला कहाँ को बैर काढति री,
कूकि-कूकि अबही करेजो किन कोरि ल।
(ग) बिछुरें कित साँति मिले हू न हाति, छिदो छतियाँ अकुलानी छुरी।
(घ) पाती मधि छाती छत लिखि न लिखाए जाँहि,
काती ल बिरह घाती कोने जैसे हाल हैं। (सुजानहित)
(ङ) सैन-कटारी आसिक उर पर त यारों मुक मारी है।
महर-लहर ब्रजचन्द यार दी जिंद असाडी प्यारी है॥ (इश्कलता)
(च) सुघराई सान सौं सुधारि मसि असि कसि,
कर ही में लियें निसिबासर फिरत हैं।
तेरे नन सुभट चुटट चोट लाग बीर
गिरिधर धीरता क किरचा करत हैं।

यह बात कही जा चुकी है कि घनआनन्द मुहम्मदशाह रँगीले के मीरमुशी (प्राइवेट सेक्रेटरी) थ। फलस्वरूप उन पर दरबारी वातावरण और मुगल रहन-सहन,

१ वही पृष्ठ ३८७

आचार विचार और सभ्यता की छाप का पडना स्वाभाविक था। घनआनन्द के विरह वणन म दरबारी रग ढग की झलक स्पष्ट है। उसम कही मधुपान का वणन किया गया है तो कही वीणा की मीड का। इसी प्रकार लौडी, डौंडी आदि शब्दो के व्यवहार भी मुसलमानी दरबार के वातावरण का सूचन करते हैं—

(क) आनन्द आवस घूमरे नन मनोज के चोजनि औज प्रचडित।

(ख) मादिक रूप रसीले सुजान को पान कियें छिनकौ न छक को।
भूल कौं सौंपि तब जु सब सुधि काहू की कानि क्नौडत कै को॥

(ग) जान के रूप लुभाय क ननिनि बचि करी अधबीच है लौंडी।
हाय दई न बिसासी सुनै कछु है जग बाजति नेह की डौंडी॥

(सुजानहित)

फारसी म सूफी दशन और विचार धारा से सम्बन्धित काव्य प्रभूत परिमाण म लिखा गया है जहाँ मजाजी इश्क (लौकिक प्रेम) क सहारे हकीकी इश्क (अलौकिक प्रेम) की साधना की गई है। घनआनन्द का सारा जीवन इसी शैली की प्रेम साधना का सुन्दर दृष्टान्त है सुजान वेश्या के प्रेम ने इन्हे भगवान कृष्ण का परम अनुरागी भक्त बना दिया था। इन्होने इश्कलता म ब्रजचन्द से इश्क करन की बात कही है और सूफियो के ही समान प्रेम की पीर का महत्व बतलाते हुये उसका वणन किया है—

लगा इश्क ब्रजचन्द सू अन्दर अधिक अनूप।
तब ही इस्कलता रची आनन्दघन सुख रूप॥
सजोगी हू इस्क स, इस्क वियोगी खूब।
आनन्दघन चस्मौं सदा लग्या रहे महबूब॥
पल पल प्रीति बढाव हुवा बेदरद है।
आसिक उर पर जान चलाई करद है॥
घनी हुई महबूब सु मरम न छोलिय।
आनन्द जीवन ज्यान दया कर बोलिय॥
क्यौं चितचोर किसोर हुवा बेपीर है।
भौंह कमाने तान चलाया तीर है॥
अन्त कहा हौ लेत नन्द के लाडिले।
आनन्द जीवन ज्यान सुचित के चाडिले॥ (इश्कलता)

यहाँ पर माशूक का बदरद होना, किशोर वय का (कमसिन) होना उसके आँखो के तीर से कवि का घायल हाना, आशिक के हृदय पर दिनजान द्वारा छुरे का प्रहार किया जाना आदि बातें शुद्ध फारसी प्रभाव हैं। यहाँ पर शैली तो शली वण्य ही फारसी प्रभाव स ओत प्रोत है। आशिक माशूक क तज की एसी ही चर्चा घनआनन्द की कृतियो म जगह जगह और बार बार देखी जा सकती है। बार-बार उन्होंने कृष्ण को अपना यार बतलाया है— सजन सलोना यार नन्द दा सोहना'

और उन्हे मजनू के समान ठहराया है तथा 'दिलजानी' कहकर सबोधित किया है। फारसी रग ढग की आशिकी की चरम परिणति इस प्रकार की पक्तियों मे देखी जा सकती है—

दिल पसन्द दिलदार यार तू मजनू की तरसौंदा है।
रत्ति दिहाड तलब तुसाडी अक्कल इलम उडौंदा है॥
मैंनू ध्यान जान नहिं जानों तू घन कुंज बिहारी है।
महर लहर ब्रजचन्द यार दी जिंद असाडी ज्यारी है॥
रहौ खुसी महबूब नन्द दे मनमाने तित जावौ जू।
कदी कदी घनआनन्द जानी इन गलियन भी आवौ जू॥
आस लगी अखियाँ नू यारां दीजै झाकी प्यारी है।
महर लहर ब्रजचन्द यार दी जिंद असाडी ज्यारी है॥ (इश्कलता)

'इश्कलता' तो एक ऐसी रचना है जिसमे पद पद पर फारसीपन की झलक है किन्तु उनकी टकसाली रचनाओ में भी जो 'प्रेम की पीर' आदि से अन्त तक विद्यमान है उसमे भी फारसी के सूफी शायरो की प्रेम पीडा की झलक या छाया है। ब्रज भाषा की परम्परागत शैली मे लिखी रचनाओं में यह प्रभाव उतना स्पष्ट नही है फिर भी जगह-जगह यह झलक मारती बराबर देखी जा सकती है—

(क) अन्तर आँच उसास तच अति, अग उसीज उदेग की आवस।
ज्यौ कहलाय मसोसनि ऊमस क्यौं हू कहूँ स घर नहिं थ्यावस॥

(ख) अधिक बधिक ते सुजान ! रीति रावरी है
कपट चुगौ दै फिरि निपट करौ बुरी।
गुनन्नि पकरि लै निपाँख करि छोरि देहु
मरै न जियै महा विषम दया छुरी॥ (सुजानहित)

यहाँ पर वियोग की ज्वाला मे साँसो का तप्त हो जाना और आवेगो की भाप मे अगो के उबलने लगना और पश्चाताप की ऊमस मे जीव का तडपना तथा कृष्ण को बहेलिया बतलाकर पक्षी अर्थात् स्वय का बिद्ध होना, पखो का उखाड दिया जाना और उनकी दया की छुरी से अपने अधमरे होने आदि का जो जुगुप्सा जनक व्यापार है वह और कुछ नही फारसी रगत का ही परिणाम है। भारतीय परम्परा के प्रेम-वर्णन मे वीभत्स व्यापारो की योजना नही की जाती किन्तु फारसी शायर वियोग-वेदना का निदर्शन करते हुए विरही की आँखो मे आँसुओ की जगह खून के बहने का वर्णन करते हैं और इसी प्रकार के दृश्य सामने लाते हैं। इसी परम्परा का अनुगमन करते हुये जायसी कुतबन, मझन आदि को इस प्रकार की पक्तियाँ लिखनी पडी थी—

रक्त क आँसु परहिं भुइँ टूटी। रेंगि चलीं जस बीर बहूटी॥
पचम बिरह पचसर मारे। रक्त रोइ सगरौं बन ढारे॥
बूडि उठे सब तरिवर पाता। भीजि मजीठ टेसु बन राता॥

हाड भए सब किंगरी नस भई सब ताँति।
रोम रोम सो धुनि उठ कहाँ बिथा केहि भाँति ॥

विरह की पीडा दिखलात हुये इस शली का व्यवहार घनआनन्द म बार-बार देखा जा सकता है—

(क) पाती-मधि छाती छत लिखि न लिखाए जाँहि
काती ल विरह घाती कीने जसे हाल हैं।
आँगुरी बहकि तहीं पाँगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल माल हैं॥

(ख) विरहा रवि सों घट व्योम तच्यौ बिजुरी सी खिच इकलो छतियाँ।
नित सावन डोठि सु बठक में टपक बरुनी तिहि ओलतियाँ॥
(सुजानहित)

वीभत्सता और अतिशयोक्ति क सम्मिश्रण स जो एक विचित्र सा आस्वाद काव्य मे निष्पन्न होता है भारतीय काव्य परम्परा म वह चीज प्रेम वणन के क्षेत्र मे विदेशी प्रभाव ही मानी जायगी। किन्तु इनक प्रयोग अत्यन्त अधिक नही हैं और न ही इनके चक्कर म घनआनन्द की निजी पीडा ही बहक कर रह गई है। अपनी भावाभिव्यजना के लिए जो भी शली सस्कार रूप म कवि को प्राप्त हुई है उसी का उसन व्यवहार किया है। अभिव्यक्ति क लिए वह शैली की खोज करने नहीं गया है।

घनआनन्द जी फारसी वातावरण का उपज थ। फलस्वरूप उन्हें फारसी का ज्ञान तो था ही और उपयुक्त प्रभाव उनकी फारसी परम्परा स अभिज्ञता के परिचायक हैं। बिहार उडीसा रिसच जनल क आधार पर पता चला है कि घनआनन्द ने एक फारसी मसनवी भी लिखि थी किन्तु वह उपलब्ध नही है।[1] यदि उसका पता चल सकता तो घनआनन्द के फारसी परम्परा के साथ घनिष्टतम सम्बन्ध का अचूक प्रमाण उपस्थित किया जा सकता था क्योकि मसनवी लेखन की परम्परा फारसी की अपनी चीज है।

**फारसी काव्य की भाव भूमि और घनआनन्द**

ईसा की १२वीं शताब्दी म होने वाले उमर खयाम का कहना था कि कविता उसके लिए एक पेशा नही वरन् आनन्द का साधन है। घनआनन्द के लिए भी कवित्त की रचना आत्मोपलब्धि या आनन्द का साधन थी कुछ जीविका का साधना न थी जसा कि युग क अन्य कवियो म दृष्टिगत होता है—

लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।

दिव्य प्रेम के उन्माद या नशे म फारसी काव्य का प्रेमी या कवि अपने आपको बिल्कुल भूल जाता है। मधुर सुगन्धित वायु लगता है उसत प्रिय की गली

---

१ घनआनन्द ग्रथावली सपादक—प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र वाङ मुख पृष्ठ ७४

से होकर आती है और समूची सृष्टि उस प्रिय की सुगंधित साँस से ही आपूर प्रतीत होती है। कवि उस सुरभि म बेहोश हो जाता है। चूँकि यह उन्माद परम प्रिय के कारण है इसलिए उसे यह देखन की भी आवश्यकता नही कि वह अच्छा है या बुरा। इस प्रेम में यदि व्यथा भी है तो वह प्रिय है क्योंकि वह प्रिय की दी हुई है या उसकी ओर से वह व्यथा का शर आता है। रूमी न इस प्रकार के भाव व्यक्त किय हैं। घनआनन्द न भी ऐसा ही भाव इसी उदाहरण के माध्यम स व्यक्त किया है—

तीछन ईछन बान बखान सों पैनी दसाहि लै सान चढावत।
प्राननि प्यास भरे अति पानिप मायल घायल चोप बढावत॥
यों घनआनन्द छावत भावत जान-सजीवन ओर तें आवत।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तौ मेरे कवित्त बनावत॥

(घनआनन्द)

फारसी काव्य म वर्णित लौकिक शृङ्गारी भावनाओं से मिलती जुलती प्रेम भावनायें रीति-स्वच्छन्द कर्त्ताओं म देखी जा सकती है। फारसी शायरों मुईन या ख्वाजा हुसन सजरी देहलवी हाफिज या अमीर खुसरो आदि ने प्रिय के रूप की प्यास का बहुत ही मादक वर्णन किया है। प्रिय के रूप पर ये शायर सौ जान से निसार हैं। उसक गुलाबी गालों पर, वेले के समान उज्ज्वल हाथों पर वे बुखारा और समरकन्द का सारा वभव निछावर करन को तैयार हैं। इसी प्रकार शीराज की तुर्की कुमारिका क कपोलो पर जो तिल है उसके लिए वे बुखारा और समरकन्द के साथ साथ अपना दिल भी मोत म दन क लिए तैयार हैं। उसका रूप देखन के लिए वे स्वर्ग तक की अवहेलना कर सकते हैं। ऐसे रूप के प्रति जिसके प्राणों म तृषा न हो उसका जन्म और जीवन ही व्यर्थ है। जाकानी कहता है कि ऐसे सौन्दर्य के प्रति पागल हो जाने म जो आनन्द और जीवन का स्वाद है वह बुद्धि के द्वारा विचार और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करने म नही। बुद्धि से नाता तोड दो क्योंकि जिंदादिल लोग बुद्धि को कुछ समझते ही नही। यही भाव घनआनन्द मे भी बडी खूबसूरती से आया है—

रीझ सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी।

प्रेम म व्यथा तडप मौत यही प्रेमी का जीवन है। उरफी, फजी नाजीरी सभी यही कहते पाये जाते हैं। इस रास्ते म आने वाले हर शख्स को कलेजा हाथ पर लेकर चलना होता है मौत स निडर रहना पडता है। इस पथ का पथिक जाँबाज होता है, जान की बाजी लगा दने वाला। वह अच्छी तरह जानता है कि प्रेम मार्ग का पथिक अपन माशूक की पालकी तक जावित दशा म नही पहुँचा करता, जब तक वह समुद्र म मरता नही वह किनारे नहीं लगता। रीति-स्वच्छन्द कवियों घनआनन्द, बोधा, ठाकुर आदि ने भी प्रेम म मौत के लिए तैयार रहने, जान की

बाजी लगाने, आजीवन दुख वरण करने आदि के लिए तयार रहने की बात बार-बार कही है—

> दीज इननूं सोख सलोने सांवरे। खून करें ए नन हुए लडबावरे।
> खूनी कौय जाय करेज घाव है। आनन्द जीवन जान न आन बचाव है॥
>
> (इश्कलता घनआनन्दकृत)

फारसी शायरी म प्रेम का समरूप नही वरन् विषम रूप ही दिखाया गया है जिसमे एक पक्ष प्यार करता है अपना सवस्व दे देता है दूसरा पक्ष उदासीन रहता है। यही नही उपेक्षा भी करता है। यह प्रेम विषमता रीति स्वच्छन्द कवियो विशेषत घनआनन्द ने प्रधान रूप से प्रतिपादित की है। स्पष्ट ही व फारसी प्रम वणन की इस शली से प्रभावित हुए हैं। ख्वाजा हसन सजरी जाकानी, जामी आदि ने जोर देकर बार-बार कहा है कि प्रेम की तो प्रथा ही यह है कि प्रिय हृदय हर ले और प्रेमी प्राण दे दे। ख्वाजा हसन सजरी ने जोर देकर कहा है कि प्रिय के लिए प्रेम को प्राणोत्सग कर देना चाहिये, यही प्रेम की रीति है। वे अपन प्रिय को सम्बोधित करते हुए कहते हैं—ऐ दोस्त ! तुम मेरी जिन्दगी म तो आते नही इसलिए तुम्ह अपने आशिको की हालत का क्या पता जो तुम्हारे इश्क म खोये हुए हैं। मेरे महबूब ! मैं तो तेरी गली का कुत्ता हूँ तू मुझे अपनी निममता के पत्थर से क्या मारता है मेर लिए तो दूसरा कोई द्वार भी नही है। इस प्रेम निष्ठा से भावित ख्वाजा अपने आप से ही कहने लगते हैं— ने अक्लमन्द ख्वाजा ! तू अपने दिल की होश कर ! जिन लोगो के पास दिल ही नही है उनके दोषो को देखना कोई ठीक बात नहीं। मैंने तो अपना ध्यान एक बार फिर अपने खूबसूरत प्रिय की ओर केंद्रित कर लिया है। धूल पडे उस सिर पर जिसमे किसी क प्यार का दद नही उठता ! प्रेम की प्रगाढ निष्ठा ख्वाजा के मन को उदात्त बना देती है व प्रिय क दोष देखना छोड अपने ही दिल को अपनी राह पर अविचलित भाव स चले चलन की नसीहत देते हैं। घन आनन्द ने बार-बार कहा है कि तुम अपने से न्यारे होकर जब हमारा दुख देखोगे तभी हमारी दशा का पता चलेगा—

> म ही रहे हौ सदा मन और को दयो न जानत जान दुलारे।
> देख्यौ न है सपनेहूँ कहू दुख, त्यागे सकोच औ सोच सुखारे।
> कसो संजोग बियोग धौं आहि, फिरौ घनआनन्द ह्व मतवारे।
> मो गति बूझ पर तब ही जब होहु घरीक हू आप त न्यारे॥
>
> (सुजानहित)

प्रेमी के भाग्य म ही याद करना और दुख झेलना लिया होता है इसलिए प्रिय को दोष देना ठीक नहीं—

(क) इत बाँट परी सुधि, रावरेभूलनि, कसे उराहनो दीजिय जू ।
अब तो सब सीस चढ़ाय लई, जु कछू मन भाई सु कीजिय जू ।
(सुजानहित)

(ख) रैन दिन चन को न लेस कहूँ पैए, भाग
आपने ही ऐसे, दोष काहि धौं लगाईये ।
(घनआनन्द कवित्त)

(ग) सक्ट समूह मैं बिचारे घिरे घुट सदा,
जानि न परत जान कैसे प्रान ऊबरे ।
नेही दुखियान की यहै गति अनन्दघन,
चिता मुरझान सहैं न्याय रहैं दूबरे ।। (सुजानहित)

इस प्रकार ये शायर प्रिय या माशूक की क्रूरता के बावजूद भी अपनी प्रेम निष्ठा कायम रखते हैं। वे न उनकी निष्ठुरता की परवाह करते हैं और न उन्हें दोष देते हैं। वे चाहे जितना दुख सह और तिल तिल कर मरें पर वे अपना इश्क नही छोडते। यह इक्तरफा इश्क फारसी शायरी का बहुत प्रिय विषय रहा है। प्रसिद्ध फारसी शायर जामी ने अत्यन्त दीन होकर अपनी समूची सत्ता को ही प्रिय पर अर्पित कर दिया है किन्तु प्रिय इतना निर्मम है कि कुछ परवाह ही नहीं करता। वे कहते हैं—हे मरे प्रिय ! तेरे रूप से अधिक तो मरा प्रेम ही मुझे मारे डालता है। मेरा शरीर तेरे ख्याल म निष्प्राण हो जाता है। जब तुमसे मिलन का समय आयेगा तब बताऊँगा किस प्रकार तेरे वियोग मे मरा दिल रक्त बहाता रहा है। उस मिलन वेला से पहले मैं अपनी व्यथा किस प्रकार कह सकता हूँ ! दुख क अतिरेक के कारण मरी रसना मौन है। तुमने पूछा कि इस व्यथा की हालत म मेरे दिल की क्या दशा है ? मैं इसका उत्तर कस दू मेरा दिल तो तुम्हारे ही पास है। देखो अपना दामन हटा मत लेना वरना मेरा प्राण रक्त आवेग क साथ तुम्हारे चरणो पर बह चलेगा। जामी ने यह कहा है कि मैं तुम्हारे दरवाजे की रखवाली करने वाल कुत्ता हूँ, मैंने अपना सिर तुम्हारे द्वार पर रख दिया है। जामी अन्यत्र लिखते हैं —हे प्रिय ! तू अपने प्रम के बन्दी की ओर नहीं देखता उस अपरिचित का जो तेरे दरवाजे पर पड़ा है। क्या तू भूल कर भी मरे ऊपर दृष्टि न डालेगा जिसकी किसी और स मुहब्बत नही, न निकटता ही रही है। मरे दुश्मनो की कही हुई बातो मे न आ। मुझसे अधिक तेरा कोई मित्र नही। तुझे याद कर मेरा दिन तडपता है और मरे हृदय का रक्त मरी आँखो म आ जाता है। मरी हृदयहीनता तू कैसे सिद्ध कर सकेगा। मैं यह नही समझ पा रहा हू कि मेरी व्यथा किस प्रकार तुम्हारे हृदय को द्रवित कर सकगी जिसम मुहब्बत और सचाई नाम के लिए भी नही है (घनआनन्द ने भी बिल्कुल यही उक्ति एक स्थान पर की है—झूठ की सचाई छाक्यौ त्यों हित कचाई पाक्यौ)। फिर भी मरी प्रार्थना है कि मुझे अपने दरवाज से मत अलग करो, जो व्यथा मुझे होती

है उससे तुम्हें क्या करना ? वह तो मुझे होती है न । इस प्रकार नाना भावो और अतथ्यथाओ का निदर्शन करते हुए फारसी शायर प्रेम के इकतरफा होने की बात बराबर करते पाये जाते है। यह प्रेम विषमता रीति स्वच्छन्द कवियो मे भी जो इतनी अधिकता से गोचर होती है उसका कारण यही फारसी प्रभाव ही है। बात यह है कि प्रेम की एकपक्षीयता दिखलाने से प्रेमी हृदय के विशद चित्रण का सुभीता था। वियोग और अप्राप्ति मे ही प्रेमी के प्रेम की प्रखरता का पता चलता है। विरह जितना ही तीव्र होता है प्रेम उतना ही रग लाता है। भारतीय काव्यो मे प्रेम के समरूप का ही विधान हुआ है। दोनो पक्ष प्रेम करते हैं और वियोग की स्थितियाँ आती हैं जिनमे दोनो पक्षो के हृदयो की व्यथा सामने लाई गई है। फारसी काव्य परम्परा मे आशिक मात्र के तडपने की बात सिद्धान्त रूप से स्वीकृत हुई है। माशूक का काम है उपेक्षा करना अपमान करना ठुकराना आदि और आशिक होते हैं जो खुशी के साथ ये सब सहते हैं। इसी मे वे आशिकाना जिन्दगी का सच्चा लुत्फ मानते हैं। इस इकतरफा मुहब्बत का वर्णन ठाकुर बोधा और घनआनन्द मे विशेष कर घनआनन्द मे विशद रूप से देखा जा सकता है। घनआनन्द का तो समस्त श्रेष्ठ साहित्य ही प्रेम वैषम्य की प्रौढ व्यजना है। यह विषमता उनके जीवन मे ऐसी घुल गई है कि उनका अन्तर्बाह्य सब कुछ उससे ओत प्रोत हो उठा है। उनकी वाणी मे भी वैषम्य या विरोध है प्राणो मे तो है ही—

(क) मेरो मन आली वा बिसासी बनमाली बिन
बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर कौं।
(ख) मन जैसें कछू तुम्हें चाहत है सु बखानिये कैसें सुजान ही हौ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगियै नित लौ ॥
(ग) घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढे हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥

अन्तिम बात जो प्रेम चित्रण मे फारसी काव्य के साथ साथ घनआनन्द मे भी समान रूप से द्रष्टव्य है वह है विरह की प्रधानता। वैसे तो हर भाषा के ही प्रेम काव्य मे विरह का महत्त्व स्वीकृत हुआ है किन्तु विरह की तडपन फारसी शायरी मे अपने ढग से व्यक्त हुई है। रूमी ने लिखा है कि जब से मेरे सीने मे प्रेम की आग लगी है तब से मेरे हृदय मे जो कुछ भी था उसी आग मे भस्म हो गया है। यह अग्नि हृदय मे और कुछ रहने नही देती। इस प्रेम मे प्राप्ति कुछ नही होती देना ही देना होता है (जैसा कि घनआनन्द ने भी कहा है कि प्रियतम सुजान से प्रेम करके खो देना ही लाभ है और कुछ लाभ नही) तथा एक अग्नि है जिसमे सदा जलना पडता है जिन्दगी मुश्किल हो गई है—

जियरा उडयौ सो डोलै हियरा धक्योई करै
पियराई छाई तन सियराई दौ दहौं।

ऊनो भयो जीबो अब सूनो सब जग दीस,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं ।
तेरे तौ न लेखौ मोंहि मारत परेखौ महा,
जान घनआनन्द पै खोइबो लहा-लहौं ।।
(घनआनन्द कवित्त)

प्रेम पथ पर अग्रसर बचारे प्रेमी के सामने कोई विकल्प नही होता। फारसी शायरी मे आशिक की बडी बुरी हालत दिखाई जाती है। उसकी आहो के ताप से उसके ओठो पर हजारो छाले पड जाते हैं। विरही रुदन द्वारा अपने हृदय के घावो को भरता है और प्रिय के ध्यान द्वारा अपना दुख भूलता है। फारसी शायरी का विरही एक देखने की चीज हुआ करता है। विरह की वैसी दारुण वाह्य दशा का चित्र तो घनआनन्द ने नही दिखाया है परन्तु आतर व्यथा पूरी तरह प्रकट हुई है जो बाधा और घनआनन्द मे विशेष रूप स द्रष्टव्य है। वही विकलता वही बेचनी वहाँ भी है।

सूफी प्रभाव

फारसी सूफियो की शायरी मे वर्णित 'प्रेम की पीर' का प्रभाव हिन्दी काव्य पर व्यापक रूप से पडा—हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानो पर तो पडा ही निर्गुण सतो और कृष्ण भक्त कवियो पर भी पडा। सूफियो की प्रेम भावना की मूल विशेषता लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम के उच्चतर सोपान पर पहुचना इश्क मजाजी द्वारा इश्क हकीकी की उपलब्धि के सिद्धान्त घनआनन्द म भी कही-कही देखे जा सकते हैं हालाँकि व बहुत ही क्षीण और अत्यल्प हैं। घनआनन्द ने कहा है कि ईश्वरीय प्रेमानन्द की एक चचल लहर से समग्र विश्व प्रेम परिपूर्ण हो रहा है और उसी प्रेम तरग के एक कण से घनआनन्द के हृदय में सुजान के प्रति इतना प्रगाढ अनुराग आ गया है—

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै
बिचार बापुरो हहरि बार ही तें फिरि आयो है।
ताही एक रस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ,
नेही हरि राधा जिन्हें देखें सरसायो है।
ताकि कोऊ तरल तरग सग छूटयो कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायो है।
सोई घनआनन्द सुजान लागि हेत होत,
ऐसें मथि मन प सरूप ठहरायो है।।

कुछ लोगो का तो कहना है कि घनआनन्द आदि म जो तडप है उसका कारण सूफी प्रभाव ही है, साथ ही उनकी कविता मे रहस्यात्मक प्रवृत्ति की जो थाडी-बहुत

है उससे तुम्हें क्या करना ? वह तो मुझे होती है न ! इस प्रकार नाना भावों और अन्तर्व्यथाओं का निरूपण करते हुए फारसी शायर प्रेम के इकतरफा होने की बात बराबर करते पाये जाते हैं। यह प्रेम विषमता रीति स्वच्छन्द कवियों में भी जो इतनी अधिकता से गोचर होती है उसका कारण यही फारसी प्रभाव ही है। बात यह है कि प्रेम की एकपक्षीयता निरूपण से प्रेमी हृदय के विशद चित्रण का सुभीता था। वियोग और अप्राप्ति में ही प्रेमी के प्रेम की प्रखरता का पता चलता है। विरह जितना ही तीव्र होता है प्रेम उतना ही रंग लाता है। भारतीय काव्यों में प्रेम के समरूप का ही विधान हुआ है। दोनों पक्ष प्रेम करते हैं और वियोग की स्थितियाँ आती हैं जिनमें दोनों पक्षों के हृदयों की व्यथा सामने लाई गई है। फारसी काव्य परम्परा में आशिक मात्र के तड़पन की बात सिद्धान्त रूप से स्वीकृत हुई है। माशूक का काम है उपेक्षा करना, अपमान करना, ठुकराना आदि और आशिक होते हैं जो खुशी के साथ ये सब सहते हैं। इसी में वे आशिकाना जिन्दगी का सच्चा लुत्फ मानते हैं। इस इकतरफा मुहब्बत का वर्णन ठाकुर, बोधा और घनआनन्द में विशेष कर घनआनन्द में विशद रूप से देखा जा सकता है। घनआनन्द का तो समस्त श्रेष्ठ साहित्य ही प्रेम वैषम्य की प्रौढ व्यंजना है। यह विषमता उनके जीवन में ऐसी घुल गई है कि उनका अन्तर्बाह्य सब कुछ उससे ओत प्रोत हो उठा है। उनकी वाणी में भी वैषम्य या विरोध है, प्राणों में तो है ही—

> (क) मेरो मन आली वा बिसासी बनमाली बिन
> बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर कौं।
>
> (ख) मन जैसें कछू तुम्हें चाहत है सु बखानियै कैसें सुजान ही हौ।
> इन प्रानिन एक सदा गति रावरे, बावरे लौं लगियै नित लौ॥
>
> (ग) घनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं।
> तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

अन्तिम बात जो प्रेम चित्रण में फारसी काव्य के साथ साथ घनआनन्द में भी समान रूप से दृष्टव्य है वह है विरह की प्रधानता। वैसे तो हर भाषा के ही प्रेम काव्य में विरह का महत्व स्वीकृत हुआ है किन्तु विरह की तड़पन फारसी शायरी में अपने ढंग से व्यक्त हुई है। रूमी ने लिखा है कि जब से मेरे सीने में प्रेम की आग लगी है तब से मेरे हृदय में जो कुछ भी था उसी आग में भस्म हो गया है। यह अग्नि हृदय में और कुछ रहने नहीं देती। इस प्रेम में प्राप्ति कुछ नहीं होती देना ही देना होता है (जैसा कि घनआनन्द ने भी कहा है कि प्रियतम सुजान से प्रेम करके खो देना ही लाभ है और कुछ लाभ नहीं) तथा एक अग्नि है जिसमें सदा जलना पड़ना है जिन्दगी मुश्किल हो गई है—

> जियरा उड़्यौ सो डोलै हियरा धक्योई करै
> पियराई छाई तन सियराई दौ दहौं।

ऊनो भयौ जीवो अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं।
तेरे तो न लेखौ, मोहि मारत परेखो महा,
जान घनआनन्द पै खोइबो लहा लहौं॥
(घनआनन्द कवित्त)

प्रेम पथ पर अग्रसर वेचारे प्रेमी के सामने कोई विकल्प नही होता। फारसी शायरी म आशिक की वडी बुरी हालत दिखाई जाती है। उसकी आहो के ताप से उसके ओठो पर हजारो छाले पड जाते हैं। विरही रुदन द्वारा अपने हृदय के घावो को भरता है और प्रिय क ध्यान द्वारा अपना दुख भूलता है। फारसी शायरी का विरही एक देखने की चीज हुआ करता है। विरह की वैसी दारुण वाह्य दशा का चित्र तो घनआनन्द ने नही दिखाया है परन्तु आतर व्यथा पूरी तरह प्रकट हुई है जो बोधा और घनआनन्द म विशेष रूप से द्रष्टव्य है। वही विकलता वही वेचैनी वहा भी है।

**सूफी प्रभाव**

फारसी सूफियो की शायरी म वर्णित 'प्रेम की पीर' का प्रभाव हिन्दी काव्य पर व्यापक रूप से पडा—हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानो पर तो पडा ही निर्गुण सतो और कृष्ण भक्त कवियो पर भी पडा। सूफियो की प्रेम भावना की मूल विशेषता *लौकिक प्रेम द्वारा अलौकिक प्रेम के उच्चतर सोपान पर पहुचना इश्क मजाजी द्वारा* इश्क हकीकी की उपलब्धि के सिद्धान्त घनआनन्द मे भी कही-कहीं देखे जा सकते हैं, हालांकि वे बहुत ही क्षीण और अत्यल्प हैं। घनआनन्द ने कहा है कि ईश्वरीय प्रेमानन्द की एक चचल लहर से समग्र विश्व प्रेम परिपूर्ण हो रहा है और उसी प्रेम तरग के एक कण से घनआनन्द के हृदय मे सुजान के प्रति इतना प्रगाढ अनुराग आ गया है—

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै
बिचार बापुरो हहरि बार ही तें फिरि आयौ है।
ताही एक रस ह्वै बिबस अवगाहैं दोऊ
नेही हरि राधा जिन्हें देखें सरसायौ है।
ताकि कोऊ तरल तरग सग छूटयौ कन,
पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है।
सोई घनआनन्द सुजान लागि हेत होत,
ऐसें मथि मन पै सरुप ठहरायौ है॥

कुछ लोगो का तो कहना है कि घनआनन्द आदि म जो तडप है उसका कारण सूफी प्रभाव ही है साथ ही उनकी कविता म रहस्यात्मक प्रवृत्ति की जो थोडी-बहुत

झलक है वह भी सूफी काव्य की ही प्रेरणा है। प्रिय की शोध मे जो तड़प रीति स्वच्छन्द कवियो (घनआनन्द, बोधा, ठाकुर आदि) म है वही वहाँ भी। किन्तु फारसी शायरी मे सूफी पद्धति की रचनाओ मे जसी धार्मिकता पवित्रता और आध्यात्मिकता है उसका इन स्वच्छन्द कवियो म अभाव मिलेगा। रसखान, घनआनन्द आदि ने जो प्रेम को ईश्वरोन्मुख कर दिया है वह स्वच्छन्द कवि की मूल वृत्ति नहीं है। उसकी तडप अपनी लौकिक प्रेमिका के लिए है जसे घनआनन्द की सुजान क लिए। वे फारसी सूफियो की भाँति इश्क हकीकी के लिए तडपते नहीं पाये जाते। 'अन्तर हौ किधौं अन्त रहौ' जैसे छदा म एकाध जगह ऐसी तडप की झलक भले ही मिले, सूफी सिद्धाता और आदर्शों का साकेतिक उल्लेख उन्होंने भले ही किया हो किन्तु उनका प्रतिपादन और अनुसरण रीति स्वच्छन्द कवियो म नही। इसके लिए तो सूफी प्रेमाख्यानो का अवलोकन करना पडेगा।

फारसी के शृगारी कवियो ने भी तथा सूफी शायरों ने जिस प्रकार के रहस्यात्मक सकेत किये हैं उनकी हल्की सी छाया घनआनन्द रसखान बोधा आदि पर कहीं कही न्खि जाये तो दिख जाये। फारस म सूफी काव्य की धारा बडी सबल और समथ रही है। उस धारा के शायरो ने प्राणोन्माद का प्रेम की व्यथा का जैसा जीवत चित्रण किया है वैसा कम कवि कर सके हैं—ईराकी ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती आदि की उक्तियाँ देखने ही योग्य हैं—मैं खुदा की सौगंध खाकर कहता हूँ कि मैं दोनो लोको मे तब तक अपनी आँख नही खोलूँगा जब तक मैं पहले उसका सौन्दय नही देख लेता। अपने अस्तित्व के वृक्ष के हर पत्ते से मैं प्रेम के उन्ही रहस्यो को सुनता हूँ जो उस वृक्ष ने मूसा से कहे थे। अगर मैं तेरे प्रेम की आग मे जल जाऊँ तो कोई आश्चय नहीं क्योकि वह पहाड भी तो तेरी प्रभा के एक ही किरण से जल गया था। ऐ मुईन! प्रियतम का सौन्दय बुद्धि की आँखा से नहीं देखा जा सकता। लला की खूबसूरती देखने के लिए मजनू की आँखें चाहिये। इस ससार का एक एक जर्रा उसी की प्रभा से प्रकाशित है हर कण मे उसी का सौन्दय प्रतिफलित हा रहा है। उसके महान् अस्तित्व का प्रतिबिम्ब मेरी आत्मा के दपण म पड रहा है। ससार के जर्रे जर्रे मे जो तडप है वह उसी के विरह की तडप है। जो उससे एकमेक हो जाता है वह खामोश हो जाता है। प्रकृति के एक एक उपकरण को देखिये समुद्र को देखिये। सभी उस व्यथा से लहरें खा रहे हैं। वही लहर और थपेडा है जिसे खाकर घनआनन्द चीख उठे हैं—

> अन्तर हौ किधौं अन्तर रहौ दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
> आगि जरौं अकि पानी परौं, अब कसो करौं हिय का बिधि धीरौं।
> जौ घनआनन्द ऐसी रुची तौ कहा बस है अहो प्राननि पीरौं।
> पाऊँ कहाँ हरि हाय तुम्हें धरनी मैं धसौं कि अकासहि चीरौं॥

वह तडप एक ही है, वह व्यथा एक ही है। वही भाव घनआनन्द की इन पक्तियो म है—

> त्यों नसरनि के ऐन बसै रवि, मीन पै दीन ह्वै सागर आवै।
> मोसों तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि, नेह निबाहिबो यौं छबि पावै॥

वही भाव ख्वाजा हसन सजरी के इस कथन मे है कि कण सूय के प्रति प्रेम म उन्मत्त होकर नाच रहा है और उसकी इस खुशी और प्रेमोन्माद को कोई जानता नही।

८

# घनआनन्द का काव्य-शिल्प

### घनआनन्द की कला विषयक दृष्टि

घनआनन्द की कुछ उक्तियो को लेकर सुधी विवेचकों ने उनकी काव्य-दृष्टि का सधान किया है। इसमे तो सदेह नही कि उनकी उक्तियाँ उनकी काव्य-दृष्टि का उद्घाटन अवश्य करती हैं परन्तु वे उक्तियाँ साकेतिक ही हैं। जहाँ उन्होंने कविता द्वारा आत्म निर्माण की बात कही है वहा उन्होंने यह तो बहुत स्पष्ट कह ही दिया है कि कविता हृदय की वस्तु है हृदय से उत्पन्न होता है और रचयिता के व्यक्तित्व का अग होती है। जो कविता मन का वचन से मेल नही कराती वह कविता नही जो भीतर होना चाहिये वही बाहर— **लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत'** कह कर उन्होने लोक की कविता स अपनी कविता का प्रवृत्ति भेद स्पष्ट सूचित किया है। सच्ची कविता की निष्पत्ति वे हृदय की रीझ और पीडा से मानते हैं जसा कि उनक **तीछन ईछन बान बखान सों'** वाले कवित्त से स्पष्ट है। जिस काव्य म प्राणो की तृषा व्यक्त न हुई हो वह मम को क्या छू सकती है? जिसके हृदय मे *किसी के लिए दद नही वह क्या कविता लिखेगा*? इसी प्रकार उनका विश्वास है कि बुद्धि का जो व्यवसायी है उसस कविता का कोई सरोकार नही। हृदय पक्ष ही काव्य का प्राण-तत्व है रीझ ही काव्य क्षेत्र म पटरानी है, बुद्धि और कल्पना उसकी दासी मात्र— **रीझि सुजान सची पटरानी बची बुधि बापुरी ह्वै करि दासी'** यह सब होते हुए भी उनकी कविता भाषा प्रवीणा के ही पल्ले पडने वाली चीज है। अनुभूति की भगिमा क कारण उनकी भाषा शली म भी भगिमा आ गई है। वे काव्यगत इसी भगिमा क कायल थ और सीधी उक्तिया म कदाचित कवित्त का अधिवास न मानते थ परन्तु हृदय रस से सिक्त जो *उक्तियाँ न हो उनम* उनकी दृष्टि म कोई कवित्व न होता था। ऐसी हृदय रस से सपृक्त उक्तियो को समझने की क्षमता भी किसी सहृदय म ही हो सकती है साधारण लागा मे नही। घनआनन्द के कवित्तों के प्रशस्तिकर्त्ता ब्रजनाथ ने इसी बात को इस प्रकार कहा है—

(क) जग की कविताई के धोखे रहै ह्यां प्रवीनन की मति जाति जकी।
मसझ कविता घनआनन्द की हिय आखिन नेह की पीर तकी॥

(ख) जोग वियोग की रीति में कोविद भावना भेद-स्वरूप कौं ठानै।
भाषा प्रबीन सुछन्द सदा रहै सो घन जी के कवित्त बखानै॥

घनआनन्द ने भी अपने काव्यादर्श को उद्घाटित करते हुए लिखा है कि हृदय के भवन में मौन का घूँघट डाल कर उनकी बात (उक्ति अथवा वाणी) रूपी दुल्हिन बैठी रहती है अर्थात् उनकी कविता या उनकी उक्तियाँ ढँकी हुई सलज्ज तरुणी के समान हैं उनके समस्त अर्थ सहज प्रकट नहीं हैं। उस उक्ति अथवा कविता रूपी दुल्हिन को मृदु और मंजु पदार्थों अर्थात् शब्दों और अर्थों के अलंकारों द्वारा सजाया गया है। वह रसमयी कविता शब्दों और अर्थों की अलंकृति से परिवेष्ठित है। अभिप्राय यह है कि उनके काव्य की रसमयी साधना में शब्दों और अर्थों के अलंकार सहायक उपकरण का काम करते हैं। साधन मात्र रहते हैं, साध्य नहीं बन जाते। रसना रूपी सखी कान की गली से हृदय रूपी भवन में चित्त की उस शैया पर सुजान को पधारती है अर्थात् ले जाती है तभी सुविज्ञ के अंक में काव्य रूपी दुल्हिन शोभित होती है और अपनी चरितार्थता प्राप्त करती है। कविता रूपी दुल्हिन का रसिक कोई साधारण व्यक्ति नहीं हो सकता वह तो कोई सुजान, सहृदय और प्रवीण ही हो सकता है जो उसकी समस्त भाव भंगिमाओं को पूर्णतः मनोगत कर सकता है—

उर भौन में मौन को घूँघट कै दुरि बैठी बिराजति बात बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषण सों सु लसै हुलसै रस रूप-मनी।
रसना अली कान गली मधि है पधरावति लै चित सेज ठनी।
घनआनन्द बूझनि-अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान धनी॥

भाषा के वैशिष्ट्य को, उसकी लाक्षणिक और व्यंजक शक्ति के विकास को घनआनन्द महत्व देते थे अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करना उनकी नीति थी तथा भाव छंदादि के आवश्यकतानुसार शब्दों को लोच संकोच, वक्रता विस्तार आदि प्रदान करने में वे नहीं हिचकते थे। फिर भी भाषा का एक निश्चित स्वरूप होना चाहिये और एक साँचे में उसे ढली हुई होना चाहिये ऐसा उनका विश्वास था। परन्तु सबसे बड़ी बात तो यह थी कि भाषा को अनुभूति प्रेरित होना चाहिए। अनावश्यक शब्दों का समावेश न वे करते थे और न पसन्द ही करते थे। शब्दों के साथ थोड़ा-बहुत खेल करना भी उन्हें आता था और वह उनकी दृष्टि में अधिक बुरा न था। पर इस प्रवृत्ति के कारण वे अनेक दुर्बोध छन्द भी लिख गये हैं। शब्दों का, पदों का, उक्तियों का नितांत निजी प्रयोग उनमें देखा जा सकता है, इस गुण

के कारण भाषा म शक्ति और वैशिष्ट्य का विकास होता है। यद्दावता और मुहावरों का भी उनकी दृष्टि म कम महत्व न था।

अलकारो के प्रयोग के सम्बध म भी घनआनन्द की मूल नीति सहजता की नीति थी। उनका स्वाभाविक रूप म ही प्रयोग किया जाना चाहिये। भावावेश की लपेट म ही आई हुई आलकारिकता सच्ची आलकारिकता होती है जो रस का उपकारक होती है। वे अनावश्यक रूप स अलकारो की भरती तो काव्य मे नहीं करते पाये जाते किन्तु अनुभूति की बाध्यता ने उनकी अभिव्यक्ति को सवत्र नहीं रहने दिया है। उनकी शली म अनुभूति प्रेरित अलकृति और भगिमा आई है और वह परम्परागत काव्यालकरण से कुछ भिन्न है उसम नये-नये पथो पर चलने का प्रयास है और यही प्रतिभाशाली कवि क लिए अभीष्ट स्थिति है स्वय काव्य को निजी अनुभूति की उपज होना चाहिये अननुभूत सत्य क कथन म सच्ची काव्यात्मकता सम्भव नही। अनकृति घनआनन्द क स्वभाव या व्यक्तित्व का अग होकर आई है। उदाहरण के लिए वषम्य-मूलक जितना सौन्दय उनके काव्य म मिलेगा, उनके जीवनगत वैषम्य का ही बिम्ब माना जाना चाहिये। नई सूझ-बूझ भी अनुभव, ज्ञान और अनुभूति सापेक्ष ही हुआ करती है। पिष्ट-पेषण सच्चे कवि का धम नहीं उससे बचने म ही उसकी महत्ता है।

छन्द विधान क क्षेत्र म घनआनन्द ने यो तो सवये ही अधिक लिखे हैं किन्तु पद, कवित्त दोहा चौपाई आदि अन्यान्य कितने ही छन्दो का व्यवहार कर नाना प्रकार के प्रयोगो की ओर उन्होने अपनी अभिरुचि दिखाई है तथा बहुछन्दात्मकता पर बल दिया है। रीति कवियो के ही समान निश्चित छन्दो तक अपने को सीमित रखकर अन्यान्य छन्दो की ओर भी मुक्त रूप से अग्रसर होने का उन्होंने सकेत किया है। विविध छन्दो के व्यवहार स भाव प्रकाशनार्थ उनके स्वच्छन्द गति ग्रहण करने की सूचना मिलती है।

**घनआनन्द की भाषा**

घनआनन्द के कवित्तो के प्रसिद्ध प्रशस्तिकार ब्रजनाथ की दृष्टि म घनआनन्द की भाषा क मुख्य गुण इस प्रकार हैं—कान्ति गाभीय और विविध प्रकार की अर्थमत्ता साधनासापेक्षता सुन्दरता, स्वच्छता एकरूपता या साचे मे ढला हुआ होना सुघडता अनूठापन और गूढता। उनकी इस प्रकार की भाषा को तथा उसके सौन्दय को वही समझ सकता है जो भाषा प्रबीन' हो, बार बार उनकी कविता पढता हो और उसके मम को समझने मे यत्नशील हो बुद्धिजीवी या हृदयहीन न हो बल्कि सहृदय हो और हृदय की आँखो म जिसने प्रम को देखा समझा हो प्रेम के रग म स्वत भीगा हुआ हो।

घनआनन्द की भाषा रीतिकाल के अन्य कवियो की भाषा से पृथक है। यह भेद उनकी कथन विधि अथवा शली को देखने स और भी स्पष्ट हो जाता है। वे

भाषा के प्रयोग मे असाधारण रूप से पटु थ । श न्दो मे नई-नई व्यजनायें भरना, सूक्ष्म से सूक्ष्म और गहरे से गहर भावो को श न्दो म मूत्त करना वे भली भाँति जानते थे । आवश्यकता के अनुसार शब्दो मे वे लोच सकोच विस्तार, वक्रता आदि भी पैदा कर सकते थ । फिर उनकी भाषा कोरी साहित्यिक भाषा भी नही है उसम ब्रज प्रान्त के प्रयोग भी मिलत हैं ।

**भाषा का स्वरूप**—उनकी भाषा का स्वरूप साहित्यिक होते हुए भी ठेठ ब्रज के लोक प्रयुक्त स्वरूप का माधुय लिये हुये है साथ ही उनके निजी व्यक्तित्व का सौंदय, बाँकपन, माधुय आदि भी उसम समा गया है । ब्रज प्रदेश मे बहुत काल तक रहने के कारण उनकी भाषा पर ठेठ ब्रज भाषा का भी प्रभाव पडा है । नितान्त निजी भाषा का प्रयोग उनम मिलता है जसा किसी भी दूसरे कवि मे नही मिलता । ब्रज भाषा के उच्चतम प्रयोक्ताओ म उनका नाम लेना पडेगा । भाषा सम्बन्धी इस वशिष्टय के कारण उनकी भाषा की या शली की कोई नकल नही कर सका है । उनकी भाषा म सस्कृत, फारसी आदि भाषाओ के शब्द तत्सम रूप मे बहुत कम आये हैं, वे उनका भाषा शली के साचे म ही ढले हुये मिलेंगे । भाषा उनकी भी तद्भव शब्दो से बनी है तथा उसी मे उसकी विशिष्टता भी है । सच तो यह है उनकी भाषा म इतना निजीपन है कि हृदय म उनक जसी तडप पैदा किये बिना उनकी जैसी भाषा की भगिमा लाई ही नही जा सकती ।

**ब्रज भाषा का ठेठ रूप**—ठेठ ब्रज के शब्द भी उनकी रचनाआ म मिलते हैं तथा बहुत से नये शब्द भी उन्होन प्रयुक्त किये हैं जिनका प्रवेश उनके पूर्ववर्ती ब्रज भाषा काव्य म नही हुआ था या कम हुआ था । यथा—

औंडी (गहरी) आवस (भाप) उदेग (उद्वेग) सहारि (सहारे से), भभक (ज्वाला) दुहेली (दुखपूण) आवरो (व्याकुल), हेली (खेल करने वाले) भोयो (भिगोया हुआ), सौज (सामग्री) चुहल (विनोद), सरयौ (चुक गया), बघूरा (बवडर) बिसारयौ (विपाक्त) आपचारयौ (मनमानी) डेल (ढेला) गुरझनि (गाँठ) अगिलाइ (अग्नि दाह), तेह (क्रोध) आदि । इन ठेठ शब्दो से उनकी भाषा समृध हुई है ।

**नए और अप्रचलित शब्द**—ऐसे भी बहुत से शब्द उन्होन व्यवहृत किये हैं जिनका प्रयोग अन्य कवियो ने नही किया है, ये नवीन शब्द उनकी भाषा म असाधारण शक्ति और व्यजना पैदा कर सके हैं । जसे—

अँगेट सौनि (कुदन का लाल वण) अछवाई खगे (लीन हो जाना), ऊबिल (अपरिचित), उझिल (ग्राम्य शब्द), ऊठ (उठान), गरठी (टेढ़ी), घनीन डँडा (बाहु), रयौ (लीन हो गया), गादरौ (शिथिल) चाइ (उत्कण्ठा), ओटपाय (उपद्रव), कौंवर (कामल) उर (त्वर) बिरचै (विमुख होना) राचनि (रँग जाना) हटतार (सिलसिला टकटकी, हठपूवक देखने का तार).

गहर (गहराई), निरठी (मस्त) धिजौं (समझता), इकौस (अक्ल। तवै (तपना) डवा (थला), अतन अलात (कामदेव का अलात-चक्र), निखरक मिही (सूक्ष्म गूढ) उथराई (उथलापन), बहीर (सना का सामान), उलाहू (उल्लास), करौटनि, सरोटनि, खोही (पत्ता की छतरी) सकेर (समेटे) मरक (सिचाव), (आग) सवादिली (स्वादिष्ट) आदि।

**शब्द स्थापना**—घनआनन्द की शब्द स्थापना भी ऐसी सुन्दर है कि कोई *शब्द इधर उधर नहीं किया जा सकता। भाषा की नाडी की ऐसी सुन्दर पहचान* उन्ह थी। शब्दा को छन्द के अनूकूल भाव के अनुकूल रूप देकर वे कविता के चरणो म इस प्रकार बाध दिया करते थ मानो वही उनकी निश्चित जगह हो वे वहाँ स भाव का बिगाडे बिना इधर उधर नहा किये जा सक्त। कवित्त, सवयो मे तो ये गुण विशेष मिलेगा।

**शब्द क्रीडा**—घनआनन्द बडे शब्द प्रेमी कवि थ। रीति से सवथा स्वच्छन्द होते हुए भी उन्ह शब्दा स खेल करना काफी पसन्द था, उसके कारण उनकी रचना मे एक नई कारीगरी या भगिमा आ गई है। उनकी शब्द क्रीडा मात्र श्लेष, यमक, अनुप्रासादि अलकारो क कटघरे म बन्द होने वाला चीज नहीं है। एक ही शब्द को तोड मरोड कर तरह तरह से उसका प्रयोग करना एक ही छन्द म बार-बार प्रयोग करना अथ की नई नई ध्वनियाँ ध्वनित करना और कभी-कभी पूरा छन्द उन्ही शब्दो की क्रीडा द्वारा लिख डालना ये सारी बातें उनकी शब्द क्रीडा मे मिलती हैं। छन्द मानो खेल खल म ही बन गया हो। शब्दो का खेल घनआनन्द मे बहुत है पर वे उसक द्वारा बडी गहरी भावाव्यजना कर जाते हैं यह बहुत बडी बात है। उनके कुछ निश्चित शब्द हैं जिन पर वे बार-बार खेल करते पाये जाते हैं—सनेह मोही, गुन, बाँधना, जान सुजान खुलना, उघरना, रीझना, बूझना, आनन्दघन आदि।[1] उदाहरण के लिए एक छन्द देखिये—

> **रीझ तिहारी न बूझि पर आहो बूझति हैं कहो रीझत काहैं।**
> **बूझि क रीझत हौ जु सुजान किधौं बिन बूझ की रीझ सराहैं।**
> **रीझ न बूझो तऊ मन रीझत बूझि न रीझेहू ओर निबाहैं।**
> **सोचनि जूझत मूझत ज्यौ घनआनन्द रीझ और बुझहि चाहैं॥**

**प्रयोग-सौन्दय**—घनआनन्द के शब्द प्रयोग जगह जगह क्या सवत्र बडे अनूठ हैं जिसपर मुग्ध हाकर घनआनन्द की कविता के ममज्ञ आचाय विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि घनआनन्द जी अपनी कविता को ऐसे ऐसे पथो से ले जाने का साहस कर सके हैं जिन पर जान म आज क कवि भी झिझक सकते हैं। उदाहरण के लिए

---

१ सुजानहित छन्द ३२६ ३३१, ३४५ ३६६ ३७० ३७७ ४२६ ४४३, ४४५, ६६ २२७ ४२६ ४४४, ७५

शरीर के अगा का लेकर उन्होने बडी सु दर उक्तियाँ की हैं, विशेष रूप से आखो के सम्बन्ध म उनकी उक्तिया देखन योग्य है—आखिन क उर हग-हाथनि कृपा कान मधि नैन, फिरी हग रावर रूप की दोही। इसी प्रकार कुछ अन्य प्रयोग देखिय—रीझि के पानि, लाज म लपेटी हुई चितवन, छके हुए हग, आसुनि औसर गारति बिसास दागानि दगी मिलाप की यास खिले नीद की सम्पत्ति आखा का हृदय, लुनाइयै की लम्मा, अकुलानि छुरी धीर गिल। भाषा क एसे सवथा नय प्रयागो व विधान से उनकी असाधारण भाषा सामथ्य का पता चलता है। सचमुच, भाषा के जिन नये पथा पर वे गये हैं उन पथा का अनुसधान अब भी शेष है, उनके जसी स्वच्छन्द अभिव्यक्तियाँ करने वाले कवि उनके पहले और बाद बहुत कम देखे गय। उनके प्रयोगो क वशिष्टय की दृष्टि से उनकी उक्तियाँ देखने योग्य हैं।

लोच—कभी-कभी घनआनन्द ने लगिय रहै' या अनोखियै ऐसे प्रयोगा के द्वारा शब्दो को कुछ खीच कर या टढा कर उनम नया जीवन या नया अग प्रतिष्ठित किया है—कभा-कभी मात्रा विठान क लिये शब्दा का आसाधारण सधिया भी की हैं। जसे यौंब, जौब, तौब (यौं+अब जौ+अब तौं+अब)। ऐसा करने से छन्दो में मात्रा या लय सम्बन्धी दोष नही आन पाय हैं।

उक्ति-सौन्दय—घनआनन्द की उक्तिया की जा भगिमा है वह और कही नही मिलती। उनके समस्त काव्य म एक से एक सुदर और श्रष्ठ उक्तिया भरी पडी हैं, उनम जो नवीनता और भाव व्यजकता है वह साधारणतया सुलभ नही। उदाहरण क लिए देखिये—

(क) हँसि बोलन मैं छवि फूलन की बरखा उर ऊपर जाति है ह्वै।
(ख) अग अग तरग उठ दुति की परिहै मनौ रूप अब धर च्वै।
(ग) घनआनन्द जीवन मूल सुजान की कौंधनि हूँ न कहू दरस।
(घ) पुरि आस की पास उसास-गर जु परी सु मर हू कहा छूटिहै।
(ङ) अलबेली सुजान के पायनि-पानि पर्‌यौ न टर्‌यौ मन मेरो भवा।
(च) ऐसा कछू बानि चाह बावरे बगनि परी दरस सुजान लालसाई लागिय रहै।
(छ) उत ऊतर पाय लगी मिहँदी सु कहा लगि धीरज हाथ रहै।
(ज) भावते के रस रूपहि सोधि लै नीक भर्‌यौ उर क कजरौटी।
(झ) धारनि मोर कुमार भज, पुहुपावलि हास बिकासहि पूजति।

घनआनन्द के बहुत सारे प्रयोगो अथवा उक्तिया का सौन्दय तो कोरे विरोध पर ही आश्रित है तथा ऐस प्रयागा का सौन्दय असाधारण है। यथा—

(क) मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर, अमोही के मोह मिठास ठगी।
(ख) बूडि बूडि तर औधि थाह घनआनद यौं,
जीव सूक्यो आय ज्यौं ज्यौं भीजत सरबरो।

(ग) आवत ही मन जान सचीवन ऐसो भयो जु करी नहिं लौटनि।
(घ) आरस जग्यो है कसं सोई है कपा ढरक।
(ड) निरधार अधार द धार मँझार दई गहि बाहँ न बोरियँ जू।
(च) प्यास भरी बरस तरसं मुख देखन को अखियाँ दुखहाई।
(छ) वारिद सहाय सौं दवागिनि दबति देखी,
विरह नवागिनि ते नैना झर क रहे।
(ज) पौन सों जागति आगि सुनी ही प पानी सों लागति आँखिन देखी।

वपम्य अथवा विरोध घनआनन्द की भाव धारा अथवा अन्त मत्ता का ही नहीं उनकी भाषा अभिव्यक्ति का भी अपरिहाय अग हो गया था। इसी कारण उनका सम्पूर्ण काव्य, विशेषत 'सुजान प्रेम का व्यजक प्रत्येक छन्द इस वैपम्य की अन्तर्व्यापिनी भावना से ओत प्रोत है उनकी हर उक्ति म वैपम्य की भगिमा किसी न किसी रूप म समा गई है। यह वैपम्य उनके तन, मन, प्राण का अभिन्न तत्व हो गया है, हर कथन किसी न किसी प्रकार का विरोध भाव या वपरीत्य लिये आता है। विपरीतता शतशत रूपो मे मुखर हो उठी है और विदग्ध समीक्षका को कहना पडा है कि जिस कृति मे कही भी विरोध की प्रवृत्ति न दिखाई दे उसे बेखटके घनआनन्द की कृति से पृथक किया जा सकता है तथा अथगत विरोध ही नहीं विरोध की प्रवृत्ति प्रकृतिस्थ होने से शब्द विरोध भी कही-कही दिखाई देता है।[1] हम तो इससे भी आगे जाकर यह कहना चाहते हैं कि शब्द और अथगत विरोधो के अतिरिक्त भी कितने अन्य प्रकार के विरोध या विरोधाभास इनकी कविता मे लक्षित किये जा सकते हैं और शब्द विरोध कही-कही नही पद-पद पर देखा जा सकता है। वस्तुत यह विरोध और विपरीतता कवि के जीवन मे इतनी परिव्याप्त थी कि विषमता रहित उक्ति विधान उनके लिये सम्भव ही न था। नाना प्रकार के विरोध-मूलक कथनो के मूल उत्स तथा उनके सौन्दय की समस्त भगिमाओ का उद्घाटन अपने आप में एक स्वतन्त्र और महत्वपूण काय है। भाषा के अनूठे प्रयोग और सौन्दय तथा उनकी शैली की असाधारण भगिमा के उदाहरणस्वरूप यहाँ पर एक ही छन्द देना पर्याप्त होगा—

उर भौन में मौन को घूघट क दुरि बठी विराजति बात बनी।
मदु मंजु पदारथ भूपन सों सु लस हुलस रस रूप मनी।
रसना अली कान गली मधि ह्वै पधरावति ल चित सेज ठनी।
घनआनन्द बूझनि अक बसं बिलस रिझवार सुजान धनी॥

भाषा की सामासिकता—सक्षेप मे अधिक कहने की वृत्ति के कारण घनआनन्द

---

१ घनआनन्द ग्रन्थावली सम्पादक प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाड मुख पृष्ठ ५०-५१

ने भाषा के सामासिक रूप को अंगीकार किया है। उनके अधिकांश छन्दों में सामासिक पद मिल जायँगे और कभी कभी तो काफी बड़े बड़े समास भी देख जा सकते हैं। यथा—

> रूप-गुन-मद उनमद नेह-तेह भरे, छल-बल-आतुरी चटक-चातुरी पढ़े।
> मीन-कंज-खंजन कुरंग-मान भंग कर, सौंचे घनआनन्द खुले सकोच सो मढ़े॥

**द्वयर्थकता**—कवि ने शब्दों का ऐसा सुंदर विधान किया है कि पूरा छन्द कृष्ण विरह स सम्बन्धित होन हुए भी ब्रह्म विरह की ध्वनि देता पाया है। इसी प्रकार कृष्ण विरह होते हुये भी सुजान विरह तथा सुजान विरह होते हुये भी कृष्ण विरह का भाव पाया जाता है। ऐस छन्द सख्या मे अनेक हैं।[1]

**भाषा शैली की क्लिष्टता**—घनआनन्द के कुछ छन्दों म क्लिष्टता अथवा दुरूहता भी आ गई है क्योंकि भाषा किसी नये पथ से होकर गई है भावना एकदम नये ढंग से व्यक्त की गई है। यह बात उनकी कविता मे कभी-कभी दोष का रूप भी धारण कर लेती है। अनक छन्द इसी अति वैयक्तिक भाषा प्रयोग के कारण दुरुह और दुर्बोध हो गय हैं।[2]

**कहावत और मुहावरे**—कहावतों और मुहावरो से भी घनआनन्द की भाषा सजीव हुई है। कहावतो की अपेक्षा मुहावरो का प्रयोग घनआनन्द ने अधिक किया है। या कहावतो क प्रयोग की दृष्टि से ठाकुर अद्वितीय हैं। घनआनन्द द्वारा प्रयुक्त कहावत इस प्रकार है—

> सुनी है क नाहीं यह प्रगट कहावत जू
> काहू कलपाइ है सु कसें कल पाइ है।

इसी प्रकार विष घालना, छाये रहना हाथों हारना- पाटी पढ़ना आदि मुहावरे भी प्रयुक्त हुय हैं। इन सभी साधनों के प्रयोग क कारण घनआनन्द की भाषा सप्राण अर्थ की शक्ति से सम्पन्न और विशिष्ट हो गई है।

**घनआनन्द की अलकार योजना**

घनआनन्द की अधिकांश कविता सरल निरलंकृत और भावावेशपूर्ण शैली म लिखी गई है जिसके अन्तगत उनका विशाल पद साहित्य तथा लगभग तीन दजन छोटी छोटी कृतियाँ सम्मिलित हैं। इनम कहीं कहीं अलकार तो मिलेंगे परन्तु वे सहज साधारण ढंग से अनायास ही चले आये हैं। अभिव्यक्त भाव की भंगिमा उन्हें अपने साथ लेती चली आई है। परन्तु इसके साथ ही साथ काव्य-जगत म उनकी प्रतिष्ठा का जो प्रधान आधार है 'सुजानहित' उसम अलंकरण की कमी नहीं। उसम कवि ने

---

१ सुजानहित छन्द ४१६ १६५ ६१ २०७, २८० २६५ २८६, ६८, १२८ १४० २७७ २७८ ३४६ ४६१ २६६ ४५ ४४ ३६१ २७०

२ सुजानहित छन्द १६२, १६३

आवश्यकतानुसार नाना प्रकार के अलकारो की योजना भी है किन्तु वह सारी अलकार योजना है भावाभिव्यक्ति का साधन ही, साध्य या फल उसे नहीं प्रदान किया गया है । दूसरी बात यह है कि यह आलकारिकता परम्पराभुक्त आलकारिकता से भिन्न है यह भावो की लपेट म आई हुई है । भावो की आवेशशीलता, उनकी शैली अथवा अलकरण का कारण रही है । सीधी सादी बातें सीधे-सादे ढग से कही जा सकती हैं परन्तु अन्तर की नाना भाव भगिमायें बिना वचन-वक्रता अथवा अभिव्यक्ति में वक्रता लाये कैसे निवेदित की जा सकती हैं । इसीलिये कहना पडेगा कि घनआनन्द के काव्य म जो अलकार विधान है वह रीतिनिबद्धो के समान आरोपित नही वरन् अत प्रसूत, उनके स्वभाव का अगस्वरूप और व्यक्तित्व का निदर्शक है ।

व्यक्तिनिष्ठ काव्य रचना एव अलकृति के कारण घनआनन्द के अलकार प्रयोगो में बरती ताजगी और नवनीता है वह स्वय म उनके काव्य का एक अच्छा आकर्षण है । प्रयोग वचित्र्य, कथन वक्रता अभिव्यक्ति वैशिष्टय घनआनन्द की एक स्वभावगत प्रवृत्ति सी प्रतीति होती है । किसी भी बात को सीधे-सादे ढग से रख देना उन्हें अभीष्ट नही । उनका प्रत्येक छन्द किसी न किसी प्रकार का बाँकपन लिये हुये मिलेगा परन्तु जो बात इन्हे अपने युग के क्रमागत शैली के कवियो से पृथक कर देती है वह है सवेदना और प्रेरणा की भिन्नता । घनआनन्द ने काव्य रचना की प्रेरक शक्ति न तो राज्याश्रय या राज प्रेरणा है न किसी का प्रशस्ति गान न किन्ही लक्षणों को दृष्टि म रखकर उदाहरण प्रस्तुत करना । घनआनन्द की अलकार प्रियता या वक्रोक्ति प्रेम बहुत कुछ स्वभावगत है । एक बात यह भी है कि अनुभूति जब गहरी होती है व्यक्ति कुछ भावुक और प्रगल्भ होता है तो अभिव्यक्ति भी ऋजु और सरल न होकर यत्किंचित वक्र हो जाती है । यह वक्रता फिर काव्य की शोभा बन जाती है भावो के नये नये पथ से ले जाते हुए कवि ने जिस नवीनता और कला के उन्मेष का परिचय दिया है वह साधारणत सुलभ नही । प्रभूत परिमाण मे व्रज भाषा मे काव्य सृष्टि हो चुकी थी फिर भी नये उपमानो के विधान म नई कल्पनाओ की सृष्टि मे घनआनन्द रीतिमुक्त और रीतिबद्ध ही नही समूचे मध्ययुगीन कवियो मे आगे गिने जायेंगे । कल्पना और आलकारिकता के क्षेत्र म उनकी-सी नई सूझ-बूझ वाला कवि दूसरा नही दिखाई देता । यह नवीन कल्पना और कला की उठान भावोन्मेष तथा कवि प्रतिभा सापेक्ष हुआ करती है । घनआनन्द मे य दोनो तत्व प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध हैं । शैली की इसी अति वयक्तिकता के कारण घनआनन्द की शैली मे काव्य रचना तो दूर परवर्ती युग म उनकी नकल भी कोई नही कर सका है ।

**विरोधाभास**- विरोधाभास घनआनन्द का सबसे प्रिय अलकार है तथा इस सम्बन्ध म तो यहाँ तक कहा गया है और ठीक कहा गया है कि जिस कृति मे यह अलकार न मिले उसे बेखटके उनकी कृतियो से पृथक किया जा सकता है । इससे एक अर्थ स्पष्ट हो जाना चाहिये कि उक्ति वषम्य उनकी प्रकृति से ही उत्पन्न चीज है,

बिना उनकी प्रकृति का अग हुए विरोधाभास उनकी दीघ-काल-व्यापिनी काव्य साधना म आद्यत किस प्रकार आ सकता था ? स्पष्ट ही उनक काव्य मे विरोध न जिस आलकारिक सौदय की सष्टि की है उसका मूल उत्स उनका हृदय, उनके विचार, उनका जीवन है जो विषमता का कोष था। जीवन विषम परिस्थितियों और मन स्थितियो का केन्द्र हो गया था इसीलिय अपने प्रेम को विना बाँकपन के बिना स्थिति-वैषम्य के निदशन क और कुछ नही ता विना शब्द विरोध के वे व्यक्त ही नही कर पात थे। यही कारण है कि विरोधाभास ही उनकी आलकारिक सौदय चेतना का केन्द्र बिन्दु हा गया है। अन्य अलकार इसी केन्द्रीय शोभाकारक धम के इर्द गिद चक्कर लगाते मिलेंगे—

(क) बारिद सहाय सो दवागिनि दबति देखौ,
　　　　　　विरह नवागिनि तें नना झर क रह।
(ख) पौन सों जागति आग सुनी ही प पानी सो लागति आँखिन देखी।
(ग) इनकी गति देखन जोग भई जु न देखन मैं तुम्हैं देखि अरीं।
(घ) आनन्द के घन हौ सुजान कान खोलि कहौं,
　　　　　　आरस जग्यो है कसँ सोई है कपा ढरक।
(ङ) हो घनआनन्द जीवन मूल दई कित प्यासनि मारत मोहीं।
(च) मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह मिठास ठगी।
(छ) प्यास भरी बरस तरस मुख देखन को अखियाँ दुखहाई।
(ज) झूठ का सचाई छाक्यो त्यों हित कचाई पाक्यो।
(झ) उजरनि बसी है हमारी अखियानि देखौ,
　　　　　　सुबस सुदेस जहाँ रावरे बसत हौ।

रूपक—रूपक घनआनन्द का दूसरा प्रिय अलकार है। उन्होंने एक स एक नये कितन ही मागरूपक प्रस्तुत किय हैं जो अनुभूति की भगिमा से सपृक्त हो अतिशय सरस बन पडे हैं। एक वैराग्य-परक छन्द म कवि न किस असाधारण कौशल स जड-जीव को उद्बुद्ध किया है—बाल्यावस्था की सन्ध्या ता तूने हम रो कर गँवा दी और यौवन की रात्रि विषय की मदिरा पीकर और सोकर गँवा दी। अरे जड चातक (जीव) ! आनन्दघन को छोडकर ससार क धुय को ही तू मघ समझ हुय था। अब भी ता जग ! देखता क्या नही कि ईशो की ओर से सवेरा हो रहा है—

लरिकाई प्रदोष मैं खेल खयो हँसि रोग सु औसर खोय दयो।
महुरो करि पान विष-मदिरा तरुनाई तमो मधि सोय गयो।
तजि क रसम घनआनन्द कों जग धूध सों चातिक नेम लयो।
जड जीव न जागत रे अजहू किनि ईसनि ओर तें भोर भयो॥

ऐसा बाँकी अभिव्यक्ति रीतबद्ध कवि नही प्रस्तुत कर सके हैं। इसमे जो

आवश्यकतानुसार नाना प्रकार के अलकारो की योजना की है किन्तु वह सारी अलकार योजना है भावाभिव्यक्ति का साधन ही, साध्य का पद उसे नही प्रदान किया गया है। दूसरी बात यह है कि यह आलकारिकता परम्पराभुक्त आलकारिकता से भिन्न है यह भावो की लपेट म आई हुई है। भावो की आवेशशीलता उनकी शली अथवा अलकरण का कारण रही है। सीधी सादी बातें सीधे सादे ढग स कही जा सकती हैं परन्तु अन्तर की नाना भाव भगिमायें बिना वचन वक्रता अथवा अभिव्यक्ति म वक्रता लाये कस निवेदित की जा सकती हैं। इसीलिये कहना पडेगा कि घनआनन्द के काव्य म जो अलकार विधान है वह रीतिबद्धो के समान आरोपित नही वरन् अत प्रसूत, उनके स्वभाव का अगस्वरूप और व्यक्तित्व का निदशक है।

व्यक्तिनिष्ठ काव्य रचना एव अलकृति के कारण घनआनन्द के अलकार प्रयोगो म बढती ताजगी और नवनीता है वह स्वय म उनके काव्य का एक अच्छा आकषण है। प्रयोग वचित्र्य कथन वक्रता अभिव्यक्ति वशिष्ट्य घनआनन्द की एक स्वभावगत प्रवृत्ति सी प्रतीति होती है। किसी भी बात को सीधे-सादे ढग से रख देना उन्ह अभीष्ट नही। उनका प्रत्येक छन्द किसी न किसी प्रकार का बाँकपन लिये हुये मिलेगा परन्तु जो बात इन्हे अपने युग के क्रमागत शली के कवियो स पृथक कर देती है वह है सवेदना और प्रेरणा की भिन्नता। घनआनन्द के काव्य रचना की प्रेरक शक्ति न तो राज्याश्रय या राज प्रेरणा है न किसी का प्रशस्ति गान न किन्ही लक्षणो को दृष्टि मे रखकर उदाहरण प्रस्तुत करना। घनआनन्द की अलकार प्रियता या वक्रोक्ति प्रेम बहुत कुछ स्वभावगत है। एक बात यह भी है कि अनुभूति जब गहरी होती है व्यक्ति कुछ भावुक और प्रगल्भ होता है तो अभिव्यक्ति भी ऋजु और सरल न होकर यत्किंचित वक्र हो जाती है। यह वक्रता फिर काव्य की शोभा बन जाती है भावो के नये-नये पथ से ले जाते हुए कवि ने जिस नवीनता और कला के उन्मेष का परिचय दिया है वह साधारणत सुलभ नही। प्रभूत परिमाण म ब्रज भाषा मे काव्य सृष्टि हो चुकी थी फिर भी नये उपमानो के विधान म नई कल्पनाओ की सृष्टि मे घनआनन्द रीतिमुक्त और रीतिबद्ध ही नही समूचे मध्ययुगीन कवियो में आगे गिने जायेंगे। कल्पना और आलकारिकता के क्षेत्र म उनकी सी नई सूझ बूझ वाला कवि दूसरा नही दिखाई देता। यह नवीन कल्पना और कला की उठान भावोन्मेष तथा कवि प्रतिभा सापेक्ष हुआ करती है। घनआनन्द मे य दोनो तत्व प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध हैं। शली की इसी अनि वयक्तिता के कारण घनआनन्द की शैली मे काव्य रचना ता दूर परवर्ती युग मे उनकी नकल भी कोई नही कर सका है।

**विरोधाभास** विरोधाभास घनआनन्द का सबस प्रिय अलकार है तथा इस सम्बन्ध म तो यहाँ तक कहा गया है और ठीक कहा गया है कि जिस कृति मे यह अलकार न मिले उसे बखटक उनकी कृतियो से पृथक किया जा सकता है। इसस एक अथ स्पष्ट हो जाना चाहिये कि उक्ति-वषम्य उनकी प्रकृति से ही उत्पन्न चीज है,

बिना उनका प्रकृति का अग हुए विरोधाभास उनकी दीघ-काल-व्यापिनी काव्य-साधना म आद्यत किम प्रकार आ सकता था ? स्पष्ट ही उनके काव्य मे विरोध न जिस आलकारिक सौदय की सृष्टि की है उसका मूल उत्स उनका हृदय, उनके विचार, उनका जीवन है जो विपमता का कोप था। जीवन विपम परिस्थितियो और मन-स्थितियो का केन्द्र हो गया था इसीलिये अपन प्रेम का विना वाकपन के, बिना स्थिति-वैपम्य के निदशन के और कुछ नही तो बिना शब्द विरोध के वे व्यक्त ही नही कर पाते थे। यही कारण है कि विरोधाभास ही उनकी आलकारिक सौन्दर्य चेतना का केन्द्र बिन्दु हो गया है। अन्य अलकार इसी केन्द्रीय शोभाकारक धम के इद गिद चक्कर लगाते मिलेंगे—

(क) बारिद सहाय सो दवागिनि दबति देखो
 बिरह नवागिनि तें नना झर क रहे।

(ख) पौन सों जागति आग सुनी हो प पानी सों लागति आँखिन देखो।

(ग) इनको गति देखन जोग भई जु न देखन में तुम्हें देखि अरीं।

(घ) आनन्द के घन हौ सुजान कान खोलि कहौ
 आरस जग्यौ है कसें सोई है कृपा ढरक।

(ङ) हो घनआनन्द जीवन मूल दई कित प्यासनि मारत मोहीं।

(च) मति दौरि थकी न लहै ठिक ठौर अमोही के मोह मिठास ठगो।

(छ) प्यास भरी बरसैं तरसैं मुख देखन को अखियाँ दुखहाई।

(ज) झूठ की सचाई छाक्यौ त्यौं हित कचाई पाक्यौ।

(झ) उजरनि बसी है हमारी अखियानि देखौ,
 सुबस सुदेस जहाँ रावरे बसत हौ।

रूपक—रूपक घनआनन्द का दूसरा प्रिय अलकार है। उन्होने एक स एक नये कितने ही सागरूपक प्रस्तुत किये हैं जो अनुभूति की भगिमा मे सपृक्त हो अतिशय सरस बन पडे हैं। एक वराग्य-परक छन्द म कवि ने किस असाधारण कौशल से जड-जीव को उद्बुद्ध किया है—बाल्यावस्था की सन्ध्या तो तूने हँस रो कर गवा दी और यौवन की रात्रि विपय की मदिरा पीकर और सोकर गँवा दी। अरे जड चातक (जीव) ! आनन्दघन का छोडकर ससार क धुय को ही तू मघ समझ हुय था। अब भी ता जग ! देखना क्या नही कि कशो की ओर स भवरा हो रहा है—

सरिकाई प्रदोप में खेल खयो हसि रोग सु औसर खोय दयो।
मधुरो मद पान विप-मदिरा तरुनाई तमी मधि सोय गयो।
तजि क रसम घनआनन्द को जग धुय सों घातिक नम सयो।
जड जीव न जागत रे अजहूँ किनि केसनि आर तें भोर भयो।।

ऐसी बाँकी अभिव्यक्ति रीतिबद्ध कवि नहीं प्रस्तुत कर सक है। इन अ

अनुभूति है और जो अभिव्यक्ति है उन दोनो व सामजस्य मे ही इस छन्द का वास्तविक सौन्दय निहित है। इसी प्रकार रूप के जल म मन का विहार करने के लिय जाने का रूपक भी अभिनव सूझ-बूझ का निदशक है—

पानिप अनूप रूप जल कौं निहारि मन,
गयौ हो बिहार करिबे क चाय ढरि क।
परयौ जाय रगनि की तरल तरगनि मैं।
अति ही अपार ताहि क्सें सके तरि क।
धीर तीर सूझत कहूँ न घनआनन्द यौं,
बिवस बिचारो चक्यौ बीच ही हहरि क।
लेस न सम्हार गहि केसनि मगन भयौ,
बूडिबे तें बच्यौ को सिवार कौं पकरि कै।

अपनी नवीनता के कारण वचनो के आसव का रूपक भी देखने योग्य है—

कठ-कांच घटी तें बचन चोखो आसव ल,
अधर पियाल पूरि राखति सहेत है।
रूप मतवारो घनआनन्द सुजान प्यारो
काननि ह्व प्राननि पिवाय पीव चेत है।

अपने चित्त को सुजान क हाथ का बीन बतला कर कवि ने अपनी प्रेमार्पित मनोदशा की कसी सुन्दर व्यजना की है—

जान प्रबीन के हाथ को बीन है मो चित राग भरयौ नित राज।
सो सुर साँच कहूँ नहि छाँडत ज्यौं ही बजाव लियैं मन बाज।
भावती मीड मरोर दियैं घनआनन्द सौगुने रग सौं गाज।
प्यार सौं तार सु ऐंचि कै तोरत, क्यों सुघराइय लावत लाज॥

इसी प्रकार के एक से एक सुन्दर सागरूपक घनआनन्द मे देखे जा सकते हैं—जिन छन्दो म उन्होंने अपनी लालसाओ को मेहदी, प्रिय की प्रीति रीति क कारण उसे बधिर दृष्टि की बैठक (जिसमे नित्य सावन ही बना रहता है) हृदय को प्रेम पत्र विरहिणी को वर्षा ऋतु म तुरई की बल, मन का पारद जीव का गुडी तन को फाग का सुहागपूर्ण राग रूप का खिलाडी या जुआडी रूप को राखी, नत्रो को चाँदनी रात का चार राधा क यौवन निदाम का चमन वियोग को अक्षयबट का बाज आदि कहा गया है उनम कवि की नई सूझ-बूझ और कल्पना का ऐश्वय देखा जा सकता है। य तथा ऐसे कई अन्य जितने ही छन्द सौन्दय विधान की सर्वथा नई

---

१ सुजानहित छन्द २१३ २४८ ३५८ २८२ ३१८ ४०० ४६ २१६, १८१, १०२, १४३, २२४, ३६७

भावभूमियां छूते पाये जाते हैं। छोटे छोटे निरंग रूपक तो कितने ही मिलेंगे—अभिलाषा की नदी या समुद्र, दृग चातक, बिरह की अग्नि या दावाग्नि, मन और नेत्रों को भृंग, चातक चकोर मीन-पतंग भवन हृदय को कजरौटी, वसंत को नाहर, अकुलानि का छुरी आदि बतला कर शत शत निरवयव रूपकों का व्यवहार हुआ है जो अपनी जगह पर छंद की रमणीयता में निश्चित वृद्धि करते देखे जा सकते हैं। यही विशेषता—बाँकपन, नवीनता, अनुभूति प्रेरित भव्यता और ताजगी उनके अधिकाधिक अलंकारों में देखी जा सकती है।

अन्य अलंकार—श्लेष और यमक का प्रयोग भी अनेक स्थलों पर हुआ है। श्लेष का प्रयोग सामान्यतः घनआनन्द घनश्याम सुजान आदि शब्दों को लेकर किया गया है। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि घनआनन्द के काव्य का कला-पक्ष सबल और प्रखर है, उसमें किसी भी प्रकार की हीनता तो दूर असाधारण उत्कर्ष के दर्शन होते हैं। अब कुछ उदाहरण लीजिये घनआनन्द की अलंकार योजना के जिनमें नाना प्रकार के अलंकारों का विनियोजन हुआ है—

उपमा—(क) कब आय हौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी।

(ख) लाली अधरान की रुचिर मुसक्यान समै,
सब मुख भोर ही सिंदूरा को सो फल है।

अनन्वय—सब भाँति सुजान समान न आन कहा कहौं आपु तें आपु लसै।

प्रतीप—हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै।
नीर सनेही कौं लाय कलंक निरास है कायर त्यागत प्रान॥

उत्प्रेक्षा—चीकने चिहुर नीके आनन बिथुरि रहै
कहा कहौं सोभा भाग भरे भाल सीस की।
मानो घनआनन्द सिंगार रस सौं सँवारी
चिक में बिलोकति बहनि रजनीस की।

व्यतिरेक—[क] देखें अनदेखें तहीं अँटक्यौ अनन्दघन
ऐसी गति कहौ कहा चुम्बक औ लोह की।

[ख] तेरी गति चौगुनी कै सौगुनी चुरल हू सों,
सगी अलगी सी कछू बरनी न जाति है।

[ग] खंजन ऐसे कहा मनरंजन मीनन तैसो कहा रसढार सो।
कंजनि लाज को लेस नहीं मृग रूसे रसे ये सनेह के सार सो॥

विशेषोक्ति—कसे धरौं धीर बीर अति ही असाधि पीर,
जतन ही रोग याहि मोवे करि टोह की।

सन्देह—विष की डया है क उदेग को अँवा है
कल पलको न बाहै अथवा है चक्र बात को।
बीजुरी को मधु किधों दुख ही को सिंधु है,
कि महामोह अध दड अलन-अलात को॥
असगति—नैनन में लाग जाय जागें सु करेजे बीच,
या बस ह्व जीव धीर होत लोट पोट है।
तद्गुण—दसन दमक फैलि हियें मोतीमाल होति।
विभावना—विरह समीर की झकोरन अधीर नेह,
नीर भीज्यौ जीव तऊ गुडी लौं उड्यो रहे।
उदाहरण—मोसों तुम्हें सुनौ जान-कपानिधि नेह निवाहिबो यौं छबि पावै।
ज्यौं अपनी रुचि राचि कुबेर सुरकहि ल निज अक बसावै॥
यथासख्य—बिछुर मिल मीन पतग दसा कहा मो जिय की गति को परस।
अर्थान्तरन्यास—मोहिं तुम एक तुम्हें मो सम अनेक आहिं,
कहा कछू चदहिं चकोरन की कमी है।
अपन्हुति—जारत अग अनग की आँचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई।

उपर्युक्त उदाहरणो से विदित होगा कि घनआनन्द की शैली ही निराली थी। जहाँ उनमे हम असाधारण भावुकता के दर्शन करते हैं वहीं उनके काव्य के कला-पक्ष को भी पर्याप्त समुन्नत पाते हैं। रह रह कर रूतको का ठाठ खडा करना, हर छन्द मे विरोध का निदर्शन करना और सहज ही अपनी भाव भगिमा और भाषा कौशल द्वारा सुन्दर से सुन्दर अलकार प्रयोग करना उनके काव्य शिल्प का एक प्रधान गुण है। उनकी शैली मे जो अलकरण है वह उनके व्यक्तित्व से ही प्रसूत है। अलकारो के नितान्त वैयक्तिक प्रयोग, सूझ की मार्मिकता के साथ-साथ नवीनता और अनोखापन उन्हे ब्रज भाषा के अद्वितीय शिल्पकारो की श्रेणी मे बिठा देते हैं।

**घनआनन्द का छद विधान**

रचना शैली अथवा छन्द विधान की दृष्टि स घनआनन्द का काव्य ६ भागो मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) **कवित्त सवैया शैली**—इसमे घनआनन्द का सुजानप्रेम' प्रमुख रूप से व्यक्त हुआ है। कवित्त, स्वच्छन्दता और निश्छल भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से यही उनकी प्रधान शैली है। इस शैली की रचनाओ के बीच दोहा सोरठा छप्पय आदि छन्द भी मिलेंगे पर वे महत्व की दृष्टि से नगण्य हैं और सख्या मे भी अत्यल्प।

(२) **दोहा या चौपाई शैली**—इसमे उन्होंने ब्रज भूमि या ब्रजेश की महिमा का गायन किया है और कृष्ण की लीलाओ का आख्यान भी। इस शैली की रचनायें सक्षिप्त किन्तु सख्या मे अनेक हैं। इनमें दोहा या चौपाई छन्द ही व्यवहृत हुए हैं जायसी या तुलसी या बालम की शैली पर एक निश्चित क्रम से दोहा और चौपाई छन्द नही रखे गये हैं। ये रचनायें भी छन्द विधान भेद से तीन प्रकार की हैं—

(क) वे रचनायें जिनमे केवल दोहा छन्द प्रयुक्त हुआ है, जैसे—प्रेम सरोवर, व्रज विलास, परमहस वशावली।

(ख) वे रचनायें जिनमे केवल चौपाई छन्दों का प्रयोग किया गया है, जैसे—प्रीति-पावस, नाम माधुरी, गिरि पूजन, भावना प्रकाश, धाम चमत्कार, व्रज-स्वरूप, गोकुल चरित्र, प्रेम पहेली, रसनायश,व्रज प्रसाद, मुरलिकामोद।

(ग) वे रचनायें जिनम दोहा चौपाई दोनों छन्दो का प्रयोग हुआ है। ऐसी कृतियो के भी दो उपवग किये जा सकते हैं—

(अ) प्रथम मे दोहा प्रधान रचनायें आयेंगी, जसे—कृष्ण कौमुदी (७५ दोहे, ६ चौपाइयां)।

(ब) द्वितीय उपवर्ग म चौपाई प्रधान रचनायें आयेंगी, उदाहरण के लिये—यमुना यश (६० चौ०, १ दो०), सरस वसत (५६ चौ० १३ दोहा), अनुभव चन्द्रिका (५२ चौ०, ३ दोहा), रग बधाई (५० चौ०, ३ दोहा) प्रेम पद्धति (१०८ चौ०, ३५ दोहा), वृषभानुपुर सुषमा वणन (४० चौ०, १ दो०), गोकुल गीत (२१ चौ०, २ दोहा), विचारसार (८६ चौ०, २ दो०) प्रिया प्रसाद (६५ चौ०, २५ दो०), व्रज व्यवहार (२११ चौ०, २६ दो०), गिरि गाथा (५२ चौ०, ४ दो०)।

(३) पद शली—तीसरी शली भक्तों की आत्माभिव्यक्तिपरक एव भक्ति-भाव मूलक पद शैली है जिसम घनआनन्द की पदावली आयेगी जिसके अन्तगत १०५७ पद सग्रहीत हैं।

(४) फारसी शली से प्रभावित छन्द—चौथी शैली उन रचनाओ की है जिनमे फारसी शैली से प्रभावित छन्द ही प्रमुख रूप से प्राप्य हैं। ये कृतियां हैं—वियोगबेलि और इश्कलता। इनकी भाषा पर पजाबी प्रभाव है। वियोगबेलि' में एक ही तर्ज के छन्द हैं पर 'इश्कलता' मे दोहे अरल्ल, मांझ और निसानी छन्द हैं।

(५) पांचवां भाग ऐसी रचनाओ का है जिनमे उपयु क्त चारो विभागो के समान शैली सम्बन्धिनी विशेषता तो कोई नहीं है परन्तु वे उपयु क्त पद्धतियों म से किसी म भी अन्तभू त न हो सकने क कारण एव पृथक वर्ग मे रखी जा रही हैं। इस प्रकार की रचनायें हैं—कृपाकद (कवित्त, सवैया, पद, सोरठा, दोहा, छप्पय), प्रेम-पत्रिका [प्लवग कवित्त, सवया, छप्पय, सोरठा] दान घटा [सवैया, दोहा] वृन्दावन मुद्रा [चौपाई, दोहा, कवित्त], प्रकीणक [कवित्त, सवैया, छप्पय चौपाई, बरवै महाबरवै छन्द फारसी शली सयुक्त सोरठा दोहा, त्रिभगी]।

[६] एक और भी वग है ऐसी कृतियो का जिनम सवथा नये छन्दों का प्रयोग हुआ है। ये कृतियां संक्षिप्त हैं तथा एक ही छन्द म लिखी गई हैं—गोकुल विनोद, मनोरथ मजरी।

परिमाण की दृष्टि से घनआनन्द का साहित्य प्रचुर है और उसमे प्रयुक्त

छन्दों की विविधता भी पर्याप्त है जिससे यह सूचित होता है कि घनआनन्द रीति बद्ध कवियों के समान दो-चार छन्दों तक ही अपने को सीमित नहीं रखते थे वरन् जब जी म आता था नये और अपने युग मे सामान्यतया अप्रचलित छन्दों को भी ग्रहण कर काव्य रचना किया करते थे। यह छन्द-वैविध्य उनकी भाव प्रकाशनार्थ स्वच्छन्द गति ग्रहण करने का ही सूचक है। उनके भाव हर छन्द में अनाहत और अबाध रूप से व्यक्त हुये हैं, नये छन्द का ग्रहण उनकी भाव धारा का अवरोधक नहीं हुआ है। इससे यह तो स्पष्ट ही हो जाना चाहिये कि उनमे भावना पक्ष प्रधान था और हर छन्द मे [जिसका भी प्रयोग उन्होंने किया है] उनका प्रेम, उनकी निष्ठा अबाध रूप से झलकती है। परन्तु इस सबके बावजूद भी यह कहना पड़ेगा कि कला और सौन्दर्य की दृष्टि से घनआनन्द का जो उत्कर्ष उनके कवित्त सवयों में—विशेषत सुजानहित' म लक्षित होता है वह किसी अन्य रचना म नहीं।

---